हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजका ६६ वाँ ग्रन्थ ।

विधाताका विधान ।

सुप्रसिद्ध बङ्ग-लेखिका श्रीमती निरुपमादेवीके
'विधिलिपि' नामक उपन्यासका अनुवाद ।

अनुवादकर्त्ता—
श्रीयुत बाबू रामचन्द्र वर्मा ।

प्रकाशक—
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई ।

द्वितीय श्रावण, वि० सं १९८५ ।

अगस्त, १९२८ ।

मूल्य २॥)

सजिल्दका ३)

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी, प्रोप्रायटर,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव-बम्बई।

मुद्रक—
मंगेश नारायण कुलकर्णी,
कर्नाटक प्रेस,
३१८ ए, ठाकुरद्वार, बम्बई २.

अन्नपूर्णाका मन्दिर ।

यह उपन्यास भी 'विधाताका विधान'की लेखिका श्रीमती निरुपमा देवीका लिखा हुआ है। बहुत ही पवित्र, पुण्यमय और करुणरसपूर्ण उपन्यास है। इसे पढ़कर आपको सती–सावित्रीका पौराणिक चरित्र भी तुच्छ जान पड़ेगा। यह अनेक अंशोंमें उससे भी ऊँचा और शिक्षाप्रद है। कुटुम्बप्रेम, मातृपितृभक्ति, स्वार्थत्याग और निःस्वार्थस्नेहका यह स्वाभाविक और सजीव चित्र है। इसमें एक दरिद्रकुटुम्बकी कन्या सतीके चरित्रको पढ़कर कठोरसे कठोर हृदय भी पिघलकर पानी हो जायगा। सावित्रीके अंतरंगके चित्रकी छायासे पापपङ्कलिप्त हृदय भी उज्ज्वल हो जायगा। कविवर बाबू मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं कि "अन्नपूर्णाका मन्दिर मैंने कई बार पढ़ा होगा, पर किसी बार ऐसा नहीं हुआ कि आँसुओंसे दृष्टिरोध न हुआ हो। मैं इसे अपने ढंगका अनुपम उपन्यास समझता हूँ।" यह उपन्यास लोगोंको कितना पसन्द आया है, इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि अब तक इसके चार एडीशन हो चुके हैं और लगभग छह हजार प्रतियाँ खप चुकी है। प्रत्येक आर्यकन्या और स्त्रीको यह उपन्यास धर्मग्रन्थके समान पढ़ना चाहिए और प्रत्येक पुरुषको सतीत्व और सदाचारका प्रभाव अनुभव करनेके लिए इसका पारायण किये बिना न रहना चाहिए। उपहार और भेटमें देनेके लिए इससे अच्छी पुस्तक नहीं मिल सकती। मूल्य १) सजिल्दका १॥)

भूमिका।

यों तो बंगदेशमें ऐसी अनेक विदुषी नारियाँ हैं, जो अपनी कृतियोंसे बंगला साहित्यकी श्रीवृद्धि करती हैं, परन्तु यदि यह कहा जाय कि इस पुस्तककी मूललेखिका श्रीमती निरुपमा देवीका आसन उन सबसे ऊँचा है, तो कदाचित् कोई अत्युक्ति न होगी। देवीजी चर्वित-चर्वण करनेवाली लेखिकाओंमें नहीं हैं, बल्कि वे सदा अपने लिए बिलकुल नया और निराला मार्ग निकालती हैं। उनकी कथावस्तुमें जितनी मौलिकता होती है, उतनी बड़े बड़े विद्वान् और सिद्धहस्त लेखकोंकी कृतियोंमें भी देखनेको नहीं मिलती। पात्रोंके चरित्रका विकास भी वैसा ही सुन्दर और अभूतपूर्व होता है। तिसपर शैलीका तो कुछ कहना ही नहीं है। उसमें सरलता, शुद्धता, ओज और प्रसाद आदि सभी गुण समान रूपसे एकत्र मिलते हैं। श्रीमतीकी कृतियोंके इन्हीं दुर्लभ गुणोंके कारण उन्हें बंग साहित्यमें बहुत ही उच्च स्थान मिला है, जो उनके लिए बहुत ही उपयुक्त भी है।

श्रीमती निरुपमा देवीका जन्म सन् १८८३ ई० में ब्रह्मपुर या बरहमपुर (मुर्शिदाबाद) के उच्च और शिक्षित ब्राह्मण कुलमें हुआ था। इनके पिता स्वर्गीय नफरचन्द्र भट्ट सब जज थे। उनकी गणना उच्च कोटिके विद्वानों और सुयोग्य न्यायकर्त्ताओंमें होती थी। उन्होंने कानून, समाज और धर्मसम्बन्धी अनेक ग्रन्थोंकी रचना की थी। परन्तु इतना सब कुछ होनेपर भी वे कट्टर सनातनधर्मी थे। स्व० ईश्वरचन्द्र विद्यासागरकी विधवाविवाहसम्बन्धी पुस्तकके खंडनमें उन्होंने एक बहुत अच्छी पुस्तक लिखी थी, जिसके कारण बंगालके सनातनी ब्राह्मणोंमें उनकी कीर्त्ति और भी अधिक फैल गई थी। वे पुराने ढंगके ब्राह्मण थे, इसलिए अपने परिवारकी कन्याओंको स्कूलोंमें भेजकर शिक्षा दिलानेके पक्षपाती नहीं थे। उस समय स्त्री-शिक्षाका उतना अधिक प्रचार भी नहीं था। इसी लिए श्रीमती निरुपमा देवीको भी कोई विशेष स्कूली शिक्षा नहीं मिल सकी थी। हाँ, दस वर्षकी अवस्था तक उन्होंने एक छोटेसे विद्यालयमें साधारण शिक्षा पाई थी। बस यहीं उनकी स्कूली शिक्षाका अन्त हो गया और उनका विवाह हो गया। परन्तु उनके परिवारके सभी

लोग शिक्षित और कृतविद्य थे और विद्याध्ययनकी ओर उनका बहुत अधिक अनुराग था, इसलिए वे घरमें परदेके अन्दर ही अपने पूज्य पिता तथा भाइयोंसे बराबर कुछ न कुछ पढ़ती रहती थीं और अपने ज्ञानकी वृद्धि करती रहती थीं। परन्तु चौदह वर्षकी किशोर अवस्थामें ही उनपर वैधव्यका वज्रपात हुआ और उनके जीवनके समस्त सुखोंका अन्त हो गया। हमारे भारतवर्षमें और विशेषतः बंगदेशमें कुलीन हिन्दू विधवाओंका जीवन जैसा हृदयविदारक और करुणोत्पादक हुआ करता है, विधिकी विडम्बनासे श्रीमतीको वही जीवन व्यतीत करनेके लिए बाध्य होना पड़ा। उनका अधिकांश समय एकान्त-वासमें ही बीतने लगा।

श्रीमती निरुपमा देवीको बाल्यावस्थासे ही पढ़नेके साथ साथ कुछ कुछ लिखनेका भी शौक था और कवियों तथा लेखकोंके योग्य प्रतिभाके लक्षण उनमें उसी समयसे दिखाई देने लग गए थे। सुयोग्य पिता तथा भ्राताओंने उन्हें इसी क्षेत्रमें अग्रसर होनेके लिये उत्साहित किया। हिन्दू विधवाओंका समय या तो रोने धोनेमें बीतता है, और या निस्वार्थ भावसे परिवारके लोगोंकी सेवा शुश्रूषा करनेमें। वह दुःखमय होनेपर भी सेवाभावका आदर्श होता है। परन्तु निरुपमा देवीने अपनी उस सेवाको केवल अपने परिवारके लोगों तक ही परिमित रखना उचित न समझा और कविताएँ तथा कहानियाँ आदि लिखकर उसे अधिक विस्तृत क्षेत्रकी ओर प्रवृत्त करके लोकसेवाका भी कुछ कार्य आरम्भ किया। उनकी ईश्वरदत्त प्रतिभाने पन्द्रह सोलह वर्षकी अवस्थामें ही उनके यशका चारों ओर विस्तार करना आरम्भ कर दिया और उनके होनहार होनेकी प्रसिद्धि हो गई।

जब कविताएँ और कहानियाँ लिखनेमें श्रीमती सिद्धहस्त हो गईं और यथेष्ट प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकीं, तब उन्होंने उपन्यास लिखना आरम्भ किया। जिस समय वे २२-२३ वर्षकी थीं, उसी समय 'अन्नपूर्णार मन्दिर' नामक उपन्यास लिखा गया जो पहले पहले बंगलाकी सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'भारती'में प्रकाशित हुआ*। उसके प्रकाशन-कालमें ही बंगला साहित्यमें धूम मच गई और बड़े बड़े सुयोग्य सम्पादकों तथा सुलेखकोंने उसकी बहुत अधिक प्रशंसा

---

* इस उपन्यासका हिन्दी अनुवाद 'अन्नपूर्णाका मन्दिर' के नामसे 'हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर' में प्रकाशित हो चुका है। मूल्य १)

की। बंगलाके सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुक्त हेमेन्द्रप्रसाद घोषने 'आर्यावर्त्त' में उनकी इस पुस्तककी बहुत विस्तृत आलोचना करते हुए स्पष्ट रूपसे कहा था कि श्रीमतीकी कृतियाँ बंगसाहित्यको अलंकृत करनेवाली और उसकी शोभा बढ़ानेवाली होंगी। उनकी शैली तथा भावोंके सौन्दर्यकी प्रशंसा करते हुए उन्होंने यह भी कहा था कि ऐसी उत्तम शैली तथा ऐसे उच्च भाव बंग-साहित्यमें अब तक बहुत ही कम देखनेमें आए हैं और कहीं कहीं तो उनकी उक्तियाँ इतनी सुन्दर हुई हैं कि उन्हें अच्छेसे अच्छे सूक्ति-संग्रहमें स्थान मिल सकता है।

इसके उपरान्त श्रीमतीका 'दीदी' नामक दूसरा उपन्यास सुप्रसिद्ध मासिक पत्र 'प्रवासी' में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यासने तो मानो बंगला साहित्यपर श्रीमतीकी छाप पूर्ण रूपसे बैठा दी; और तबसे उनकी गणना बंगलाके सर्वश्रेष्ठ उपन्यास-लेखकोंमें होने लगी। बंगवासी कालिजके प्रोफेसर ललितकुमार बैनर्जी, विद्यारत्न, एम० ए०, ने जो साहित्यके बहुत बड़े मर्मज्ञ और कलाओंके अच्छे समालोचक समझे जाते हैं, 'भारतवर्ष' में 'दीदी' की विस्तृत आलोचना करते हुए श्रीमती निरुपमा देवीकी तुलना अँगरेजीके सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखक जार्ज इलियटसे की है और कहा है कि इनके उपन्यासोंके पात्रोंके चरित्रोंका विकास बिलकुल जार्ज इलियटके ढंगपर होता है; बल्कि शैलीके विचारसे तो इनके उपन्यास इलियटके उपन्यासोंसे भी अच्छे बतलाए गए हैं और इन्हें श्रीमती हेनरी वुड तथा मेरी कारेलीकी समकक्ष बतलाया गया है। प्रायः उसी अवसरपर बंगीय साहित्य-सम्मेलनमें सुप्रसिद्ध नाटककार श्रीयुक्त अमृतलाल बोसने कहा था कि अपनी रचनाओंके कारण श्रीमती निरुपमा देवी सचमुच ही निरुपमा हैं—उनकी उपमा और तुलना किसीके साथ नहीं की जा सकती। इसी प्रकार और भी अनेक बड़े बड़े लेखकोंने इनकी कृतियोंकी मुक्त कंठसे प्रशंसा की है और बंगसाहित्यमें इनके उपन्यासोंका बहुत अधिक आदर होने लगा है। यहाँ तक कि अच्छे अच्छे मासिक पत्रोंके सम्पादक प्रकाशनके लिए श्रीमतीके उपन्यास प्राप्त करके अपने आपको धन्य समझते हैं।

'अन्नपूर्णार मन्दिर' और 'दीदी' के प्रकाशित हो जानेपर जब लोगोंने भली भाँति समझ लिया कि श्रीमती निरुपमा देवीमें बहुत ही उच्च कोटिके मौलिक उपन्यास लिखनेकी असाधारण शक्ति है, तब नदियाकी मासदा-

मंडलीने उन्हें 'सरस्वती' और 'रत्नप्रभा' की उपाधियोंसे सम्मानित किया। यद्यपि वे बराबर परदेमें रहती हैं और बहुत ही सरल तथा साधारण गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करती हैं, परन्तु फिर भी उनका विद्याव्यसन निरन्तर चलता है और उन्होंने 'विधि-लिपि' तथा 'श्यामली' आदि और भी अनेक उत्तम उपन्यास समय समयपर लिखकर प्रकाशित कराए हैं। उन्हीमेंसे विधि-लिपिका अनुवाद यह 'विधाताका विधान' है ❀।

इस पुस्तककी कथावस्तु भी बहुत ही निराली है और इसमें बहुत ही उच्च कोटिके आदर्श उपस्थित किए गए हैं। ज्योतिरत्नजी पुराने ढंगके ज्योतिषी हैं जिनकी कात्यायनी नामकी एक कन्या है जिसका जन्म उनकी पिछली और उतरती अवस्थामें हुआ था। उसके जन्मसे पहले ही उनकी सती साध्वी और सीधी सादी ब्राह्मणीने महेन्द्र नामके अनाथ बालकको अपने पास रख कर पाला था और जब उसके गर्भसे कात्यायनीका जन्म हुआ, तब उसने यही सोचा था कि आगे चलकर इसी सुशील और सुयोग्य महेन्द्रके साथ इस कन्याका विवाह कर दिया जायगा। जब कात्यायनी विवाहके योग्य हुई, तब ज्योतिरत्नने देखा कि महेन्द्रके ग्रह अच्छे नहीं हैं और उसका भावी जीवन संकटमय है, साथ ही उन्होंने यह भी देखा कि कात्यायनीके ग्रह बहुत ही उच्च हैं और वह किसी प्रतापी और देवतास्वरूप नर-रत्नकी पत्नी होनेके योग्य है। उन्होंने सैकड़ों बालकोंकी कुंडलियाँ देख डालीं, पर उन्हें कात्यायनीके योग्य कोई वर दिखाई नहीं दिया, अन्तमें विवश होकर उन्होंने अपने मनमें एक कुंडलीकी कल्पना की और सोचा कि यदि ऐसी कुंडलीवाला व्यक्ति मिले तो उसके साथ कात्यायनीका विवाह हो सकता है। इसी अवसर पर वे अपना पुराना निवास-स्थान छोड़कर गंगातटपर बाबू कामाख्यानाथकी जमींदारीमें और उन्हींके गाँवमें आकर रहने लगे। कामाख्यानाथ बहुत बड़े जमींदार थे और सज्जनता, सच्चरित्रता तथा परोपकारिता आदिके आदर्श थे। उनकी स्त्रीका देहान्त हो चुका था और अवस्था ढल चली थी। उनका निरंजन नामका एक पुत्र और रमा नामकी एक युवती पर विधवा कन्या थी। निरंजनका जन्म उसके ननिहालमें हुआ था और वहीं किसी ज्योतिषीने उसकी एक गलत कुंडली बनाई थी जिसमें उसके यौवन कालमें ही कुछ अरिष्ट दिखलाया गया

❀ 'श्यामली' को भी प्रकाशित करनेका हम यत्न कर रहे हैं। —प्रकाशक।

था । ज्योतिरत्नके पांडित्य तथा अन्यान्य गुणोंके कारण कामाख्यानाथकी उन-पर बहुत अधिक श्रद्धा हो गई थी और वे सब प्रकारसे उनकी सेवा तथा सहायता करना चाहते थे । उसी अवसरपर उन्होंने ज्योतिरत्नको अपने पुत्र निरंजनकी कुंडली दिखलाई जिसमें ज्योतिरत्नने कई भूलें बतलाईं और कामाख्यानाथका भ्रम बहुत कुछ दूर किया । इस अवसरपर लेखिकाने ज्योतिषसम्बन्धी जो बातें बतलाई हैं, उनसे उनके ज्योतिष ज्ञानका बहुत अच्छा पता लगता है । 'बंगरत्न' पत्रके सम्पादक श्रीयुक्त नारायणचन्द्र भारतीने इस विधिलिपिकी आलोचना करते हुए लिखा था कि मुझे बहुत ही विश्वस्त सूत्रसे ज्ञात हुआ है कि इसमें ज्योतिषसम्बन्धी जो ज्ञान प्रकट किया गया है, वह लेखिकाका निजका है और बहुत ही ठीक है ।

इसी अवसरपर ज्योतिरत्नके सामने स्वयं कामाख्यानाथकी कुंडली आती है, जिसे देखते ही वृद्ध ब्राह्मणकी मानसिक अवस्था बहुत ही विकृत हो जाती है। ज्योतिरत्नजी तो अब तक अपने मनमें यही समझ बैठे थे कि कात्यायनीके लिए वरकी जिस कुंडलीकी मैंने कल्पना की है, वैसी कुंडली इस संसारमें कहीं मिल नहीं सकती। पर कामाख्यानाथकी कुंडली उनकी उस कल्पित कुंडलीसे हूबहू मिल जाती है। परन्तु कामाख्यानाथ ठहरे अधिक अवस्थाके आदमी और उनका जीवन बिलकुल त्यागियों तथा साधुओंका सा है। इतने दिनों बाद कात्यायनीके योग्य जो वर भी मिला, उसके साथ कात्यायनीका विवाह होना असम्भव है। अब ज्योतिरत्नकी यह पुरानी धारणा और भी दृढ़ हो जाती है कि कात्यायनी आजन्म कुमारी ही रहेगी । यहींसे इस उपन्यासकी कथावस्तुका आरम्भ होता है।

ब्राह्मणी तो महेन्द्रके साथ कात्यायनीका विवाह करना चाहती है, पर ज्योतिरत्न इस सम्बन्धके घोर विरोधी हैं। कामाख्यानाथ भी महेन्द्रको ही कात्यायनीके लिए सबसे अधिक उपयुक्त वर समझते हैं। पर ज्योतिरत्नकी दृष्टिमें केवल ज्योतिष शास्त्रके विचारसे कामाख्यानाथ ही उसके लिए उपयुक्त वर हैं, जो न तो विवाह करनेके लिए प्रस्तुत हो सकते हैं और न जिनसे इस विवाहका प्रस्ताव ही किया जा सकता है। कन्यापर भी पिताकी यह इच्छा प्रकट हो जाती है; इस लिए ब्राह्मणी जब कभी महेन्द्रके साथ उसके विवा-हकी चर्चा करती है, तब वह बहुत ही तेजस्वितापूर्वक उसे इस प्रकारकी बातें करनेका निषेध करती है और कामाख्यानाथपर यथेष्ट श्रद्धा रखती हुई

आजन्म कुमारी रहनेका संकल्प करती है। बाल्यावस्थासे ही साथ रहनेके कारण महेन्द्रको भी वह अपने सगे भाईके समान प्रिय समझती है। महेन्द्र पहले तो निरंजनके साथ स्कूलमें पढ़नेके लिए शहर चला जाता है और तब थोड़े दिनों बाद आकर कामाख्यानाथकी जमींदारीका काम देखने लगता है। उसकी बुद्धिमत्ता, योग्यता और सच्चरित्रताका कामाख्यानाथपर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है और वे उसपर पुत्रवत् स्नेह करने लगते हैं। इसी बीचमें कामाख्यानाथके बहुत कुछ दौड़ धूप और सेवा शुश्रूषा करनेपर भी ज्वरके कारण ज्योतिरत्नका देहान्त हो जाता है। अपने अन्त समयमें ज्योतिरत्न महेन्द्रका हाथ कामाख्यानाथको पकड़ा देते हैं, और प्रायः बेहोशीमें बड़बड़ाते हुए कात्यायनीको भी उन्हें ही समर्पित कर देते हैं और तब कात्यायनीके एक ऐसे जीवनका आरम्भ होता है, जो अकल्पित, अतर्कित और अनुपम है और जिसके कारण यह उपन्यास एक रत्न हो गया है।

एक बहुत बड़े अँग्रेज विद्वान् साहित्यज्ञका मत है कि उपन्यासों और नाटकों आदिमें स्त्रियोंके चरित्रका जैसा अच्छा चित्रण और विकास स्त्रीलेखिकाओंके द्वारा होता है, वैसा अच्छा चित्रण और विकास पुरुषलेखकोंके द्वारा नहीं होता। विचार करनेपर यह सिद्धान्त बहुत कुछ सार-गर्भित जान पड़ता है। पहली बात तो यह है कि नारी-हृदयका जैसा अच्छा ज्ञान एक नारीको हो सकता है, वैसा पुरुषको कदाचित् ही हो सकता हो। और फिर मानव-प्रकृतिका सहज और स्वभावसिद्ध पक्षपात सामने आकर खड़ा हो जाता है। पुरुष प्रायः स्त्रीको सब बातोंमें अपनेसे कम समझता है। यह बात किसी एक देश अथवा कालकी नहीं है, सभी देशों और सभी कालोंकी है। परन्तु इससे हमारा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि स्त्रियोंका आदर करना पुरुष जानते ही नहीं। नहीं, वे स्त्रियोंका आदर करना बहुत अच्छी तरह जानते हैं। बल्कि यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो स्त्रियोंके आदरका आरम्भ और प्रस्थापन पुरुषोंसे ही आरम्भ हुआ है। हमारे कहनेका तात्पर्य केवल इतना ही है कि सब कुछ होनेपर भी नारीकी अन्तरात्मामें नारीका ही और पुरुषकी अन्तरात्मामें पुरुषका ही प्रवेश हो सकता है और साथ ही प्रायः पक्षपात भी अज्ञात रूपसे अपना काम कर जाया करता है। बहुधा पुरुष अपने ही वर्गके व्यक्तियोंका सुन्दर और सूक्ष्म चरित्र चित्रण करेंगे और स्त्रियोंके सुन्दर चरित्र चित्रणके लिए हमें स्त्रियोंका ही मुखापेक्षी होना पड़ेगा। और

यही कारण है कि कात्यायनीके जितने सुन्दर और उच्च चरित्रका चित्रण श्रीमती निरुपमा देवीके हाथों हुआ है, उतना कदाचित् ही किसी पुरुषके द्वारा इस प्रकारके उपन्यास-क्षेत्रमें हुआ हो।

कात्यायनी जानती है कि पिताजी महेन्द्रके साथ मेरे विवाहके घोर विरोधी हैं। कोई दूसरा उपयुक्त वर न मिलनेके कारण उसके मनमें कुछ यह धारणा भी उत्पन्न हो जाती है कि कदाचित् मुझे आजन्म कुमारी ही रहना पड़े; क्योंकि बंगालके कुलीन ब्राह्मणोंमें वरके अभावमें कन्याओंका आजन्म कुमारी रहना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। अब पिताजीकी दृष्टिमें कुल और ज्योतिषके विचारसे जो उपयुक्त वर मिला भी, उसके साथ विवाह होना असम्भव सा है। इधर महेन्द्र बाल्यावस्थासे उसके साथ रहता आया है और माताकी बातोंके कारण कात्यायनीके सम्बन्धमें अपने हृदयमें एक विशिष्ट आशाका पोषण करता आया है। और जब उस आशाके फलवती होनेका उपयुक्त अवसर आता है, जब उसकी अवस्था बाईस तेईस वर्षकी और कात्यायनीकी सोलह सत्रह वर्षकी होती है, तब उस आशाके समूल नाशके लक्षण दिखाई देने लगते हैं। कात्यायनी केवल पिताकी इच्छाकी वशवर्तिनी होकर महेन्द्रसे स्पष्ट कह देती है कि हम और तुम बहन भाई हैं—और कुछ नहीं। पर महेन्द्रकी अवस्था निराश प्रेमीकी सी हो जाती है। आगे बढ़नेसे पहले हम यहाँ इतना कह देनेके लिए विवश हैं कि यहाँ भी मानव-हृदयका सहज पक्षपात काम कर गया है। लेखिकाने कात्यायनीको तो चरित्रबलकी दृष्टिसे बहुत उच्च स्थलपर पहुँचा दिया है, पर महेन्द्रको निराश प्रेमी बनाकर मानो उसकी अपेक्षा कुछ नीचा आसन दिया है। कामाख्यानाथके बहुत कुछ समझाने बुझाने और उद्योग करनेपर भी कात्यायनी किसी प्रकार महेन्द्रके साथ विवाह करनेपर सहमत नहीं होती; और माताके आग्रह करनेपर भी महेन्द्र किसी और कन्याके साथ विवाह करनेके लिए उद्यत नहीं होता। वह सोचता है कि यदि कात्यायनी आजीवन कुमारी रह सकती है, तो मैं क्यों नहीं रह सकता? यहाँ तक तो दोनों ठीक ठीक और समान चलते हैं; पर आगे चलकर दोनोंके दो मार्ग हो जाते हैं। पिताकी आन्तरिक इच्छा और मुमूर्षावस्थाकी अन्तिम बातोंके कारण कात्यायनीके विचारोंका केन्द्र कामाख्यानाथ हो जाते हैं। वह मन ही मन अपनेको उनके लिए वाग्दत्ता समझने लगती है। यदि महेन्द्रके भाव भी उतने ही उच्च दिखलाए जाते, तो वह अपने मनमें समझ लेता

कि—"यदि पिताजी और कात्यायनीकी यही इच्छा और यही भाव हैं, तो हुआ करें; मुझे इससे क्या!" और उस दशामें यहीं उपन्यासकी समाप्ति हो जाती। उसमें न तो कोई चमत्कार ही आ सकता था और न कोई उच्च आदर्श ही। परन्तु कथाका आगे निर्वाह करनेके लिए महेन्द्रको निराश प्रेमी बनाने और उसे कात्यायनीके आसनसे कुछ नीचा आसन देनेकी आवश्यकता हुई। हमें यहाँ इस बातका भी ध्यान रखना चाहिए कि महेन्द्रका निराश तथा दुःखी होना भी एक प्रकारसे स्वाभाविक है, क्योंकि परि-स्थिति ही कुछ ऐसी है। जब तक महेन्द्र यह समझता है कि पिताजी ज्योतिषकी दृष्टिसे मुझे कात्यायनीके अयोग्य वर समझते थे और इसी कारण कात्यायनी मुझसे सदा भाईकासा व्यवहार करना चाहती है, तो वह कुछ भी दुःखी और निराश नहीं होता और यह लेखिकाके एक सूक्ष्म और उत्तम चरित्रचित्रणका एक अच्छा नमूना है। पर आगे चलकर जब उसे इस बातका पता लगाता है कि कात्यायनी मन ही मन कामाख्यानाथको केवल देवता नहीं बल्कि स्वयं अपना देवता और सर्वस्व समझती है, तब उसे बहुत अधिक दुःख और निराशा होती है। उसके मनमें कामाख्यानाथके प्रति एक प्रकारकी ईर्ष्या और द्वेषका आविर्भाव हो जाता है और वह कात्यायनीको भी कुछ जली कटी सुनाना आरम्भ कर देता है; मगर वह भी बहुत कायदेके साथ और मर्यादित तथा शिष्ट रूपमें। उसपर कात्यायनीके इस मनोभावके प्रकट होनेका मुख्य कारण कामाख्यानाथका आग्रह होता है। कामाख्यानाथ सोचते हैं कि ज्योतिरत्न अपनी कन्याका भार मुझे दे गए हैं। यदि कलको उनकी स्त्री भी मर जायगी, तो कात्यायनी अकेली पड़ जायगी। इसलिए वे कात्यायनीको महेन्द्रके साथ विवाह करनेके लिए बहुत कुछ समझाते बुझाते हैं; और जब वह उसके साथ विवाह करनेके लिए किसी प्रकार प्रस्तुत नहीं होती, तब वे उसके लिए और कोई उपयुक्त वर ढूँढ़ना आरम्भ करते हैं और कहते हैं कि मैं तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध भी किसी सुयोग्य वरके साथ तुम्हारा विवाह कर दूँगा। उस समय कात्यायनीको असमंजसमें पड़कर स्वयं ही कामाख्यानाथसे कहना पड़ता है कि पिताजी मुझे तो आपके ही हाथोंमें सम्प्रदान कर गए हैं, वे आपको ही मेरे लिए सबसे अधिक उपयुक्त वर समझते थे और इसी लिए मैं भी हृदयसे आपको ही पति रूपसे ग्रहण कर चुकी हूँ। पर आप देवस्वरूप हैं और मेरे साथ विवाह करनेमें लोकमें आपकी निन्दा होगी, इस लिए

मुझे आप इसी दशामें छोड़ दीजिए। मैं आजीवन कुमारी ही रहूँगी। कामाख्यानाथके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहता। वे तो समझते थे कि ज्योतिरत्न अन्तिम समयमें मुझपर अपने परिवारके लोगोंकी देखरेखका भार सौंप गए थे, और कात्यायनी उसका ऐसा अर्थ लगाती है। उनकी समझमें ही नहीं आता कि अब मुझे क्या करना चाहिए।

कामाख्यानाथकी विधवा कन्या रमा भी किसी प्रकार ये सब बातें सुन लेती है। विधिलिपिकी समालोचनामें पूर्वोक्त श्रीयुक्त नारायणचन्द्र भारतीने इस रमाके सम्बन्धमें कहा है और बहुत ही ठीक है कि लेखिकाने रमाको स्वर्गसे लाकर इस पृथ्वीतलपर अवतीर्ण किया है। रमा सचमुच स्त्री नहीं देवी है। बाल्यावस्थासे ही विधवा है, अनुपम रूप है, पूर्ण यौवन है और अतुल सम्पत्ति है; फिर भी उसका सबसे बढ़कर मूल्यवान्, सुन्दर, निष्कलंक और परोपकारिताका जीवन है। दीन दुखियोंकी सहायता या ठाकुरसेवाके सिवा उसने अपने जीवनमें न तो और कुछ सीखा ही और न किया ही। इतना सब कुछ होनेपर भी उसमें जो दीनता और नम्रता है, उसका वारापार नहीं। अपना सारा समय और शक्ति परोपकारमें लगाकर भी वह यही समझती है कि मैं किसी योग्य नहीं हूँ और कुछ भी नहीं कर सकती। लेकिन यदि उसका वश चले तो वह संसारसे दीनता, दरिद्रता, रोग, शोक और सन्तापका नाम तक मिटा देनेके उपरान्त भी शायद ही दम ले। जिस प्रकार महेन्द्र और निरंजनमें परम बन्धुत्वका सम्बध स्थापित हो गया है, उसी प्रकार रमा और कात्यायनीमें भी। रमाके भाई निरंजनका चित्र भी बहुत ही शुद्ध, बहुत ही उच्च और बहुत ही परोपकारितापूर्ण है। परन्तु जिस प्रकार कात्यायनीके चरित्रके सामने महेन्द्रका चरित्र कुछ दब जाता है, उसी प्रकार रमाके चरित्रके सामने निरंजनका चरित्र भी फीकासा जान पड़ता है। यही है नारीके द्वारा नारीचरित्रका सुन्दर चित्रण और विकास। अस्तु।

जब रमाको यह विदित हो जाता है कि कात्यायनी मेरे पिताजीको अपने मनमें पतिरूपमें पूजती है और दोनों ही कुछ विशिष्ट कारणोंसे विवाह नहीं करना चाहते, तब वह अपने भाई निरंजनके साथ मिलकर अपने पिता कामाख्यानाथसे कात्यायनीके साथ विवाह करनेका इतना अधिक आग्रह करती है कि अन्तमें उन्हें विवश होकर विवाहके लिए सहमतसा हो जाना पड़ता है। बंगाली लोग भावुक होते हैं। उन्हें कदाचित् पुत्र और कन्याका पिताके प्रति

इस प्रकार विवाहका इतना अधिक आग्रह करना न खटकता हो, परन्तु हमें इस सम्बन्धकी दसवें परिच्छेदकी बातें बहुत ही खटकी हैं, यह हम मूल लेखिकाके प्रति यथेष्ट आदर और सम्मान रखते हुए भी कहनेकी धृष्टता करते हैं। हमारी समझमें यह प्रसंग बहुत सहजमें छोड़ा या इस प्रकार परिवर्तित किया जा सकता था कि इसकी सारी खटक निकल जाती। जो हो, महेन्द्रपर भी यह बात खुल जाती है और तब उसका पूर्ण दुःखी तथा निराश प्रेमीवाला स्वरूप प्रकट होता है। वह कात्यायनीसे बहुत ही चिढ़ जाता है और कामाख्यानाथके प्रति यथेष्ट आदर रहते हुए भी मनमें हिंसा तथा ईर्षाको स्थान देता है।

अभी तक हमने जो कुछ कहा है, वह केवल मुख्य या आधिकारिक कथावस्तुके सम्बन्धमें ही कहा है। परन्तु नाटकोंकी भाँति उपन्यासोंमें भी कुछ प्रासंगिक कथावस्तु होती है जो इस उपन्यासमें भी है और आगे बढ़नेसे पहले उसके सम्बन्धमें भी कुछ कह देना आवश्यक जान पड़ता है। ज्योतिरत्नकी मृत्युके उपरान्त जब महेन्द्र पहले पहल कात्यायनीसे निराश होता है, तब उसका जी उचाट हो जाता है और वह कामाख्यानाथकी जमींदारीमें इधर उधर बाहर घूमने लगता है। उसी अवसरपर उसकी भेंट महामाया नामकी एक दुखिया विधवासे होती है। महामाया एक उच्च प्रतिष्ठित और बहुत ही सम्पन्न कुलकी विधवा है और उसकी ग्यारह बारह वर्षकी कन्या कमला एक बहुत बड़ी जमींदारीकी उत्तराधिकारिणी है। परन्तु कुछ पारिवारिक झगड़ोंके कारण महामायाको विवश होकर अपना घर छोड़ना और मायकेमें आकर रहना पड़ता है। महामायाकी सौतेली ननदका पुत्र परेश उस बड़ी जमींदारीका मालिक बन जाता है जिसपर कमलाका भी बहुत कुछ अधिकार है। परेश चाहता है कि कमलाको किसी प्रकार यहाँ बुलाकर मैं उसके साथ अपना विवाह कर लूँ और उसके अंशकी सम्पत्तिका भी पूरा अधिकारी बन जाऊँ। यद्यपि परेश वास्तवमें कमलाकी सौतेली बूआका लड़का है और दोनोंमें भाई बहनका सम्बन्ध है, परन्तु दोनोंके विवाहकी चर्चा करके सुयोग्य लेखिकाने बंगीय कुलीन समाजकी एक बहुत ही घृणित और गर्हित प्रथाकी ओर लोगोंका ध्यान बहुत ही सुन्दरताके साथ आकृष्ट किया है। ये कुलीन लोग अपनी कुलीनताके फेरमें पड़कर वरके अभावमें नाम मात्रके लिए कन्याका विवाह तो उसके मामा फूफा आदिके पुत्रोंके साथ कर दिया करते हैं; परन्तु पुराना भाईका

सम्बन्ध होनेके कारण वधूको जन्मभर अपने पतिसे बिलकुल अलग रहना पड़ता है। दोनोंमें कभी सम्बन्ध नहीं होता, दोनोंमेंसे कोई एक दूसरेके पास भी नहीं जा सकता। पति तो दूसरा विवाह भी कर लेता है, पर कन्याका सारा जीवन बहुत ही बुरी तरहसे नष्ट होता है। जब परेशका आदमी कमला और महामायाको इस बुरे उद्देश्यसे अपने साथ ले जानेके लिए आता और उन दोनोंको जबरदस्ती ले जाना चाहता है, तब महेन्द्र बीचमें पड़कर महामाया और कमलाका उद्धार करता है और उन्हें अभयदान देकर चिर कृतज्ञ बना लेता है। महामाया सोचती है कि यदि महेन्द्र ही कमलाके साथ विवाह कर ले, तो बहुत अच्छा हो। पर महेन्द्र तो आजीवन कुँआरे रहनेकी प्रतिज्ञा कर चुका है, इसलिए वह कमलाको बहन रूपसे ग्रहण करके उसका रक्षक और अभिभावक बनता है। जब महामाया कहती है कि तुम इस मामलेमें कामाख्यानाथसे सहायता लो, तो कात्यायनीके सम्बन्धमें कामाख्यानाथके साथ ईर्ष्या रखनेके कारण वह महामायाके उस प्रस्तावका बहुत ही घृणापूर्वक तिरस्कार करता है।

इसी बीचमें ज्योतिरत्नकी स्त्री और कात्यायनीकी माताका जिसे महेन्द्र भी अपनी माता बल्कि उससे भी कुछ बढ़कर समझता है, देहान्त हो जाता है, जिससे उसका उदास तथा क्षुब्ध जीवन और भी अधिक उदास तथा क्षुब्ध हो जाता है। महामायाकी ननदका लड़का परेश जब फिर महामाया और कमलाको किसी प्रकार पकड़वा मँगानेका उद्योग करता है, तब कमलाकी रक्षाके विचारसे महेन्द्र उसे कात्यायनीके पास ले जाकर रख देता है और उसे उसके सम्बन्धमें बहुत अधिक सचेत करते हुए कह देता है कि यदि किसी प्रकारकी आपत्ति आ पड़े, तो तुम मुझे सूचना देना; पर इसके लिए कामाख्यानाथ या उनके घरके लोगोंकी किसी प्रकारकी सहायता मत लेना। इसके बाद वह वहाँसे चला जाता है। थोड़े दिनों बाद परेशके आदमी अवसर पाकर कात्यायनीके पाससे कमलाको उड़ा ले जाते हैं जिससे कात्यायनी बहुत अधिक चिन्तित होती है। थोड़े ही समयके उपरान्त उसे महामायाका पत्र मिलता है जिसमें लिखा रहता है कि यदि आज रात तक महेन्द्र यहाँ न पहुँच सका, तो परेश कमलाका पाणिग्रहण कर लेगा। कात्यायनी बहुत अधिक चिन्तित होती है। उस समय रमा और कात्यायनीमें जो बात चीत होती है, वह बहुत ही मार्मिक और तत्त्वपूर्ण होती है। कात्यायनी दुःखी और हताश नास्तिककी

सी बातें करती है और रमा पूर्ण श्रद्धालु आस्तिककी भाँति। कात्यायनीके बहुत कुछ रोकने पर भी रमा अपने भाई निरंजनको कमलाका उद्धार करनेके लिए भेज देती है। इतनेमें महेन्द्र भी किसी प्रकार सब समाचार पाकर वहाँ आ पहुँचता है, और जब उसे मालूम होता है कि निरंजन कमलाकी रक्षा करनेके लिए चला गया है, तो वह पागलोंकी भाँति वहाँसे चल पड़ता है। जब आधी रातके समय महामायाके पास महेन्द्रके बदलेमें निरंजन पहुँचता है, तब महामाया विवश होकर उसीके हाथमें अपनी कन्या कमलाको सौंप देती है। सौंप क्या देती है, उसे एक प्रकारसे सम्प्रदान कर देती है। एक यह स्थल भी कुछ खटकता सा है। यह ठीक है कि यहाँ हिन्दू आदर्श और मर्यादाकी रक्षा करनेके लिए ऐसा किया गया है, परन्तु इस प्रकार बिना जाने बूझे एक नवयुवकके हाथमें कन्याका सम्प्रदान विचारणीय है। खैर। इतनेमें महेन्द्र भी वहाँ पहुँच जाता है और परेशके आदमी भी कमला तथा महामायाके भागनेकी सूचना पाकर उनका पीछा करते हुए वहाँ आ पहुँचते हैं। महेन्द्र तो क्रोधसे पागल होकर आया ही है; उसके हाथसे कामाख्यानाथका पिस्तौल चल जाता है जिससे एक आदमीका खून हो जाता है। साथ ही एक और आदमी घायल भी हो जाता है। कमलाको घोड़ेपर चढ़ाकर महेन्द्र वहाँसे निकल जाता है। चलते समय उसे सामने कामाख्यानाथ खड़े दिखलाई देते हैं, जो निरंजन तथा महेन्द्रका वहाँ जाना सुनकर आ पहुँचे हैं। पर महेन्द्र उनसे बिना कुछ कहे सुने चल देता है। इतनेमें पुलिसके दारोगा और कुछ सिपाही वहाँ आ पहुँचते हैं। निरंजन और कामाख्यानाथ वहीं गिरिफ्तार हो जाते हैं। जब रमासे कात्यायनीको ये सब समाचार मिलते हैं, तो वह महेन्द्रके कृत्यपर बहुत क्रोध प्रकट करती है। इसके कई कारण हैं। पर मुख्य कारण यही है कि कामाख्यनाथके प्रति उसकी श्रद्धा बढ़ गई है और महेन्द्रपरसे उसका विश्वास बहुत कुछ कम हो गया है। यहाँ कात्यायनीकी नैतिक दुर्बलता प्रकट होती है जो परिस्थितिको देखते हुए बहुत कुछ स्वाभाविक है। परन्तु फिर भी कामाख्यानाथके मुकाबलेमें महेन्द्रके प्रति उसके ऐसे भाव उसके उच्च विचारोंको देखते हुए समुचित नहीं जान पड़ते। इसके उपरान्त महेन्द्रका जो चरित्र चित्रित किया गया है, वही मानो उसका वास्तविक स्वरूप है और उसकी केवल एक त्रुटिको छोड़कर शेष बातोंमें नैतिक दृष्टिसे बहुत ही उच्च है। रमाका चरित्र भी यहाँ आकर मानो

तपाए हुए सोनेकी भाँति चमक उठा है । कात्यायनीकी अपेक्षा वह महेन्द्रके प्रति बहुत अधिक उदार है और वह उसे तनिक भी दोष नहीं देती। कामाख्यानाथ और निरंजन जमानतपर छूट आते हैं। यहाँ कामाख्यानाथका भाव भी वैसा ही है जैसा उनकी कन्या रमाका है । यद्यपि महेन्द्रने उन्हें खूनके मामलेमें फँसा दिया है, पर फिर भी वे महेन्द्रकी हर प्रकारसे रक्षा करना चाहते हैं, चाहे इसके लिए उन्हें स्वयं ही दंड क्यों न भोगना पड़े । और वह भी केवल इसी विचारसे कि मरते समय ज्योतिरत्नजी महेन्द्रका हाथ उन्हें पकड़ा गए थे । यह भावोंकी उच्चता और चरित्रके आदर्शकी पराकाष्ठा है। वे कात्यायनीसे कहते हैं कि यदि महेन्द्र तुम्हारे पास आवे, तो तुम सीधे मेरे पास भेज देना । मैं उसकी रक्षाका सब उपाय कर दूँगा। यह सुनकर पहले तो कात्यायनीको कुछ सन्देहसा होता है। यद्यपि वह महेन्द्रके इन सब कृत्योंके कारण बहुत असन्तुष्ट है और आदर्श हिन्दू महिलाकी भाँति कामाख्यानाथपर वैसी ही श्रद्धा रखती है, जैसी पति देवतामें होनी चाहिए, परन्तु फिर भी महेन्द्रकी ओर उसका अन्तःकरण उसी प्रकार खिंचता है जिस प्रकार भाईकी ओर बहनका खिंचता है । इसलिए उसे सन्देह होता है कि कहीं ये महेन्द्रको गिरिफ्तार करानेके लिए तो ऐसा नहीं कह रहे हैं । पर शीघ्र ही उसका वह सन्देह दूर हो जाता है और वह समझ लेती है कि कामाख्यनाथ सचमुच देवता हैं और वे महेन्द्रको संकटसे बचानेके लिए स्वयं संकटमें पड़नेको तैयार हैं। अब उसका भाव फिर बदल जाता है। वह सोचती है कि अपराधीके दंडका भागी निरपराध क्यों हो ? कामाख्यानाथके चले जाने पर कई दिनों बाद रातके समय महेन्द्र छिपकर कात्यायनीके पास आता है। जब वह कामाख्यानाथका संदेसा सुनता है, तब यही समझता है कि वे अपनी रक्षा करनेके लिए मुझे पुलिसके हाथमें देना चाहते हैं । और यदि मान लिया जाय कि कामाख्यानाथ उसकी रक्षा ही करना चाहते हों, तो भी वह ऐसा तुच्छ नहीं है कि ऐसे अवसरपर किसीकी कृपा या अनुग्रहका आकांक्षी हो । उस समय वह कात्यायनीके सामने अपना हृदय खोलकर रख देता है। वह उसे बतला देता है कि तुम्हारी अश्रद्धा, अविश्वास और घृणाने ही मुझे इस हीन अवस्थाको पहुँचा दिया है । यदि तुम और कुछ नहीं, केवल सहानुभूति ही दिखलातीं, तो कदापि मेरी यह दशा न होती। और मेरा तो इस संसारमें अब कोई या कुछ है ही नहीं। वह यह तक कहता है कि मैं तुम्हारे विश्वासके

अनुसार तुम्हें कामाख्यानाथके हाथ भी सौंप देता और तुम्हारा दासानुदास होकर अपना जीवन बिताता; परन्तु तुमने तो मेरा विश्वास करना ही छोड़ दिया। यदि तुमने मेरे साथ कभी सहानुभूति भी दिखलाई होती, तो आज कभी यह नौबत न आती। कात्यायनी प्रायः निरुत्तर सी हो जाती है।

महेन्द्रमें चरम सीमाकी सत्यनिष्ठा और तेजस्विता है। वह ऐसे मामलेमें किसीकी ओर विशेषतः कामाख्यानाथकी जिन्हें वह पिता तुल्य मानता हुआ भी कात्यायनीके व्यवहारसे अपना प्रतिद्वन्द्वीसा समझता है, किसी प्रकारकी सहायता या एहसान नहीं लेना चाहता। वह अपने आपको पुलिसके हवाले कर देता है और अदालतमें अपना अपराध आप स्वीकृत कर लेता है। उसे फाँसी तो नहीं होती, पर चौदह वर्षकी सजा हो जाती है। गिरिफ्तार होनेके समय वह अपनी बहनतुल्य कमलाका हाथ निरंजनको पकड़ा देता है और जेल जानेके समय कामाख्यानाथको परम भक्ति तथा श्रद्धाकी दृष्टिसे प्रणाम करता है।

महेन्द्रके इस अन्तिम आचरणका कात्यायनीपर विशेष प्रभाव पड़ता है। वह उसके लिए दुःखी होती है। केवल दुःखी ही नहीं होती, बल्कि उसके मनमें किसी और भावका संचार होता है—वैसे ही भावका संचार होता है जैसे भावका महेन्द्रकी अन्तिम बातें सुनकर होना चाहिए था। वह गंगाके घाटपर चली जाती है, जहाँ कामाख्यानाथसे उसकी भेंट होती है। कामाख्यानाथ उसे महेन्द्रका सारा आखिरी हाल सुनाते हैं और उसके लिए बहुत अधिक दुःख तथा चिन्ता प्रकट करते हुए उसके आचरणकी हृदयसे प्रशंसा करते हैं। वहीं कात्यायनी उनसे पूछती है कि यद्यपि मैं सदासे आपको पति रूपमें मानती आई हूँ, तो भी आज मेरे मनमें महेन्द्रके सम्बन्धमें ऐसा भाव क्यों उत्पन्न हुआ? वे कुछ मनोवैज्ञानिक उत्तर देकर उसे शान्त करते हैं। कात्यायनी कामाख्यानाथके पैरोंपर सिर रखती है। हमारी तुच्छ बुद्धिमें बहुत अच्छा होता यदि इसीके उपरान्त कात्यायनी तुरन्त गंगामें कूदकर अपने प्राण विसर्जित कर देती। कामाख्यानाथका उसे उठाकर गलेसे लगाना और उसका मस्तक चूमना दोनोंको ही शोभा नहीं देता और दोनोंको ही उनके परम उच्च आसन परसे कुछ नीचे ले आता है। महेन्द्रके सम्बन्धमें कात्यायनीके हृदयमें जो कलुषित भाव थोड़े समय पहले आया था, उसके पश्चात्ताप स्वरूप वह गंगामें कूदकर अपने प्राण दे देती है। कामाख्यानाथ भी उसके पीछे

जलमें कूदना चाहते हैं, पर निरंजन और रमा पीछेसे आ कर उन्हें पकड़ लेते हैं। इस प्रकार कथानककी समाप्ति होती है।

हमने ऊपर जो दो चार साधारण आक्षेप किए हैं, उनको छोड़कर शेष सारी पुस्तक अत्यन्त सुन्दर भावों, विचारों और आदर्शोंसे पूर्ण है और उसके प्रायः सभी चरित्र अद्भुत तथा अपूर्व हैं। प्रायः सभी पात्रोंमें यथेष्ट चरित्र-बल है, यथेष्ट त्याग है, यथेष्ट आत्म-निर्भरता है और सबसे बढ़कर आचरणकी शुद्धता तथा पवित्रता है। कहीं कोई कलुषित चरित्र आने ही नहीं पाया है। नैतिक दृष्टिसे प्रायः वही उपन्यास आदि सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं, जिनमें अनाचार और चरित्रभ्रष्टताका यथासाध्य कम दिग्दर्शन हो और इस दृष्टिसे यह उपन्यास बहुत ही उच्च कोटिका गिना जाना चाहिए, क्योंकि इस उपन्यासमें ये सब बातें कहीं नामको भी नहीं हैं। और सबसे बढ़कर बात यह है कि प्रत्येक चरित्रमें कुछ विशिष्ट व्यक्तित्व और कुछ विशिष्ट मौलिकता है—किसी चरित्रमें कोई ऐसी बात नहीं है, जो साधारणतः सब जगह पाई जाती न हो। हाँ यदि विशिष्ट स्थानोंमें भी वे न मिलें, तो फिर उनमें स्वाभाविकता ही न आ सके। इसलिए वे आदर्श होनेपर भी अस्वाभाविक या अतर्कित नहीं हैं। हाँ, कात्यायनीका चरित्र अवश्य ऐसा है जिसका जोड़ शायद ही कहीं मिल सके; और इसी लिए आरम्भमें ही हमने उसे अनुपम और अलौकिक कहा है। और एक बड़ी खूबी यह भी है कि उपन्यास दुःखान्त होनेपर भी अन्तमें पाठकोंको गद्गद करके ही छोड़ता है, उनके हृदयमें किसी प्रकारका विषाद नहीं आने देता। पुस्तक आरम्भ करते ही लेखिकाकी योग्यताकी जो छाप हृदयपर बैठती है, वह निरन्तर गहरी होती जाती है और अन्तमें उनके प्रति आप ही आप मुँहसे साधुवाद निकल पड़ता है। सचमुच यह उपन्यास रत्न है और इसकी लेखिका भी रत्न ही हैं।

काशी
२४ अगस्त, १९२८।

रामचन्द्र वर्म्मा।

विधाताका विधान।

पहला परिच्छेद।

बाबू कामाख्यानाथ ज्यों ही अपनी बैठकमें जाकर बैठे, त्यों ही नौकरने आकर उनसे कहा कि ज्योतिरत्न महाशय आ रहे हैं। यह सुनते ही वे बैठे न रह सके और हड़बड़ाकर उठ खड़े हुए। इतनेमें सफेद वस्त्र पहने हुए, सफेद उत्तरीयसे अपना शरीर ढके हुए और खड़ाऊँ पहने हुए एक प्रौढ़ ब्राह्मणने बैठकमें प्रवेश किया। जिस समय उन ब्राह्मण महाशयने दाहिना हाथ कुछ ऊपर उठाकर इशारेसे चुपचाप आशीर्वाद दिया, उस समय अनतिक्रान्त-यौवन, उन्नत महिमकान्ति और लब्ध-प्रतिष्ठ जमींदार बाबू कामाख्यानाथ मारे आनन्दके बालकोंकी तरह विह्वल हो गए और उन्होंने झुककर ब्राह्मण महोदयकी चरणरज लेकर मस्तकसे लगाई। उक्त ब्राह्मण देवताके शरीरपर कोई ऐसा चिह्न नहीं दिखलाई देता था जो पाण्डित्यके गौरवका प्रकाशक हो। उन दिनों हाथमें सुँघनीसे भरा हुआ बेल रखना, लंबा टीका लगाना और खूब लम्बी शिखा रखना, यही तीनों पाण्डित्यके सूचक लक्षण थे; और इन तीनोंमेंसे एक भी लक्षण पंडितजीमें नहीं था। तो भी उनका गोरा रंग, लम्बा चौड़ा शरीर,

उन्नत नासिका और प्रशस्त ललाट उनका जो कुछ परिचय देता था, उसके कारण जो कोई उन्हें देखता था, उसे उन्हें प्रणाम करनेके लिए विवश होकर आगे बढ़ना ही पड़ता था। जब दोनों आदमी बैठ गए, तब बाबू कामख्यानाथने जिज्ञासापूर्ण दृष्टिसे उनके मुखकी ओर देखा। ब्राह्मणके हाथमें हल्दीके रंगके लपेटे हुए दो कागज़ थे। बैठनेके समय उन्होंने वे दोनों कागज़ विस्तृत आसनपर एक ओर रख दिये थे। ज़मीन्दार महाशयके नीरव प्रश्नके उत्तरस्वरूप उन्होंने उन्हीं दोनों कागज़ोंकी ओर देखकर कहा,—मैंने जो कुछ अनुमान किया था, अब ठीक वही होता हुआ दिखलाई पड़ता है। लग्न स्थिर करनेके भ्रममें सारी जन्मपत्री ही ग़लत हो गई। जब लग्न ही ठीक नहीं था, तब मेरा जी नहीं चाहा कि जन्म-कुंडली और भाव-कुंडली बनाऊँ और ग्रहों तथा नक्षत्रोंके फलोंकी गणना करूँ। पर साथ ही मुझसे चुपचाप बैठा भी न रहा गया। निरंजनके जन्मस्थान और जन्मसमयका ठीक ठीक निर्धारण करके मैंने यह नई जन्मपत्री तैयार की है। इस जन्मपत्रीकी बातोंके साथ आपके लड़केके आकार प्रकार और स्वभाव आदिका बहुत कुछ मिलान मिलता है। खैर; इन सब बातोंको रहने दीजिए। आप इस बातका भय बिलकुल छोड़ दीजिए कि उसपर किसी प्रकारका अरिष्ट है। दीर्घ आयु देनेवाले लग्न और चन्द्रमामें ही निरंजनका जन्म हुआ है। मैं अभी आपको यह बात अच्छी तरह समझा देता हूँ कि जिस तरह यह पहली जन्मपत्री ठीक नहीं है, उसी प्रकार इसमें बतलाए हुए अरिष्ट भी बिलकुल मिथ्या हैं।

ज़मीन्दार महाशय स्तब्ध नेत्रोंसे ब्राह्मणकी ओर देखते रहे। जिन ब्राह्मण देवताके मुँहसे यह बातें निकलीं थीं, यद्यपि उनके प्रति बाबू कामाख्यानाथके मनमें एकान्त और अखंड विश्वास था और उनकी

सब बातोंको वे सत्य समझते थे, तथापि उनका मन मानों बहुत दिनोंके बँधे हुए संस्कारको एकदम छोड़नेके लिए तैयार नहीं होता था । इसी लिए ये सब बातें सुनकर भी बाबू कामाख्यानाथ विचलित नहीं हुए और स्थिर भावसे ब्राह्मण महोदयके मुखकी ओर देखते रहे। उनका बहुत दिनोंसे दुर्भावनाओंसे ग्रस्त और निराश मस्तिष्क इस अभावनीय संवादको इतने सहजमें धारण नहीं कर सकता था । ज्योतिरत्न महाशयने बाबू कामाख्यानाथके इस विमूढ़ भावका अर्थ समझ लिया और कहा—मुझे इस जन्मपत्रीमें सन् और तारीखके साथ आपके लड़केके जन्मस्थानका नाम लिखा हुआ नहीं मिला । क्या जन्मपत्री बनानेवाला यह नहीं जानता था अथवा आपने उससे नहीं कहा था कि इस बालकका जन्म बंगाल देशकी उत्तरी सीमा परके कूचबिहार राज्यमें हुआ था ?

कामाख्यानाथने उत्तर दिया—यह तो मैं नहीं कह सकता, क्योंकि उस समय निरंजनके नाना जीते थे । उन्होंने निरंजनके जन्मके दो तीन बरस बाद किसी ज्योतिषीसे यह जन्मपत्री तैयार कराई थी ।

ज्यो०—निरंजनके नाना कहाँ रहते थे ?

का०—यहीं पासके एक गाँवमें। परन्तु पहले वे कूचबिहारमें रहा करते थे। निरंजनके जन्मके थोड़े ही दिनों बाद उन्होंने विदेशका रहना छोड़ दिया और बाल बच्चोंको लेकर अपने देशमें आकर रहने लगे । इसके बाद वे कहीं बाहर नहीं गये।

ज्यो०—तब तो प्रायः यही सम्भव है कि उन्होंने इसी देशके किसी पंडितसे यह जन्मपत्री तैयार कराई हो । जान पड़ता है कि वे ज्योतिषीको बालकका जन्मस्थान बतलाना भूल गए थे । अथवा उन्होने यह सोचा हो कि जन्मस्थान बतलानेकी कोई विशेष आवश्यकता ही नहीं है ।

का०—हाँ, यह हो सकता है। मैं उन दिनों छोटा था, बड़े बूढ़ोंके कामोंमें दखल नहीं दिया करता था। तो भी आपकी इस समयकी

बातें सुनकर मुझे स्मरण आता है कि उन्होंने एक कागजपर निरंजनके जन्मका सन्, तारीख और समय लिख रखा था। ज्योतिषीने उसीको देखकर जन्मपत्री बनाई होगी।

ज्योतिरत्नजीने बहुत गम्भीर होकर कहा—परन्तु ज्योतिष जाननेवाला हर एक पंडित समझता है कि इस दक्षिण बंगालमें कहीं कहीं एक राशिके लग्नमानमें दो तीन पलकी कमी वेशी हुआ करती है। जिन लोगोंको जन्मपत्री तैयार करनेके लिए पहले लग्न तक स्थिर करना पड़ता है, उन्हें सबसे पहले यह जान लेना चाहिए कि जातकका जन्म किस स्थानपर हुआ है। जन्मपत्री बनानेवालेकी इतनी बड़ी भूलसे बड़ा अनर्थ होता है। परन्तु यह भूल दोनों ओरसे हुई है। खैर; अब तो अपने अनुमानके लिए एक बहुत दृढ़ आधार मिल गया। जन्मपत्री बनानेवालेने जन्म-समयमें दक्षिण बंगालके लग्नमानके अनुसार मेष राशिमें लग्न स्थिर किया था। परन्तु बालकका जन्म यहाँसे बहुत दूर उत्तर बंगालमें हुआ था। वहाँके लग्नमानमें और यहाँके लग्नमानमें बहुत अन्तर है। यहाँसे चार पाँच पल पहले ही वहाँ वृष राशिका उदय हुआ होगा और जब इस प्रकार लग्न एक राशिसे दूसरे राशिमें चला गया, तब सारी जन्मपत्री ही व्यर्थ और निकम्मी हो गई।

अब मानो कामाख्यानाथकी समझमें सब बातें अच्छी तरह आ गईं। इस नवीन धारणाके साथ ही साथ मानो उनके मनमें एक नवीन आशाका संचार हुआ। उन्होंने कुछ व्यग्र स्वरमें कहा—आपने तो नया लग्न निरूपण करके ही न यह संक्षिप्त जन्मपत्री बनाई है?

ज्यो०—भला संक्षिप्त जन्मपत्री बनाकर मैं कैसे ला सकता था? शुभ ग्रहके द्वंद्वमें और अपापविद्ध स्थानमें इस लग्नकी स्थिति देखकर

और भावस्फुट गणनासे भावकुंडलीमें बलवान् चन्द्रमाको तुंग रूपमें लग्नस्थ देखकर निरंजनकी पूरी और बड़ी जन्मपत्री बनाकर ही मैं निश्चिन्त हुआ। जन्मपत्रीमें लग्न ही सब कुछ है। उसी लग्नमें अशुभ दर्शनके बदले ऐसा अचिन्तनीय शुभ संयोग देखकर ज्योतिषी मात्र आपसे आप समस्त जीवनका फलाफल जाननेके लिए व्यग्र हो उठता है।

का०—यही नहीं बल्कि मैं तो देखता हूँ कि जब आपने यह सुना था कि निरंजनको मारकेश पड़ा है, तब आप बहुत दुःखी थे और आपने केवल कुतूहलवश उसकी जन्मपत्री नहीं देखी थी।

ज्योतिरत्नने हँसते हुए कहा—यह तो ठीक ही है। परन्तु निरंजनका चेहरा देखकर भी मुझे यह विश्वास नहीं होता था कि वह अल्पायु है। बहुत दिनोंतक ज्योतिष-शास्त्र देखते देखते अनुमान-शास्त्रमें भी तो मेरा बहुत कुछ प्रवेश हो गया है न। लेकिन यह सब जानते और समझते हुए भी मुझे बहुत कुतूहल हुआ था। पहले निरंजनकी जन्म-पत्री देखनेके लिए मैंने जो इतना आग्रह किया था, उसका कारण यही था कि मैं बहुत सूक्ष्म भावसे अनुसन्धान करके यह जानना चाहता था कि किसी शुभ योगका आभास मिलता है या नहीं; और यदि आभास मिल जाय तो आपको कुछ आश्वासन दूँ। अब तो मेरा कहना केवल यही है कि मेरी तैयार की हुई यह जन्मपत्री आप एक बार किसी अच्छे और प्रसिद्ध ज्योतिषीको दिखला लें। शायद मुझसे भी कोई भूल हो गई हो।

कामाख्यानाथने रोककर कहा—अब फिर ऐसा आदेश मत कीजि-एगा। निरंजनकी जन्मपत्री जबसे तैयार हुई है, तबसे इधर सत्रह वर्षमें वह कई बड़े बड़े ज्योतिषियोंको दिखलाई जा चुकी है। सब लोगोंने

जन्मपत्री देखकर बराबर अरिष्ट ही बतलाया; और यह अरिष्ट दूर करनेके लिए बहुतसे होम, जप और स्वस्त्ययन आदि भी हो चुके हैं। परन्तु किसीने आपकी तरह सन्देह करके लग्न स्थिर करनेके सम्बन्धमें इस बातपर विचार नहीं किया और न जन्मस्थानके नामका ही कोई जिक्र किया। सभी लोग बस जन्मपत्रीमें लिखे लग्नको ही मानकर चलते रहे हैं। आज जब आपने दूसरे विधाता पुरुषकी भाँति निरंजनके जीवनके सम्बन्धमें नया सांकेतिक प्रकाश दिखलाया है, तब मैं यह नहीं चाहता कि एक और नया सन्देह खड़ा करके यह प्रकाश बुझा दूँ। यह बात नहीं है कि मैं बिलकुल अन्ध भावसे ज्योतिषपर विश्वास रखता हूँ। मैं यह जानता हूँ कि मनुष्यके सब प्रकारके ज्ञान और बुद्धि-कौशलके ऊपर एक महा नियन्ताकी उँगली ही सदा विजय प्राप्त करती है। चारों ओरसे पूरी पूरी निराशा होनेपर भी मैं उसी नियन्त्रण करनेवाली शक्तिपर निर्भर रहकर अपना कर्तव्य करता आ रहा हूँ। अब आपकी बातोंसे मुझमें नई आशाका संचार हुआ है और मैं अपने आपको उसी विधिके विधानपर छोड़ देता हूँ। यद्यपि मैं बराबर यही समझता था कि निरंजनकी आयु अधिक नहीं है, तो भी उसकी प्रबल ज्ञान-तृष्णा देखकर मैंने उसे पढ़ाने लिखानेमें न तो कभी कोई कसर की और न उसमें बाधा दी। आप तो देखते ही हैं कि सिर्फ पढ़ाई लिखाईके लिए ही वह प्रायः यहाँ न रहकर शहरमें रहा करता है। आजतक मैंने कभी यह नहीं सोचा कि यह जितने दिन है, मेरे पास ही रहे। अरिष्टके भयसे मैंने उसकी पढ़ाई लिखाईमें कभी बाधा नहीं दी।

ज्योतिरत्न महाशयने उन दोनों जन्मपत्रियोंमेंसे एक जन्मपत्री हाथमें उठा ली और धीमे स्वरमें कहना आरम्भ किया—चौथे भावमें जो केन्द्रगत बलवान् बुध है, उससे यही निर्दिष्ट होता है कि इस बालकमें विद्या

और पांडित्य बहुत अधिक होगा। दशमस्थ तुंगी ग्रह भी बालकके बहुत अधिक सौभाग्यका सूचक है। बालकका जन्म ऐसे लग्न और चन्द्रमामें हुआ है कि उसकी आयु बहुत अधिक होगी। तनु भावस्थ बृहस्पति, केन्द्रवर्ती तुंगी आत्मकारक और शुभभावस्थ रवि भी इस दीर्घायु योगमें सहायक हो रहे हैं। यह बालक अल्पायु हो ही नहीं सकता।

कामाख्यानाथने झुककर ज्योतिरत्नके चरण छूए और कहा—आप उसे आशीर्वाद दीजिए जिसमें आपकी यह शुभ कामना सफल हो। अब इससे और अधिक कोई बात जाननेकी मुझे कोई आवश्यकता नहीं है। वह बहुत ही छोटा था, जब कि उसकी माताका देहान्त हो गया; इसी लिए—।

ज्योतिरत्न महाशयने बीचमें ही रोककर कहा—यह तो उसकी जन्मपत्रीसे ही सिद्ध होता है कि उसे माताका बहुत ही कम सुख है। चतुर्थदर्शी मंगलकी अन्तर्दशामें ही माताकी मृत्यु हुई है। पर इस जन्मपत्रीमें सामान्य कष्टके अतिरिक्त मुझे और कोई बात दिखाई नहीं देती।

कामा०—हो सकता है। परन्तु इन सब विषयोंमें मेरी जो धारणा थी, वह मैंने आपसे कह दी। मैं बहुत दिनोंसे सुनता आ रहा हूँ कि मेरी जन्मपत्रीमें लिखा है कि अन्तिम अवस्थामें मैं भग्नहृदय और नष्ट-संज्ञ हो जाऊँगा। इसी लिए मैं सोचता था कि कहीं निरंजनके कारण ही मुझे यह कष्ट न हो। पर आज जो मैं अपनी इस धारणाका परि-त्याग करता हूँ, वह केवल आपका ही अनुग्रह है।

ज्योतिरत्न महाशय कुछ देर तक चुपचाप रहकर कामाख्यानाथके प्रशान्त और गम्भीर मुखकी ओर देखते रहे। फिर उन्होंने मृदु स्वरमें

कहा–क्या आपकी अन्तिम अवस्था इस प्रकार बीतेगी? यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है! लेकिन निरंजनके पितृ-स्थानमें मुझे तो कोई ऐसी बात दिखाई नहीं देती। पर मुझे पहलेसे इस विषयमें किसी प्रकारकी शंका भी नहीं थी; इसी लिए मैंने इस बातकी अच्छी तरह जाँच नहीं की।

इतना कहकर ज्योतिरत्न महाशय दूसरी बड़ी जन्मपत्री खोलने लगे; परन्तु कामाख्यानाथने उन्हें बीचमें ही रोककर कहा–नहीं, अब आप इसके लिए व्यर्थ कष्ट न करें, अब इस विषयमें मेरे मनमें जरा भी कुतूहल नहीं रह गया है। संसारमें एक लड़का और एक लड़की बस यही दोनों मेरे अवलम्बन हैं। लड़कीके भाग्यमें जो कुछ लिखा था, वह तो भगवानने मुझे उसकी अवस्थाके बारहवें वर्षमें ही बतला दिया था। केवल निरंजनके अरिष्टका मुझे ध्यान रहता था। पर फिर भी मैं यही कहा करता था कि यद्भाव्यं तद्भवतु भगवन् पूर्वकर्मानुरूपं। जिसे अपनी सन्तानके सम्बन्धमें ही इतनी अधिक चिन्ताएँ करनी पड़ती हों, वह स्वयं अपने लिए किसी प्रकारकी चिन्ता कर ही नहीं सकता। परन्तु आशामें भी एक बहुत बड़ा दोष है। आज आपने जिस प्रकारकी दक्षतासे निरंजनकी जन्मपत्रीके फलमें परिवर्तन कर दिया है, उसने मेरे मनमें इस प्रकार अलक्षित रूपसे आशाका संचार कर दिया है कि अब मैं सोचता हूँ कि यदि रमाके विवाहके समय आप इस गाँवमें आए होते, तो मैं उसे कभी ऐसे अल्पायु पात्रको न सौंपता। आप मेरी लड़की रमाका हाल जानते हैं?

ज्यो०—कात्यायिनीसे मैं उसका नाम तो बराबर सुना करता हूँ। भला इस गाँवमें कौन ऐसा होगा जो आपके बाल बच्चोंको न जानता हो! और फिर दीन दरिद्रोंमें तो एक भी ऐसा न होगा जो उन्हें न

जानता हो। आत्मा वै जायते पुत्रः। आखिर तो वे आपकी ही सन्तान हैं। पन्द्रह सोलह वर्षकी लड़कीमें इतनी दया माया और इतनी देव-भक्ति; ऐसी बातें तो मैंने बस पुराणों आदिमें ही पढ़ी थीं।

कामाख्यानाथने ठंढी साँस लेते हुए कहा—स्नेहके कारण अन्धे होकर लोग इस प्रकारकी न जानें कितनी ही असार जल्पनाएँ किया करते हैं। वे अपने मनमें इस बातका तो कभी विश्वास ही नहीं करना चाहते कि जो कुछ शुभ और जो कुछ श्रेयः होता है, वही उस नियन्ताके हाथसे इस संसारमें उतर आता है। इसी लिए मुझे कभी कभी ऐसी भ्रान्ति होती है कि भगवान्के चरणमें जो फूल उत्सर्ग किया जाता है, वह भी नष्ट होता है। ज्योतिरत्न महाशय, मैं अपनी इस कन्याका हाल आपको क्या बतलाऊँ—इतना कहते कहते कामाख्यानाथकी आँखोंमें स्नेहके कारण जल भर आया।

ज्योतिरत्नने सहानुभूतिपूर्वक उत्तर दिया—कामाख्यानाथजी, कात्यायनीके मुँहसे मैं सभी बातें सुन चुका हूँ। महेन्द्रसे निरंजनका हाल भी सुना है। वे लोग आपके लड़के और लड़कीके गुणोंपर बहुत ही मुग्ध हैं।

कामाख्यानाथने सम्मानपूर्वक कहा—आप जो मुझपर बिना किसी हेतुके ही इतना अधिक स्नेह रखते हैं, वही इसका एक मात्र कारण है। अभी आपको इस गाँवमें आए थोड़े ही दिन हुए हैं। परन्तु इन थोड़े दिनोंके परिचयसे ही मुझे मानो ऐसा जान पड़ने लगा है कि स्वर्गसे मेरे पितृदेव लौट आए हैं। मेरी प्रत्येक चिन्ता और प्रत्येक मानसिक कष्टके कारण आप सदा जिस प्रकार व्यग्र रहते हैं, उसी प्रकार उसके प्रतिकारके लिए भी व्यस्त रहते हैं। आपके परिवारके

लोगोंके साथ मेरे पुत्र और कन्याका जो स्नेह-बन्धन है, उसे मैं अपने लड़के और लड़कीके लिए बहुत बड़े सौभाग्यकी बात समझता हूँ। इन थोड़े दिनोंमें ही आपके परिवारके लोगोंने अपने आपको गाँव भरके लोगोंकी श्रद्धाका भाजन बना लिया है। जो हो, पर मैं एक बातकी ओर आपका ध्यान दिला देना चाहता हूँ कि आप मुझे सदाके लिए एक प्रकारसे स्नेह और अभय दान देकर भी धर्मके सामने पतित कर रहे हैं।

ज्यो०—हैं! यह आप क्या कहते हैं! आप सरीखे स्वभावसे ही धार्मिक पुरुषको मैं अधर्ममें प्रवृत्त करता हूँ?

कामाख्यानाथने बहुत ही विनीत भावसे कहा—आप मुझे 'तुम' कहकर सम्बोधन किया करें।

ज्योतिरत्न महाशयने हँसते हुए कहा—अच्छा ऐसा ही सही। लेकिन अभी तुमने जो बात कही थी, उसका क्या अर्थ?

कामा०—मैंने कई बार मनमें विचार किया कि वह बात आपसे कहूँ, पर मुझे साहस नहीं होता था। धीरे धीरे आपके स्नेहका इतना परिचय पाकर आज मुझे कहनेका साहस हुआ है। आप मुझपर पुत्र-तुल्य स्नेह रखते हैं। मैं भी आपकी ही जाति और श्रेणीका हूँ; लेकिन फिर भी आप मुझे अपने गंगा तीरके निवासके लिए मालगुजारी लेनेके लिए बाध्य करते हैं। जिस स्थानसे कर लेनेका शास्त्रोंमें निषेध है, उस देवमन्दिरके पासकी और गंगातटकी देवभूमिकी मालगुजारी भी मुझे चुपचाप लेनी पड़ती है। और फिर इसमें आपत्ति करनेका भी मुझे साहस नहीं होता।

ज्योतिरत्न महाशयने स्नेहपूर्वक और हँसते हुए कहा—कामाख्यानाथ, तुम तो शास्त्रोंकी बातोंसे भली भाँति अवगत हो। तुम मेरा पितृतुल्य

सम्मान करते हो। उसी अधिकारसे मैं भी तुम्हारे साथ यथेष्ट दौरात्म्यका व्यवहार करता हूँ।

कामा०—यदि यह बात छोड़ दी जाय, तो भी आज तक मुझे कोई ऐसा सुयोग नहीं मिला, जिससे मैं आपके प्रति अपनी थोड़ी बहुत श्रद्धा भक्ति भी प्रकट करके कृतार्थ होता।

ज्यो०—भला यह तो बतलाओ कि तुम्हारी यह श्रद्धा मेरे लिए जितना अधिक मूल्य रखती है, उतना अधिक मूल्य और भी कोई चीज रखती है? और फिर तुम तो मुझे नित्य ही सब कुछ दिया करते हो। इससे अधिक तुम अपनी और श्रद्धा क्या और कैसे प्रकट करोगे? अनाथों और दरिद्रोंकी बात जाने दो, तुम तो सदा सहायताकी प्रार्थना करनेवाले और आर्थिक कामनासे रहित ब्राह्मणोंको अजस्र दान दिया करते हो। उन ब्राह्मणोंमेंसे मेरे जैसे अप्रसिद्ध और अज्ञात ब्राह्मणने जितना कुछ पाया है, उतना क्या और किसीने भी पाया है? इसीलिए मैं कहता हूँ कि एक मिथ्या क्षोभसे अपना मन व्यर्थ दुखी मत करो।

थोड़ी देर तक कामाख्यानाथ बिलकुल चुप रहे। सहसा मानो उन्हें कोई बात याद आ गई और उन्होंने व्यग्र भावसे कहा—लेकिन आपने अपने भावी जामाता महेन्द्रकी लिखाई पढ़ाईके विषयमें—

ज्योतिरत्न महाशय मानो यह बात नहीं सुनना चाहते थे। उन्होंने सिर हिला कर और कुछ उत्तेजित होकर कामाख्यानाथको बीचमें ही रोककर कहा—महेन्द्र मेरा भावी जामाता नहीं है, वह मेरा पुत्र है, पालित पुत्र है। क्या यह बात तुम्हें नहीं मालूम?

कामा०—जी हाँ, यह तो मैं जानता हूँ। परन्तु कुछ लोग यह भी कहते हैं कि आपने एक उपयुक्त वर अपने घरमें ही रख लिया है;

और इसी लिए कन्याकी अवस्था अधिक हो जानेपर भी आप उसके विवाहके लिए किसी प्रकारका प्रयत्न नहीं करते।

ज्यो०—नहीं कामाख्यानाथ, महेन्द्र अनाथ है; इसी लिए मैं उसे बहुत दिनोंसे अपने पास रखे हुए हूँ। मेरे घरमें बहुत दिनों तक कोई सन्तान नहीं हुई थी, इसी लिए मेरी स्त्रीने उसे अपने पास रखकर पुत्रके समान पाला था। कात्यायनी हम लोगोंकी अन्तिम अवस्थाकी सन्तान है। ब्राह्मणी महेन्द्रको अपने पुत्रसे भी बढ़कर समझती है; इसी लिए उसके मुँहसे लोग इस प्रकारकी बातें सुनकर यह अनुमान करते हैं कि मैं अपनी कन्याका विवाह भी उसीके साथ करूँगा।

कामा०—यदि ऐसा हो भी जाय, तो मेरी समझमें बहुत अच्छा है। मैंने महेन्द्रको देखा है। देखने सुननेमें भी वह बहुत सुन्दर है। उसके स्वभाव और विद्या-बुद्धिके सम्बन्धमें मैंने जो कुछ सुना है—

ज्यो०—कामाख्यानाथ, यह ठीक है कि रूप और गुण आदि सभी बातोंके विचारसे कात्यायनीके लिए महेन्द्र बहुत उपयुक्त पात्र है, परन्तु फिर भी यह विवाह किसी प्रकार नहीं हो सकता। यदि यह विवाह हो सकता होता, तो क्या सत्रह वर्षकी अवस्था तक कात्यायनी अविवाहित रहती? यह सम्बन्ध किसी प्रकार हो नहीं सकता।

इतना कहते कहते ज्योतिरत्न महाशयने एक साँस ले ली।

कामाख्यानाथ जो बात कहना चाहते थे, प्रसंगवश उसके लिए बहुत अच्छा अवसर हाथ आ गया था। परन्तु जब उनकी वह बात इस प्रकार कट गई, तब वे कुछ दुखी हुए और फिरसे वह अवसर प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हुए उन्होंने कुछ कुंठित भावसे कहा—क्या मैं आपसे यह पूछ सकता हूँ कि इस सम्बन्धमें कौनसी बात बाधक हुई? आप

मुझे अपने पुत्रके समान समझते हैं, इसी लिए मुझे आपसे यह प्रश्न करनेका साहस हुआ है।

ज्यो०—नहीं, इसमें कुंठित होनेकी कोई बात नहीं है। बात यह है कि मेरी कन्याके गण, राशि और वर्ण आदि अत्यन्त उच्च हैं। उसके लिए उपयुक्त पात्र ढूँढ़नेके विचारसे इधर छः सात वर्षोंमें मैंने बहुतसे लड़कोंकी कुंडलियाँ देखी हैं, पर आजतक मुझे उसके लिए एक भी उपयुक्त वर नहीं मिला। साधारण लड़कोंकी कुंडलियोंसे मेरी लड़कीकी कुंडली किसी तरह मिलती ही नहीं। जबतक उसे कोई उपयुक्त पति न मिलेगा, तबतक शुभ लग्नस्थ बृहस्पतिकी सप्तमपर पड़नेवाली पूर्ण दृष्टिका सारा फल ही वृथा हो जायगा। जिस ज्योतिषशास्त्रके साक्षी ये सूर्य और चन्द्रमा हैं, वह क्या झूठा हो जायगा?

कामाख्यानाथने कुछ विस्मित होकर कहा—सचमुच यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। आपने अबतक इतने पात्रोंकी कुंडलियाँ देखीं, पर आपको अपनी कन्याके लिए एक भी उपयुक्त वर न मिला?

ज्यो०—हाँ हुई तो कुछ ऐसी ही बात है। जो थोड़ेसे सुपात्र वर मुझे मिले भी, उनमेंसे कोई हीन वर्ण था और कोई हीन गणराशिवाला। कहीं चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह और तारा आदि प्रतिकूल पड़ते थे, कहीं अरिष्टषडक, त्रिषम सप्तक और अरिद्विद्वादश आदि दोष पड़ते थे। ये सब दोष बिलकुल ही त्याज्य हैं। और फिर जिन लड़कोंकी कुंडलियोंमें ये सब दोष नहीं थे और जो ज्योतिषशास्त्रकी दृष्टिसे उपयुक्त थे, वे प्रायः अयोग्य और कुपात्र थे। और कुपात्रके हाथमें कन्याको सौंपनेकी अपेक्षा उसे अविवाहित रखना सौ गुना अच्छा है।

कामा०—आप सरीखे बड़ों और समझदारोंके लिए यह बात बहुत ही उपयुक्त है; पर साथ ही आपको समाजकी बात भी कुछ विचार कर लेना चाहिए।

ज्यो०—मैं इस प्रकारकी बातोंसे नहीं डरता। हम लोग ठहरे मुख्य कुलीन। अच्छा घर वर न मिलनेके कारण मेरी एक बूआ आजन्म कुमारी ही रही थीं। समाज हम लोगोंकी जाति नष्ट करनेकी शक्ति नहीं रखता।

कामा०—तो क्या फिर आपकी यही इच्छा है कि कन्याका विवाह ही न हो ?

ज्यो०—भला यह कभी हो सकता है! क्या अपनी गौरी समान कन्याके लिए शिवके समान उपयुक्त वर मिलनेके लिए मैं दिन रात ईश्वरसे प्रार्थना नहीं किया करता ? व्यर्थ बहुतसी जन्म कुंडलियोंको देखते देखते अन्तमें मैंने अपने मनके अनुसार एक कल्पित कुंडली तैयार की है। अब मैं किसी पात्रकी जन्मकुंडली देखते ही उसके लग्न और ग्रहोंको देखते ही यह समझ लेता हूँ कि यह मेरी कन्याके लिए उपयुक्त है या नहीं। जबसे मैंने कात्यायनीके विवाहके लिए उपयुक्त वरके गण, राशि, वर्ण, नक्षत्र, चन्द्र और तारा आदिका हिसाब करके अपने मनसे कल्पित जन्मपत्री तैयार कर ली है, तबसे मैं व्यर्थ कष्ट नहीं करता। नई जन्मपत्री हाथमें आते ही मैं तुरन्त समझ लेता हूँ कि यह वर कात्यायनीके लिए उपयुक्त नहीं है। मेरी कल्पित जन्मपत्री सदा मेरी आँखोंके सामने बनी रहती है।

कुछ देर तक चुप रहनेके बाद कामाख्यानाथने कहा—आपके सामने कुछ कहना तो धृष्टता ही है, तो भी स्नेहके अधिकारसे मैं कुछ कहना चाहता हूँ। जिस अदृष्ट या विधिके विधानके अनेक अकल्पित और अचिन्त्य रहस्य नित्य इस संसारमें देखनेमें आते हैं और जिनके कारण-सूत्रोंका आज तक कोई शास्त्र निश्चित रूपसे पता नहीं लगा सका, क्या उस अदृष्ट या विधि-विधान नामक विश्वनियन्ताकी बातोंको

अच्छी तरह समझनेकी इस क्षुद्र मनुष्यमें शक्ति है ? यह बात कभी मनुष्यकी धारणामें आ ही नहीं सकती कि वह विश्वनियन्ता किस जगह मनुष्यको क्या दिखलाता है, क्या समझाता है और अन्तमें किस अपूर्व रूपसे उसका फल उसी विधिके विधानमें ही मिला देता है। यदि आप इसे मेरा अपराध न समझें, तो मैं कहूँगा कि यदि व्यर्थ इतना न भटककर आप अपनी समझसे किसी योग्य वरको कन्याका हाथ पकड़ा देते, तो विधिका विधान भी समान रूपसे पालित होता; और जो आपको यह मानसिक अशान्ति तथा उद्विग्नता हो रही है, उससे भी आप बचे रहते।

ज्योतिरत्नने ठंढी साँस लेते हुए कहा—तुम जो कुछ कहते हो, वह है तो ठीक; लेकिन बहुत दिनोंसे मेरा जो संस्कार चला आ रहा है, उसके कारण अब मैं इस मार्गसे हट भी तो नहीं सकता। अब तो मुझे सदा इसी पथपर चलना पड़ेगा। मैंने जो अपनी कल्पित कुंडलीकी बात तुम्हें सुनाई है, उसके कारण शायद तुम यह समझते होगे कि मेरा दिमाग फिर गया है। और बात भी कुछ कुछ यही है कि उसके विवाहकी चिन्ता करते करते और अनेक जन्मपत्रियाँ देखते देखते हताश होनेके कारण मैं विभ्रान्त हो गया हूँ। सम्भव है कि शुक्रकी वक्रताके कारण कात्यायनीका विवाह ही न हो, किन्तु बृहस्पतिके सुसंयोगकी आशा भी मैं कभी छोड़ न सकूँगा। यदि उपयुक्त पात्र न मिलनेके कारण कात्यायनीका विवाह न हो, तो इसके लिए मैं दुःखी नहीं होऊँगा। कामाख्यानाथ, तुम अपने मनमें कभी यह न समझना कि इस सर्वशुद्धा गौरीके समान कन्याकी इस उच्चांगकी कुंडलीके कारण मैं कुछ विपद्ग्रस्त हूँ। मेरा तो यह विश्वास है कि बड़े पुण्यसे मैंने ऐसी कन्या पाई है।

कामाख्यानाथने कुछ अस्पष्ट स्वरमें कहा—भगवानकी लीला! और तब स्पष्ट स्वरमें कहा—परन्तु आपने महेन्द्रके विषयमें तो कुछ कहा ही नहीं। उसके—

ज्यो०—महेन्द्रकी बात छोड़ दो। उसकी जन्मकुंडलीकी बात तो मैं किसी प्रकार भूल ही नहीं सकता।

कामा०—मैं उसके विवाहकी बात नहीं कहता। मैं तो केवल यह जानना चाहता हूँ कि आपने उसे इस अवस्थामें भी अपने घरमें क्यों रख छोड़ा है?

ज्योतिरत्न महाशय अब अपने मस्तिष्कको प्रकृतिस्थ करनेका प्रयत्न करने लगे। कन्याके विवाहके सम्बन्धमें बातें करते करते मानो वे बाह्य ज्ञानसे रहित हो गए थे। अब दूसरा प्रसंग छिड़नेपर उन्होंने अपने मनको स्थिर और शान्त करते हुए कहा—ओः—हाँ महेन्द्रको! जबसे हम लोग इस गाँवमें आए हैं, तबसे उसकी पढ़ाई लिखाईकी कोई ठीक व्यवस्था नहीं हो सकी है।

कामा०—निरंजनसे उसकी विद्या और बुद्धिके सम्बन्धमें मैंने जो कुछ सुना है, उससे तो मैं समझता हूँ कि यदि उसे शहरमें रखकर पढ़ाया लिखाया जाय, तो वह थोड़े ही समयमें बहुत अधिक उन्नति कर सकता है।

ज्यो०—मैंने उसे कई बरस तक पढ़नेके लिए शहरमें रक्खा था; पर मेरी स्त्रीको इससे बहुत दुःख और कष्ट होता था। वह चाहती है कि महेन्द्रने मुझसे जो कुछ सीख लिया है, वही उसके लिए बहुत है। वह भी आगे चलकर मेरे ही समान ब्राह्मण पंडित बनकर जीविका निर्वाह करे। इसीलिए विवश होकर साल भरसे लिखना पढ़ना छुड़ाकर अपने पास बुला लिया है; और अब मैं स्वयं ही उसे ज्योतिष पढ़ाया करता हूँ।

कामा०—आप तो मेरी अपेक्षा यह बात बहुत अच्छी तरह जानते ही होंगे कि जब तक मनुष्यको देश कालके उपयुक्त विद्या न आवे, तब तक उसकी यथेष्ट उन्नति नहीं होती और वे तो स्त्री ठहरीं, वे तो जिसे सन्तानके तुल्य समझतीं हैं, उसके लिए विशेष कातर होंगी ही । परन्तु यदि उन्हें अच्छी तरह यह बात बतला दी जाय कि इसमें सन्तानकी क्या और कितनी हानि है, तो वे बड़ी प्रसन्नतासे यह कष्ट सहनेके लिए तैयार हो जायँगी ।

ज्यो०—यह ठीक है; पर इसमें एक बात और है । पर उसे जाने दो । मैं तो उसका बिलकुल ही विरोधी हूँ । मैं भी यह चाहता हूँ कि महेन्द्र हम लोगोंसे दूर ही रहा करे । लेकिन जबसे मैं इस गाँवमें आया हूँ, तबसे उसे शहर भेजनेका मुझे सुभीता ही नहीं हुआ ।

कामाख्यानाथने हाथ जोड़ कर कहा—मेरी एक भिक्षा है । यदि आप मेरी यह प्रार्थना स्वीकृत न करेंगे, तो मैं समझूँगा कि आप मुझ-पर नितान्त ही अवकृपा रखते हैं ।

ज्योतिरत्नने थोड़ी देर तक कामाख्यानाथके मुँहकी ओर देखनेके उपरान्त कहा—मैं समझता हूँ कि तुम क्या चाहते हो । परन्तु सुनो कामाख्यानाथ, यद्यपि वह अवस्थामें निरंजनसे तीन चार बरस बड़ा है, तथापि विद्याके विचारसे वह अभी उसका संगी होनेके योग्य नहीं है । बाल्यावस्थामें मैंने उसे कुछ बँगला और संस्कृत की शिक्षा दी थी । वह अच्छी तरह फारसी भी जानता है । परन्तु राजभाषाके ज्ञानमें वह निरंजनके समान नहीं है ।

कामा०—आप क्या कह रहे हैं ! उसका संस्कृत और फारसीका ज्ञान निरंजनकी अपेक्षा बहुत अधिक है । उसके सरीखा संगी पाकर

निरंजन धन्य होगा । मैं उसकी जैसी प्रतिभायुक्त मुखश्री देखता हूँ और उसकी बुद्धिमत्ताके सम्बन्धमें जो बातें सुनता हूँ उससे मैं समझता हूँ कि अँगरेजीमें भी निरंजनके समान योग्यता प्राप्त करनेमें उसे अधिक बिलम्ब न लगेगा। बस अब आप इस सम्बन्धमें अपनी स्वीकृति देकर ही मुझे कृतार्थ करें ।

पहले तो कुछ देर तक ज्योतिरत्न महाशय चुपचाप रहे फिर ठंढी साँस लेकर मानो आपही आप कहने लगे—न जाने क्यों मुझे पौरुष इसप्रकार भूल गया है । मैं क्यों दिनपर दिन इतना निराश होता जाता हूँ। नहीं कामाख्यानाथ, मैं ऐसा सुयोग हाथसे न जाने दूँगा । मैं उसे तुम लोगों सरीखे देव-सहवासमें ही रक्खूँगा। मैंने सुना है कि भाग्यदेवी भी कभी कभी पौरुषके आगे हार मान बैठती हैं। लेकिन सुनो कामाख्यानाथ, तुम्हें मेरी एक बात माननी पड़ेगी । तुमसे मैंने जो जमीन लगानपर ली है, उसका आधा उपस्वत्व भी तुम्हें महेन्द्रके लिए लेना होगा। तुम यदि मेरी यह बात मान कर और उसके मंगल तथा उन्नतिकी कामना करके उसे अपने पास रखना चाहो, तो ऐसा हो सकता है ।

कामाख्यानाथ कुछ दुःखितसे होकर थोड़ी देर तक चुप रहे। ज्योतिरत्नने फिर कोमल स्वरसे कहा—मुझपर तुम्हारी जैसी श्रद्धा है, उसीके जोरपर मैं तुमसे यह अनुरोध कर रहा हूँ। यदि तुम मेरा इतना सम्मान न करते होते, तो क्या मैं तुमसे यह बात कहनेका साहस कर सकता था ! यह तो तुम जानते ही हो कि मेरी आवश्यकताएँ बहुत ही कम हैं । मैं जो तुमसे अपने लिए वृथा व्यय कराऊँ, उससे अच्छा यही है कि उससे किसी वास्तविक अभावग्रस्त व्यक्तिका यथेष्ट उपकार हो। तुम्हारे लिए यही तो एक काम है नहीं; तुम तो इस प्रकारके नित्य बहुतसे काम किया करते हो । तुम्हारे द्वारा नित्य

ही बहुतसे लोगोंका अभाव दूर हुआ करता है। मेरे सहमत न होनेका मुख्य कारण केवल यही है कि यद्यपि ब्राह्मणीने महेन्द्रको अपने गर्भसे नहीं उत्पन्न किया है, तथापि वह उसे अपने पुत्रसे बढ़कर चाहती है। एक तो उसकी इच्छा होनेपर भी मैं महेन्द्रके साथ कात्यायनीका विवाह नहीं कर रहा हूँ। तिसपर यदि मैं उसे दूसरेकी सहायतापर छोड़ दूँ, तो उसे बहुत अधिक मानसिक कष्ट होगा। साथ ही महेन्द्रको भी दुःख होगा। और यदि इन सब बातोंको जाने दिया जाय, तो भी सबसे बड़ी बात यह है कि मुझे ऐसा काम कदापि न करना चाहिए। हमारे घरमें पुत्रकी जगह वही महेन्द्र है। यदि इन सब बातोंको खूब अच्छी तरह समझ बूझकर तुम उसे अपनी पुत्रके साथ रखना चाहोगे, तो मैं समझूँगा कि तुम उसके शुभचिन्तक हो—दैवनियोजित महापुरुष हो। बतलाओ, यह बात तुम्हें मंजूर है?

ज्योतिरत्नके इस कथनका कामाख्यानाथ प्रतिवाद भी नहीं कर सकते थे और असम्मति भी नहीं प्रकट कर सकते थे। उन्होंने सिर झुकाकर केवल यही कहा—मेरे लिए आपकी इच्छा ही सबसे बढ़कर है। आप जैसी आज्ञा देंगे वैसा ही होगा। परन्तु आप मुझे इतना पराया समझते हैं, इसका मुझे बहुत दुःख—

ज्योतिरत्नने उन्हें बीचमें ही रोककर कहा—अभिमान मत करना। कामाख्यानाथ, अभी तुम यह नहीं जानते हो कि आज मैं तुमसे कितनी बड़ी सहायता लेता हूँ और अपने सिर कितना बड़ा एहसान लेता हूँ। क्या तुच्छ आर्थिक सहायता ही संसारमें सबसे बढ़कर है? जिस महेन्द्रको मैं अपने पुत्रसे भी बढ़कर समझता हूँ, उसे तुम्हारे आश्रयमें देकर मेरे मनमें कितनी बड़ी बड़ी आशाएँ उत्पन्न हुई हैं, यह तुम नहीं जानते।

कामा०—आप ऐसी बातें क्यों कहते हैं ? क्या उसकी जन्मपत्रीके सम्बन्धमें भी आपके मनमें किसी प्रकारकी चिन्ता या अशान्ति है ? इसके सिवा और तो मुझे कोई ऐसी बात नहीं माल्रम होती जिसके कारण आपको महेन्द्रके सम्बन्धमें इतनी चिन्ता हो।

ज्यो०—तुम जो अनुमान करते हो, वह बहुत ठीक है। परन्तु अब इन सब बातोंको जाने दो। हाँ, मैं जरा एक बार तुम्हारी भी जन्मपत्री देखना चाहता हूँ। तुम कहते हो कि तुम्हें अपनी अन्तिम अवस्थामें भग्नहृदय होना पड़ेगा। तो जब तक मैं इसका कारण न समझ लूँ, तब तक मुझे चैन नहीं पड़ सकता।

कामाख्यानाथने कुछ दुखी होकर क्षोभकी हँसी हँसते हुए कहा—क्षमा कीजिए। इन सब बातोंको जाने दीजिए, और कोई बात छेड़िए। जिसे लोग अदृष्ट कहते हैं उसे देखने या जाननेके लिए आप इतने उतावले न हों। एक बात आप सदाके लिए बिलकुल ही भूल जाए। नियतिः केन बाध्यते।

ज्यो०—कामाख्यानाथ, अब मन किसी और तरफ नहीं लग सकता। यह ज्योतिष मुझपर भूतकी तरह सवार है। मैं सच कहता हूँ, आज तुमने अन्तर्यामीकी तरह मेरे मनकी बात दोहराकर कही है। मुझे तो डर है कि यह ज्योतिष शास्त्रकी इतनी अधिक आलोचना कहीं मुझे अन्तमें पागल न कर दे। यही नहीं, कन्याके विवाहके सम्बन्धमें भी बहुत अधिक जन्मपत्रियोंको देखनेके कारण कुछ लोग सन्देह कर सकते हैं कि कन्या ही कुलक्षण है अथवा उसका वैधव्य योग है। इसी लिए जल्दी कोई पात्र भी उसके लिए तैयार नहीं होता। मैं समझता हूँ कि ज्योतिषका आवश्यकतासे इतना अधिक विचार करनेके

कारण ही मेरे चारों ओर इतने दिनोंसे अशान्तिकी यह आग धधक रही है। फिर भी चाहे जो हो, मैं अपने इस विचारसे पीछे नहीं हट सकता। इस भूतका ऐसा ही विलक्षण प्रभाव है। इसी लिए मैं तुम्हारी भी जन्मपत्री देखना चाहता हूँ।

कामा०—अच्छी बात है, तो फिर देख लीजिए। परन्तु इसके लिए कोई विशेष परिश्रम न कीजिएगा। इसके सत्य और मिथ्याके निराकरणके लिए व्यर्थ कष्ट मत उठाइएगा।

ज्यो०—अच्छी बात है। ऐसा ही सही। परन्तु कठिनता तो यह है कि मुझे इस बातपर विश्वास ही नहीं होता। तुम्हारे जैसे सज्जनका यदि ऐसा परिणाम हो तो फिर—

कामा०—फिर आप वही बात कहते हैं।

इतना कहकर कामाख्यानाथ अपने स्थानपरसे उठे और उन्होंने पासकी एक अलमारी खोली और उसमेंसे हल्दीके रंगकी वैसी ही जन्मपत्री निकाली और ज्योतिरत्नके हाथमें देकर हँसते हुए कहा—यदि आदमी अच्छी तरह यह बात समझ ले कि हमारी समस्त चेष्टाओं और समस्त विद्या बुद्धिसे कहीं बढ़कर बलवती उस परमात्माकी इच्छा है, तो फिर उसके इस प्रकार विद्रोही होनेकी आशंका नहीं रह जाती। उस दशामें यदि उसके जीवनमें किसी प्रकारका दुःख उपस्थित होता है, तो भी दुःखसे भी अधिक दुःख देनेवाली अशान्ति उसके मनमें प्रवेश नहीं कर सकती।

परन्तु ज्योतिरत्नने कामाख्यानाथकी इस बातकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया और वे व्यग्रभावसे वह जन्मपत्री खोलकर उसपर झुक पड़े। कामाख्यानाथ कुछ देर तक चुपचाप सिर झुकाए बैठे रहे। इसके

बाद जब उन्होंने ज्योतिरत्नके मुखकी ओर देखा तब उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। जान पड़ता था कि ज्योतिरत्न बहुत ही विचलित हो गए हैं। धीरे धीरे उनका चेहरा लाल होने लगा। उनके मस्तककी नसें मानो फूलने लगीं, आँखें और नासिकाके रन्ध्र मानो फैलने लगे, दृष्टि क्रमशः स्थिर होने लगी और साँस अधिक गहरी होने तथा उत्तरोत्तर अधिक विलम्बसे आने लगी। कामाख्यानाथका आश्चर्य ही बढ़ने लगा। पहले वे कुछ देरतक चुपचाप ज्योतिरत्नके मुखकी ओर देखते रहे और अन्तमें मृदु शान्त स्वरमें बोले, मेरी समझमें तो यदि आज आप यह जन्मपत्री यों ही छोड़ देते तो बहुत अच्छा होता। समय अधिक हो गया है और आपको स्नान सन्ध्या आदिके लिए—

परन्तु ज्योतिरत्नने मानो उनकी ये बातें सुनी ही नहीं। उन्होंने एक बार बहुत उद्विग्न तथा व्यग्र भावसे उनकी ओर देखकर फिर उसी जन्मपत्रीकी ओर ध्यान दिया। परन्तु उस जन्मपत्रीपर भी उनकी दृष्टि अधिक समय तक स्थिर न रह सकी। उन्होंने फिर बहुत ही उदासीनतासे कामाख्यानाथके मुखकी ओर देखा। कामाख्यानाथने फिर विनीत स्वरमें कहा—समय अधिक हो गया है। आपको स्नान सन्ध्या आदिके लिए—

ज्यो०—हाँ ठीक तो कहते हो। लेकिन कामाख्यानाथ यह क्या, मैंने यह क्या देखा? कहीं मुझे भ्रम तो नहीं हो रहा है या मेरा मन ही इस समय ठिकाने नहीं है? लेकिन यह तो—यह तो वही मेरी—बिलकुल वही लग्न, वही कुंडली, वही सब कुछ। सब बातें बिलकुल वही हैं।

कामा०—आज इन सब बातोंको जाने दीजिए। अब आपको जो कुछ कहना हो वह तीसरे पहर कहिएगा। आज आप कुछ अस्वस्थसे जान पड़ते हैं।

ज्यो०—हाँ आज मैं कुछ अस्वस्थ हूँ। कामाख्यानाथ, विधाता आज मुझे यह क्या दिखला रहे हैं?

कामा०—आप जरा अपना मन शान्त और दृढ़ करें, कुछ स्थिर होनेका प्रयत्न करें। अपने विचारोंपर इतना अधिक भरोसा मत कीजिए। थोड़ी देरके देखनेसे आप जितनी आशंका कर रहे हैं सम्भव है उतना अधिक खराब वह न भी हो। और मान लीजिए कि हो भी तो भय ही किस बातका है। जो दुर्दशाएँ मनुष्यकी कल्पनामें भी नहीं आ सकतीं वे सब भी तो मनुष्यके भाग्यमें बदी ही रहती हैं। तो फिर ऐसी बातोंसे डरना ही क्या! यदि मनुष्य भगवानका सदा स्मरण करता रहे तो फिर किसी प्रकारकी दुरवस्था उसे नष्ट नहीं कर सकती।

ज्यो०—नहीं कामाख्यानाथ, वह बात नहीं है। यह जन्मपत्री ऐसी है जिसकी मैं कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था।

कामा०—मैं तो पहले ही आपसे कह चुका हूँ कि मैंने सुना है कि मेरी अन्तिम अवस्थाके सम्बन्धमें मनुष्यके ज्ञानने उस अज्ञात तत्त्वके सम्बन्धमें जो थोड़ा बहुत संकेत पाया है उसीका इसमें कुछ आभास है। लेकिन वह चाहे सच हो या झूठ—

ज्यो०—नहीं कामाख्यानाथ, वह झूठ नहीं हो सकता। यह वही जन्मपत्री है जो मैंने अपने मनमें कल्पना करके बनाई थी, जो सदा मेरी आँखोंके सामने और मनमें रहती है। वही लग्न, वही चन्द्रमा, सब बातें वही हैं। कात्यायनीके योग्य वरके लिए मैंने जिस जन्मकुंडलीकी कल्पना की थी, यह ठीक वही कुंडली है। भला इसमें मेरी भूल हो सकती है? तुम्हारी अन्तिम अवस्थाके सम्बन्धमें अथवा और किसी विषयमें तो

मैंने अब तक विचार ही नहीं किया है। केवल कुंडलीका ही कुछ आभास मुझे—

कामा०—ज्योतिरत्न महाशय, आपकी तबीयत ठीक नहीं मालूम होती है। आप अभी बैठे रहिए, उठिए मत। मैं किसी आदमीको बुलाता हूँ। आपकी तबीयत खराब हो रही है। मैं आपको इस अवस्थामें अकेले नहीं जाने दूँगा।

दोनों हाथोंसे कामाख्यानाथको रोककर ज्योतिरत्न सहसा ज़ोरसे उठ खड़े हुए और आदरसूचक स्वरमें बोले—कामाख्यानाथ, तुम भी शान्त हो। मेरे सम्बन्धमें किसी प्रकारका भय या चिन्ता मत करो। मेरी तबीयत बहुत ठीक है।

इतना कहकर ज्योतिरत्नने वह फैली हुई जन्मपत्री उठा ली और मोड़कर कामाख्यानाथके हाथमें देते हुए कहा—मैं नहीं समझता कि अब मैं इस जन्मपत्रीमें कोई और बात देख सकूँगा। मैंने इसकी केवल जन्मकुंडली देखी है। बस वही मेरे—जाने दो। अब मैं जाता हूँ।

इतना कहकर ज्योतिरत्न आशीर्वाद देते हुए उसी घबराहटमें जल्दीसे कमरेके बाहर चले गए। कामाख्यानाथ चुपचाप उनकी ओर देखते ही रह गए।

दूसरा परिच्छेद।

सूर्य अस्त हो गया है। पश्चिममें आरक्त कोमल राग विस्तृत नीले आकाशकी गोदमें आनन्दके सुन्दर आभासकी भाँति शोभित है। उसके ललाटमंडल पर रत्नकी तरह लाल आभावाली रोहिणी वधू धीरे धीरे पूर्वकी ओरसे निकल रही है। पृथ्वी मानो मुग्ध और विवश

होकर रोमांचित शरीरसे उसके पैरोंपर पड़ी हुई दृष्टिसे उसकी ओर केवल देख रही है।

भागीरथीके तटपर ज्योतिरत्नके छोटेसे घरके आँगनमें एक वयस्का सधवा तुलसीके चबूतरेके पास बैठी हुई जप कर रही है। उसके सामने पंचपात्र आचमनी आदि पूजाके कई पात्र रखे हुए हैं। इतनेमें धीरेसे एक युवकने किवाड़ खोलकर आँगनमें प्रवेश किया और पुकारा, माँ।

वयस्का स्त्री बोली—कौन महेन्द्र, अब इतनी देर बाद तुझे माँ याद आई है। मैंने सुना कि दो दिनसे तुम निरंजनके साथ शहरसे आकर उसके यहाँ ठहरे हुए हो पर अभी तक तुम्हें माँका ध्यान नहीं था।

उस वयस्का स्त्रीने जप बन्द कर दिया था, माला हाथसे रख दी थी और वह परम स्नेहसे युवककी ओर देखती हुई अभिमानक्षुब्ध वाक्योंसे उसे सम्बोधन कर रही थी। परन्तु युवकके मुँहकी ओर अच्छी तरह देखनेपर उसका वाक्यस्रोत धीरे धीरे मानो आप ही आप रुक गया। उसने शंकित भावसे युवकके मुखकी ओर देखा और पूछा—तुम अच्छी तरह तो थे न? तुम ऐसे क्यों दिखाई देते हो? आओ, मेरे पास आओ।

युवकने सिर उठाकर और गम्भीर होकर पूछा—तुम पूजन कर रही हो। मैं तुम्हें छूऊँ?

वयस्का स्त्रीने उसकी इस बातपर कुछ ध्यान न दिया और व्याकुलतापूर्ण स्वरसे उसे बुलाने लगी। महेन्द्र आगे बढ़कर उसके पैरोंपर गिर पड़ा। उसके सिर और मुँहपर वह शंका और स्नेहके कारण काँपता हुआ हाथ फेरकर फिर पूछने लगी—महेन्द्र, तुम ऐसे क्यों दिखाई पड़ते हो? क्या वहाँ तुम्हारी तबीयत कुछ खराब थी?

महेन्द्र—नहीं माँ, मैं तो वहाँ बहुत अच्छी तरह था।

माँ—तो फिर तुम ऐसे क्यों दिखाई पड़ते हो ? और फिर तुम दो दिनसे यहाँ आए हुए हो, घर क्यों नहीं आए ?

महे०—यों ही नहीं आया था माँ । कल निरंजनके साथ एक जगह घूमने चला गया था। और—

इतना कहते कहते महेन्द्रने कुछ उज्वल दृष्टिसे माँके मुँहकी ओर देखा। उसका स्वर मानो सहसा रुक गया। पर जब उसने देखा कि माता अब भी प्रत्याशापूर्ण नेत्रोंसे मेरी ओर देख रही है तब उसने गम्भीर स्वरमें कहा—माँ, मान लो कि अगर मैं नहीं आया तो फिर इसमें कौनसा ऐसा हरज हो गया, अब तो मेरे वहीं रहनेकी बात पक्की हुई है न ?

वयस्का स्त्रीने क्षुब्ध दृष्टिसे महेन्द्रकी ओर देखा। कुछ देर तक चुप रहनेके उपरान्त उसने कुछ भग्न स्वरमें कहा—महेन्द्र, अब मुझे बहुत बहुत दिन तो जीना नहीं है। पर जब तक मैं हूँ, तब तक तुम आकर मुझे देख जाया करो, मुझसे मिल जाया करो। तुम्हें बहुत दिनों तक यह कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा। तो क्या थोड़े दिनोंके लिए मेरे वास्ते तुम यह कष्ट न उठा सकोगे ?

इतना कहते कहते उस वयस्काके नेत्रोंसे आँसू निकल पड़े। जिस प्रकार माताको रोते देखकर छोटा बच्चा व्याकुल हो जाता है, उसी प्रकार उस वयस्काको रोते देख कर महेन्द्रने व्याकुलतापूर्वक माँ माँ कहते हुए उसकी गोदमें मुँह छिपा लिया और एक हाथ उसके पैरपर रख दिया। माँने उसका वह हाथ उठाकर अपनी गोदमें ले लिया और उसके सिर-पर अपना मुँह रखकर उसी प्रकार कहा—तुमने तो कात्यायनीसे भी पहले मुझे माँ बनाया था। वह जब पेटमें थी तब मैं सोचती थी कि

अब इस उम्रमें यह और नई सन्तान क्यों हो रही है। पर जिस दिन यह लड़की जनमी, उस दिन मेरे मनमें एक नई आशा हुई। तब मैंने सोचा कि अब कोई यह न कह सकेगा कि महेन्द्र मेरा अपना नहीं है पराया है। मुझे कोई सन्तान हुई ही नहीं थी, इस लिए किसीको विश्वास ही न होता था कि तुम मेरे लड़के हो। बस इसी बातका पहले मुझे बहुत दुःख रहा करता था। मुझे इस बातकी बड़ी साध थी कि कात्यायनीका ब्याह करके मैं अपने मनका वह दुःख दूर करूँगी। पर भगवानकी ऐसी मरजी हुई कि मेरी वह साध पूरी न हो सकी। बल्कि ऊपरसे इतना और हो गया कि इसी लिए तुम भी मेरे अपने न हो सके, पराए हो गए।

महे०—माँ, तुम मुझे माफ करो। बस, अब चुप करो। मैं तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ।

वयस्का—महेन्द्र, क्या मैं यह बात नहीं जानती कि उन्होंने क्यों तुम्हें इस प्रकार मुझसे दूर कर दिया है। इस ज्योतिषने ही उन्हें इतना निष्ठुर बना दिया है। मैं उनसे कह दूँगी कि तुम अपनी लड़कीको लेकर जो चाहो सो करो। चाहे उसका ब्याह करो चाहे मत करो। जिसमें वे दिनपर दिन तुम्हें इस प्रकार परायेकी तरह मुझसे दूर रखनेकी चेष्टा न करें। मुझसे अब यह नहीं सहा जाता।

इतना कहते कहते ब्राह्मणीने अश्रुपूर्ण दृष्टिसे देखा कि महेन्द्रका चेहरा बहुत ही उदास हो गया है। ऐसा जान पड़ता था कि वह किसी वेदनाको धक्का देकर हटानेके लिए प्राणपणसे चेष्टा कर रहा है, परन्तु वह वेदना अपनी अपराजेय शक्तिसे उसके मुखकी कालिमा बढ़ा रही है। यह समझकर माताने ठंढी साँस ली। उसके गोदमें सिर

रखे हुए महेन्द्र धीरे धीरे सो गया था। उसका सारा शरीर जमीनपर पड़ा हुआ था, यह देखकर माता बहुत व्यग्र हुई। उसने कहा—महेन्द्र जमीनपर क्यों सोए हो? कात्यायनी, एक कम्बल तो ले आ।

महेन्द्रने उसकी गोदमें मुँह छिपाकर कहा—नहीं माँ, मुझे इसी तरह थोड़ी देर तक पड़ा रहने दो।

माता और पुत्र दोनों ही कुछ देर तक चुपचाप रहे। जब मनका वेग कुछ प्रकट हो गया, तब माता मानो कुछ सबला हो गई। हताश महेन्द्रके मुखकी ओर देखकर उसे कुछ आशा दिलानेके लिए उसने उसके मस्तकपर हाथ फेरते हुए कहा—महेन्द्र, मैं तुमसे एक बातके लिए अनुरोध करूँगी।

महे०—अनुरोध किस बातका माँ? जो कुछ कहना हो सो कहो। अनुरोधका नाम मत लो।

माँ०—तुम इस तरह दुखी होकर और मुझे छोड़कर मुझसे अलग मत हो। यह ज्योतिष उनके सिरपर ऐसा सवार है कि मैं देखती हूँ कि ब्याहके लिए उन्हें कोई वर पसन्द ही न आवेगा। देख तो रहे हो कि इसी फेरमें कात्यायनी सत्रह वर्षकी हो गई है। मैं तो समझती हूँ कि अन्तमें उन्हें राजी होना ही पड़ेगा। तो क्या तुम और कुछ दिनों तक न ठहर सकोगे? देखो ईश्वर अन्तमें क्या करता है।

महे०—माँ, मैं कहाँ तुमसे दूर चला गया हूँ? तुम क्यों इस तरहकी बातें करती हो? मैं कभी ज्यादा दिनों तक तो तुमसे दूर रहा नहीं था। इससे मुझे कुछ दुःख हुआ था और मैंने वह बात तुमसे कही थी। तुम्हारी गोदको छोड़कर मेरे लिए और जगह कौनसी है?

इतना कहते कहते फिर महेन्द्रका गला भर आया और उसने फिर माँकी गोदमें मुँह छिपा लिया।

माँने स्नेहपूर्वक उसके सिरपर हाथ फेरते हुए कहा—मैं क्या यह बात नहीं जानती? मैंने तो स्वयं ही कई बार अपनी यह साध तुम्हें बतलाई है। लड़कीका दुर्भाग्य है और नहीं तो ऐसा अच्छा संयोग किसके भाग्यमें होता है? मेरा यह चाँदका जोड़ा देखकर न जाने कितनी मुझसे ईर्ष्या करती हैं। न जाने यह कमबख्त ज्योतिष किस बुरी साइतमें मेरे घर आया था। मैं स्वप्नमें भी यह नहीं समझती थी कि यह ज्योतिष मेरा ऐसा शत्रु हो जायगा। मुझे तो इसपर रत्ती भर भी विश्वास नहीं है। आग लगे इस ज्योतिषमें। इसीने उनका दिमाग खराब कर दिया है। तुम कभी इस ज्योतिषकी वाहियात बातोंपर ध्यान न देना। ज्योतिष कहता है कि कात्यायनीसे तेरा मेल नहीं बैठता। पर मैंने जो उसे जन्मसे ही मन ही मन तेरे साथ मिला रक्खा है, उससे भी क्या ज्योतिषका मेल बढ़कर है?

महेन्द्र स्तब्ध दृष्टिसे माताकी ओर देखता हुआ किसी और ही राज्यमें विचरण कर रहा था। जब उसकी आँखोंपर सहसा दीपकका प्रकाश पड़ा तब वह चकित होकर उठ बैठा। वह प्रकाश अन्दर कोठरीमेंसे आ रहा था। माँने उस कोठरीकी ओर देखकर कहा—कात्यायनी, आओ तुलसीकी आरती करो। दीपक हाथमें लेकर वहाँ क्यों खड़ी हो? अरे यह महेन्द्र है। तुमने पहचाना नहीं?

खुले हुए द्वारमें हाथमें दीपक लिए हुए प्रकाशके बीचमें देवीकी भाँति वह प्रतिमा चुपचाप खड़ी रही। माताके दोबारा बुलानेपर भी वह आँगनमें नहीं आई।

महेन्द्र स्तब्ध भावसे कुछ देरतक उसकी ओर देखता रहा और फिर कुछ चकित होकर उठ खड़ा हुआ। वह कुछ त्रस्त स्वरमें यह कहता हुआ वहाँसे चला गया—माँ, मैं थोड़ी देरमें फिर आता हूँ। वह इतनी

जल्दी आँगनसे निकल गया कि वयस्का स्त्रीको उसे रोकनेका भी समय न मिला। वह ब्राह्मणी विमूढ़ भावसे देखती रह गई।

कात्यायनीने तुलसीके आगे दीपक रखकर प्रणाम किया और तब माँकी ओर घूमकर पुकारा—माँ।

कन्याको कुछ तीखे स्वरमें पुकारते हुए देखकर माँ चौक पड़ी। उसने पूछा, क्या है बेटी कात्यायनी ?

का०—यह सब क्या है ?

माँ०—कहाँ क्या है, तुम क्या पूछती हो ?

का०—तुमने महेन्द्रसे ये सब बातें क्यों कहीं ? बाबूजीने कई बार तुम्हें मना किया था न ! जो बात उनको इतनी नापसन्द है उसकी तुम अबतक क्यों आशा किए चलती हो और महेन्द्रको क्यों इस प्रकार आशा दिलाती हो ?

माँ पहले तो कुछ देर तक चुप रहीं, फिर दुःखित स्वरमें बोली—यह आशा क्या मैं आज कोई नये सिरसे कर रही हूँ ? जानती हो जब तुम लोगोंका ज्योतिषशास्त्र इस घरमें आया था उससे बहुत पहलेसे मैं यह बात निश्चित कर चुकी थी।

का०—जब तुम नहीं जानती थीं तब यह आशा किया करती थीं। पर जब बाबूजीने तुमको मना कर दिया, तब फिर ये सब बातें क्यों करती हो ?

माँ०—क्या आदमीका मन भी तुम्हारे ज्योतिषशास्त्रके अंकोंकी तरह है कि यदि ठीक न मिले तो मिटा दिया जाय और नए अंक रखकर मिलान मिलाया जाय ? महेन्द्रके मनसे क्या यह बात सहजमें निकल सकती है ?

का०—इसमें तो तुम्हारा ही दोष है। तुम्हीं यह बात उसके मनसे नहीं निकलने देती हो। अब तुम आगेसे इस तरहकी बातें नहीं करने पाओगी।

कन्याकी अचंचल मूर्त्ति और दृढ़तासूचक वाक्योंसे माता बहुत दुःखी होकर मानो आप ही आप कहने लगी—भला यह तुम कैसे जान सकती हो कि मेरे मनमें इस बातकी कितने दिनोंसे साध थी? इसी लिए मैंने तुम्हें उसे भइया कहकर पुकारनेकी आदत नहीं डाली थी। तुम नहीं जानती थीं, पर वह बहुत दिन पहलेसे ही जानता था।

का०—वह जानता था तो जाना करे। पर अब तुम आगेसे इस तरहकी बातें नहीं कहने पाओगी। अब मैं आजसे उसे भइया कहकर पुकारा करूँगी। बाबूजीकी इच्छाके विरुद्ध और उन्हें असन्तुष्ट करके तुम जो ऐसी इच्छा करती हो, यह तुम्हारा अन्याय है।

क्या है बेटी कात्यायनी? किसका अन्याय है, किससे लड़ रही हो? कहते हुए ज्योतिरत्न महाशयने आँगनमें प्रवेश किया।

पिताको देखते ही कात्यायनी दौड़कर उनके पास जा पहुँची और दोनों हाथोंसे उन्हें पकड़कर मारे प्रसन्नताके चिल्ला उठी—बाबूजी! परन्तु तुरन्त ही उसने अपनी वह चपलता रोककर और कुछ लज्जित होकर कहा—बाबूजी सन्ध्या हो गई, तुम गंगाजी कब जाओगे?

इतना कहते हुए कात्यायनीने अपने दोनों हाथ पिताके शरीरपरसे हटा लिए और वह उनके मुँहकी ओर देखने लगी।

ज्यो०—बेटी, मैं तो अभी तक गंगा किनारे ही बैठा हुआ था। पर अभी तक मैंने सन्ध्योपासन आदि नहीं किया है।

का०—तुम अभी तक गंगा किनारे ही थे, जमींदार साहबके यहाँ नहीं गए थे?

ज्योतिरत्नने अस्फुट स्वरमें मानो आप ही आप कहा—नहीं बेटी। उनके यहाँका मेरा जाना तो तुम्हीने छुड़ा दिया।

का०—अच्छा तो तुम हाथ मुँह धो लो। मैं धोती और अँगोछा ले आती हूँ।

इतना कहकर कात्यायनी कोठरीमें चली गई।

ब्राह्मणीने अपने पतिके मुखकी ओर देखकर कहा—आज इतने अनमने क्यों हो? चेहरा इतना उतरा हुआ क्यों है?

ज्यो०—क्या तुम इसका कारण नहीं जानतीं?

स्त्री—भला मैं कैसे जान सकती हूँ? न तो तुम कभी अपनी चिन्ताका कोई अंश मुझे देते ही हो और न मेरी चिन्ताका कोई अंश आप लेते हो।

ज्यो०—आज मैंने तुम्हारी ही चिन्ताका अंश लिया है। कात्यायनीके व्याहकी बात सोच रहा हूँ।

स्त्री—यह तो तुम्हारे लिए बिलकुल ही नई चिन्ता है। तुम्हें तो समाजका भी भय नहीं है। एक तो तुम्हारा कुल ही ऐसा है कि लड़कीके लिए जल्दी कोई वर न मिले। और यदि संयोगसे कोई वर मिल जाय तो तुम्हारा ज्योतिषशास्त्र रास्ता रोककर खड़ा हो जाता है। इससे मेरी तो समझमें ही नहीं आता कि इस मणिकांचन योगके कारण अन्तमें लड़कीके भाग्यमें क्या बदा होगा। या तो इस जन्ममें उसका व्याह ही नहीं होगा और यदि हुआ भी तो वह किसी अभागेके हाथमें पड़ जायगी।

ज्योतिरत्नने सिर हिलाकर कहा—अभागा? जिसके साथ कात्यायनीका व्याह होगा यदि वह भी अभागा निकला तो मैं समझूँगा कि

सारा ज्योतिषशास्त्र ही झूठा है। यह तो कभी हो ही नहीं सकता कि किसी अभागेके साथ उसका ब्याह हो। हाँ, यह हो सकता है कि उसका ब्याह ही न हो, वह सदा कुमारी ही रहे। मुझे तो कुछ ऐसा अन्दाज लगता है कि अन्तमें ऐसा ही होगा।

स्त्री—पर क्या तुम्हें कभी इस बातका ध्यान नहीं आता कि उस लड़कीके सिरपर तुम्हारे सिवा और कोई नहीं है?

ज्यो०—आज यही तो सोच रहा हूँ। शरीर ठहरा अनित्य। उस समय तुम लोगोंका क्या हाल होगा?

स्त्री—तो क्या तुम यह समझते हो कि मैं ही बहुत दिनों तक जीऊँगी? जो कुछ चिन्ता है वह तो लड़कीकी है।

ज्योतिरत्न महाशय यह कहते हुए वहीं बैठ गए कि यह सोचते सोचते तो आज सिरमें चक्कर आने लगा है।

स्त्री घबराकर उनके पास चली गई और उनके सिरपर हाथ फेरती हुई बोली—आज तक तो मैंने तुम्हें कभी इस प्रकार हताश होते हुए नहीं देखा था। आज तुम्हें इतनी चिन्ता क्यों हो रही है?

ज्योतिरत्न स्थिर दृष्टिसे आकाशकी ओर देखते रहे। उनकी स्त्रीने फिर कोमल स्वरमें कहा–महेन्द्र आज यहाँ आया था। आज देखा कि उसके मनसे अभिमान निकल गया है।

ज्यो०—आया था? ईश्वर करे वह जीता रहे, निष्कलंक रहे और चरित्रवान् हो। क्या अच्छा होता अगर मैं उसीको दे सकता होता।

स्त्री—तो फिर दे ही क्यों नहीं देते? और जो तुम निष्कलंक और चरित्रवान् होनेकी बात कहते हो, तो चन्द्रमामें भी कलंक है पर मेरे महेन्द्रमें कोई कलंक नहीं है। तुमने तो उसे बचपनसे ही पाला पोसा है। तुम क्या उसे नहीं जानते?

ज्यो०—मैंने जो कुछ कहा, उसका मतलब तुमने नहीं समझा। केवल कात्यायनीके साथ उसके राशि नक्षत्रोंके न मिलनेकी बात नहीं है। उसके पंचम, नवम, तृतीय और एकादश स्थानमें पापग्रहके जो योग पड़े हैं, उन्हें मैं किसी तरह नहीं भूल सकता। इसी लिए तो मैं उसे अच्छे आदमियोंकी सोहबतमें रखना चाहता हूँ, जिसमें अगर किसी तरह हो सके, तो सच्चरित्र पुरुषोंके साथमें रहनेसे ही उसका दुर्भाग्य पराजित हो जाय।

स्त्री०—तुम तो यों ही व्यर्थकी बातें किया करते हो। मैं तुम्हारा ज्योतिष शास्त्र नहीं मानती। क्या सभी लोग इतनी बातें देख सुनकर ब्याह करते हैं?

ज्यो०—लोग बिना देखे सुने साँपका जहर भी तो खा जाते हैं और सुना है कि उनका बाल भी बाँका नहीं होता; परन्तु जान बूझकर तो विष खाया नहीं जाता। तुमने महेन्द्रका पुत्रसे भी अधिक स्नेहसे पालन पोषण किया है। सम्भव है कि तुम्हें भी उसके कारण बहुत कष्ट भोगना पड़े।

ब्राह्मणीने मानो बहुत डरकर कहा—राम राम ऐसी बात मत कहो। मेरा बच्चा यों ही अच्छा रहे, जीता रहे। उसे तुम्हारी लड़की नहीं चाहिए।

ज्यो०—यह आशा तो मैं बहुत दिन पहलेसे छोड़ चुका हूँ। लेकिन फिर ईश्वरने मुझे यह सब दिखलाया ही क्यों?

स्त्री—क्या दिखलाया? मुझे साफ साफ सब बातें बतलाओ। सब बातें मन ही मनमें रखकर इतने सन्तप्त न हो।

ज्यो०—एक दिन मैंने तुमसे कहा था न कि मैंने कामाख्यानाथकी कुंडली देखी है?

स्त्री०—हाँ वह बात। तुम्हारे विचार जैसे बेढब हैं वैसी ही तुम्हारी बातें भी विलक्षण हुआ करती हैं। मैं बहुत दिनोंसे तुमसे ज्योतिष शास्त्रकी बातें सुनती आई हूँ। पर आज तक मैंने तुम्हें कभी यह कहते हुए तो नहीं सुना कि किसीकी जन्मपत्रीमें यह भी लिखा रहता है कि इसका ब्याह अमुकके साथ होगा।

ज्यो०—नहीं यह बात नहीं है। मैंने अपने मनसे बनाई हुई जन्मपत्रीमें जिस प्रकार लग्न चन्द्रमा और ग्रह आदि ठीक कर रखे हैं, उस तरहकी एक भी जन्मपत्री आज तक मेरे देखनेमें नहीं आई थी। लेकिन कामाख्यानाथकी जन्मपत्री तो मैंने बहुत ही थोड़ी देरके लिए हाथमें ली थी। फिर वह क्योंकर मेरे कल्पित आदर्शसे इतना अधिक मिल गई? मैं तो ठीक ऐसी ही जन्मकुंडली ढूँढ़ता था।

स्त्री—तुम कैसी बातें कर रहे हो? तुमने यह भी तो कहा था कि मारे डरके मैंने उसे ज्यादा नहीं देखा। तुम्हारे जैसे पागल ज्योतिषी ही सिर्फ एक नजर देखकर इतना विश्वास कर सकते हैं। अगर अपना दिमाग ठीक करके उसे अच्छी तरह देखते, तो शायद तुम्हारा यह भ्रम भी दूर हो जाता। शायद दो एक बातें मेल खा जाती तो खा जातीं, बाकी सब बेमेल ठहरतीं।

ज्यो०—लेकिन मैं तो उसे अच्छी तरह निश्चिन्त होकर देख ही नहीं सका। अपनी गौरी कन्याके लिए जिस वरकी प्रत्याशामें मैं इतने दिनोंसे बैठा हुआ हूँ, नित्य पूजा करनेके उपरान्त इष्ट देवतासे जिसके लिए मैं कामना और प्रार्थना करता हूँ, यदि मुझे अच्छी तरह मालूम हो जाय कि मेरी वह प्रार्थित वस्तु मेरे पास आ गई है तो—तो फिर तुम्हीं बतलाओ कि मुझे क्या करना चाहिए?

स्त्री—मैं क्या बताऊँ कि तुम्हें क्या करना चाहिए? तुम जैसी जन्मकुंडली चाहते थे वैसी जन्मकुंडली तुम्हें मिल गई है, तो क्या इसी कारण उसके साथ ब्याह कर दिया जायगा? क्या उसे छोड़कर और किसीको तुम लड़की दोगे ही नहीं? यह भी कोई बात है। ज्योतिष क्या ज्योतिषका बाप भी यह नहीं कह सकता कि और किसी लड़केकी जन्मकुंडलीके साथ तुम्हारी लड़कीकी जन्म कुंडली मिलेगी ही नहीं। मान लिया कि तुम्हें वह कुंडली बहुत अच्छी जान पड़ी। लेकिन क्या इसी कारण तुम यह समझ लोगे कि वही तुम्हारी लड़कीका हाथ पकड़ेगा? क्या उसे छोड़कर और किसीके साथ लड़कीका ब्याह हो ही नहीं सकता? यह चिन्ता मनसे निकाल दो और जिस तरह इतने दिनों तक पात्र ढूँढ़ते रहे हो उसी तरह अब भी ज्योतिषके अनुसार अपने मनके मुताबिक वर ढूँढ़ते रहो।

ज्योतिरत्न मानो अपने आपसे ही कहने लगे—मैंने अब तक बहुतसी कुंडलियाँ देखीं, पर ऐसी कुंडली तो मुझे एक भी नहीं दिखलाई दी। कात्यायनीके जन्मस्थानमें बैठा हुआ जो सातवें स्थानको पूर्ण दृष्टिसे देख रहा है उसका फल यही होना चाहिए कि उसे ऐसा ही महापुरुष स्वामीके रूपमें मिलना चाहिए। कामाख्यानाथको जितना मैं जानता हूँ, उतना शायद ही और कोई न जानता होगा। कात्यायनीको ऐसा ही पति मिलना चाहिए।

स्त्री—तुम बार बार ऐसी बात मत कहो। क्या कात्यायनीके भाग्यमें ऐसा ही बूढ़ा वर लिखा है जो इतने दिनोंसे रँडुआ है और जिसके आगे कात्यायनीके बराबर लड़का मौजूद है? इतने दिनोंतक ढूँढ़ ढूँढ़कर तुमने उसके लिए यही वर पसन्द किया है? धन्य है तुम्हारी समझको!

ज्यो०—पार्वतीके विवाहके समय शिवजी भी तो रँडुए ही थे और उन्हें भी तो सब लोग बूढ़ा ही कहते थे। पर क्या गौरीके माता पिता ऐसा वर पाकर कृतार्थ नहीं हुए थे? और फिर तुम कामाख्यानाथको बूढ़ा क्यों कहती हो? उनकी अवस्था चालीससे शायद ही दो तीन बरस ऊपर होगी।

स्त्री—भला तुम भी कैसी बातें करते हो। मान लो कि वे बहुत बूढ़े नहीं हैं, तो भी क्या वे इतने दिनों बाद इस उमरमें तुम्हारी लड़कीसे ब्याह करने आवेंगे? उनका इतना बड़ा लड़का है, लड़की है। जब रमा छोटी थी, तभी उसकी माँ मर गई थी। उस समय उनकी ब्याह करनेकी उमर थी। उस समय तो उन्होंने ब्याह किया नहीं। इतने दिनों तक अकेले रहनेके बाद अब इस उमरमें वह तुम्हारी लड़कीके साथ ब्याह करेंगे? उनके आगे पन्द्रह बरसकी विधवा लड़की बैठी है, ब्याहने लायक लड़का है।

ज्यो०—ये सब बातें तो मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। कामाख्यानाथ कभी ब्याह नहीं करेंगे। और मैं भी उनसे कभी ऐसी धर्म-विगर्हित बातके लिए अनुरोध नहीं कर सकता। इससे तुम निश्चिन्त रहो।

स्त्री—यदि ऐसा ही है, तो फिर इस बातके लिए इतनी चिन्ता क्यों करते हो?

ज्यो०—मैं यही सोचता हूँ कि तुम्हारी कात्यायनीका ब्याह करनेकी इच्छा मुझे छोड़ देनी पड़ेगी। जरा विधाताका यह कौतुक तो देखो कि उन्होंने जिस आदमीको मेरे मनके मुताबिक योग्य वर बतलाया, उसे ऐसी अवस्थामें मुझे दिखलाया कि उसके सम्बन्धमें मेरा इस प्रकारकी

कामना करना भी अन्याय है। वे देवता हैं। मैं मनके द्वारा भी उनका स्पर्श नहीं कर सकता। इसी लिए कहता हूँ कि मेरे किए तुम्हारी लड़कीका ब्याह न हो सकेगा। देखता हूँ कि उसे सदा कुमारी ही रहना पड़ेगा।

ब्राह्मणीको मानो रुलाई आने लगी। उसने भरे हुए गलेसे कहा, तुमने इसी लिए ज्योतिष पढ़ा था! अन्तमें तुमने यही करनी की!

ज्योतिरत्नने इस प्रकार सिर झुका लिया जिससे सूचित होता था कि उनके पास और कोई उपाय नहीं है।

पहले तो कुछ देर तक ब्राह्मणी चुप रही, फिर उसने कोमल स्वरसे कहा—जमींदारकी इतनी प्रशंसा मैंने कभी नहीं सुनी थी। केवल तुम्हीं नहीं छोटे बड़े सभी यही कहते हैं कि वह बिलकुल देवता हैं। उनकी लड़की और लड़का दोनों ही वैसे हैं। हाँ, यही है कि उमर कुछ ज्यादा है। लेकिन लड़कीके यों ही कुँआरे रहनेसे तो यही अच्छा है। तो फिर क्या तुम उनसे एक बार इस बातका जिक्र करोगे?

ज्योतिरत्न चटपट उठकर खड़े हो गए और बोले—नहीं नहीं, ऐसी बात मत कहो। इसी प्रलोभनसे बचनेके लिए तो मैंने उनके यहाँ ज्यादा आना जाना छोड़ दिया है। मैं कभी ऐसी अनुपयुक्त चेष्टा, यह अनुरोध न करूँगा। मैं भाग्यके साथ लड़ाई नहीं लड़ सकता। चाहे लड़की कुँआरी ही क्यों न रह जाय। कहाँ हो बेटी कात्यायनी, मेरी धोती और अँगोछा ले आओ।

कात्यायनीने पास आकर मीठे स्वरसे कहा—तुमने तो अभी तक मुँह हाथ भी नहीं धोया।

'यही तो,' इतना कहकर ज्योतिरत्न आँगनके एक कोनेमें चले गए जहाँ एक छोटासा कूआँ था। कूएँपर एक छोटीसी चौकी थी।

ज्योतिरत्न जाकर उसीपर बैठ गए। कात्यायनीने पहलेसे ही बहुत यत्न-पूर्वक एक बरतनमें जल भर रखा था। उसीमेंसे थोड़ासा जल एक लोटेमें निकालकर वह पिताके हाथों और पैरोंपर देने लगी। हाथ मुँह धोकर और धोती बदलकर ज्योतिरत्न कोठरीकी ओर चले। अब तक उनकी स्त्री चुपचाप तुलसीके चौंतरेके पास बैठी हुई थी। क्षीणज्योति दीपक धीरे धीरे बुझना चाहता था। उसे देखते हुए ब्राह्मणीने कहा—'परमात्मा जो तुम्हारी इच्छा।' और एक ठंढी साँस लेकर उठ खड़ी हुई और आसन तथा पूजाकी सामग्री लेकर अन्दर कोठरीमें चली गई।

कात्यायनी उस अँधेरे आँगनमें खड़ी हुई आकाशकी ओर देख रही थी। उसने देखा कि यद्यपि आकाशरूपी विस्तृत आँगनमें भी अँधेरा ही छाया हुआ है, तथापि वहाँ सैकड़ों हजारों तारे रेखाओं तथा स्तूपोंके आकारों तथा बेसिलसिले इधर उधर छिटके हुए हैं और उस आकाशको एक कोमल स्निग्ध प्रकाशसे प्रकाशित कर रहे हैं। वह मानो पहेलियोंसे भरा हुआ एक सुन्दर जगत् है। उस जगत्‌के अज्ञात रहस्यका कुछ कुछ स्पष्ट आभास देनेका मानो वह प्रकाश प्रयत्न कर रहा है। ये चमकते हुए तारे ही मानो उस रहस्यकी चमकती हुई आँखें हैं। कात्यायनी सोचने लगी, क्या यही वे तारे हैं जो मनुष्यके जीवनको भिन्न भिन्न मार्गोंमें विलक्षण रूपसे सदा घुमाया फिराया करते हैं? क्या यही तारे मनुष्यके भाग्यके नियामक हैं? वह कौनसा ग्रह या नक्षत्र है जिसके कारण उसका जीवन ऐसे रहस्यमय मार्गमें दिनपर दिन आगेकी ओर बढ़ता जाता है? कात्यायनी इसी आशासे आकाशमें इधर उधर देखने लगी कि यदि हो सके तो मैं यह जान लूँ कि इन तारोंके प्रकाशसे और भी किसी अज्ञात रहस्यका संकेत मिलता है या नहीं। पितासे बारबार प्रश्न करनेपर भी

कात्यायनी उन तारोंमेंसे कुछके नाम धाम आदिके अतिरिक्त अब तक और कोई विशेष बात नहीं जान सकी थी। जिस ज्योतिषशास्त्रकी आलोचना करनेके कारण ज्योतिरत्न आजकल अपने जीवनको अभिशापग्रस्त समझने लगे थे, वह शास्त्र वे अपनी कन्याको नहीं सिखलाना चाहते थे। यही कारण था कि कात्यायनी अब तक कुछ ग्रहों और नक्षत्रोंके नाम तथा साधारण परिचयके अतिरिक्त और कुछ नहीं जान सकी थी। वह विस्मयसे विमूढ़ होकर केवल यही सोच रही थी कि ये तारे देखनेमें सुन्दर प्रकाशके फूल हैं। इन्हें देखनेसे यही जान पड़ता है कि परमात्माने जिस उद्देश्यसे फूल बनाये हैं उसी उद्देश्यसे आकाशमें ये तारे भी उगाए हैं। परन्तु ज्योतिष शास्त्रके नामपर लोगोंने उन सुन्दर फूलोंपर कितना अधिक बोझ लाद दिया है। यदि इन तारोंमें एक एक जगत् छिपा हुआ है, तो छिपा रहे, यदि ये पृथ्वीसे हजारों गुने बड़े हैं तो हुआ करें। परन्तु ये सब बातें मनुष्यको विस्मययुक्त आनन्द देनेके अतिरिक्त और कुछ तो नहीं करतीं। यह मनुष्यकी एक अद्भुत अभिज्ञता है कि वह इन ग्रहों तथा नक्षत्रोंको जीवनके शुभाशुभका कारण मानकर उनमें भयंकरताका आरोप करता है। परन्तु क्या उसका ऐसा करना ठीक है? नहीं नहीं, बिलकुल ठीक है। यदि ये सब बातें ठीक न होतीं तो पिताजी यों ही अपना सारा जीवन इनकी आलोचनामें न बिता देते। इसी लिए आकाशके इन फूलोंकी शक्तिका ध्यान करके आश्चर्य होता है और मनुष्यको अवाक् रह जाना पड़ता है।

इतनेमें ज्योतिरत्न आँगनमें अपनी कन्याके पास आये। उन्होंने देखा कि कात्यायनी आकाशके तारोंकी ओर देख रही है। उसके सिर पर हाथ रखते हुए उन्होंने कहा—बेटी कात्यायनी।

कात्यायनीने आकाशकी ओरसे आश्चर्यभरी दृष्टि हटा ली और कुछ लज्जित होकर उत्तर दिया—हाँ पिताजी।

ज्यो०—बेटी, यहाँ आँगनमें इस तरह क्यों खड़ी हो ? चलो घाट-पर चलें। लेकिन नहीं बेटी, बहुत रात हो गई है।

कात्यायनीने कुछ सोचकर उत्तर दिया—रमा तो आरती देखकर अब घर चली गई है और तुम मुझे घाटपर ठंढकमें बैठने नहीं दोगे, इस लिए अब मैं वहाँ इतनी रातके समय न जाऊँगी।

ज्यो०—अच्छी बात है। तो फिर बेटी, तुम यहाँ खुलेमें मत रहो, अन्दर कोठरीमें चली जाओ। सन्ध्याका समय तो बीत ही चुका है। तो भी जाऊँ, जरा गंगाजीको स्पर्श कर आऊँ।

का०—तो क्या तुम जप घर ही आकर करोगे ? वहाँसे जल्दी लौट आओगे ? अच्छा तो फिर मैं फिर तुम्हारे आसरे यहीं खड़ी हूँ।

ज्यो०—नहीं बेटी, वहाँ मुझे कुछ देर लगेगी। तुम यहाँ खड़ी मत रहो। इससे अच्छा तो यही है कि तुम भीतर अपनी पोथी लेकर बैठ जाओ। अब मैं जप करके ही आऊँगा।

का०—अच्छा तुम जप कर आओ। आज जब तुम आओगे, तब मैं तुमसे श्रीमद्भागवत पढ़ूँगी।

ज्यो०—श्रीमद्भागवत ! अरे पागल, आज यह नई बात कैसी ? तुम्हें तो महाभारतके सिवा और कुछ पसन्द ही नहीं आता था। तुम तो कहा करती थीं कि भीष्म और कर्णकी कथाके आगे रामायण भी अच्छी नहीं लगती। आज—

कात्यायनी कुछ लज्जितसी होकर हँस पड़ी और बोली—बाबूजी, मैं अपने लिए नहीं कहती। रमा भागवत सुनना चाहती है। उसे रामायण भी अच्छी लगती है, लेकिन इन दोनोंका एक भी श्लोक मुझे याद नहीं है। इसी लिए मैं आज आपसे भागवत पढ़ूँगी। इसके बाद फिर जहाँसे मुझे अच्छा लगेगा वहाँसे—

ज्यो०—बस सुन सुनकर ही आधा याद कर लोगी, मेरे पढ़ानेका कष्ट आधा कम कर दोगी और तब फिर दिन रात उसीका जिक्र किया करोगी। एक एक श्लोकका अर्थ पूछोगी और एक एक शब्दका गूढ़ अर्थ निकालकर मेरा सिर खपाओगी। क्यों यही मतलब है न ?

कात्यायनी हँसती हुई सिर झुकाकर बोली—नहीं पिताजी, मैं खाली रमाको सुनाऊँगी। और कुछ नहीं।

ज्यो०—देखो याद रखना। ऐसा न हो कि दोपहरको और रातको मुझे सोतेसे जगाकर श्लोकका अर्थ पूछने लगो।

स्नेहपूर्वक कन्याका मस्तक चूमते हुए ज्योतिरत्न वहाँसे गंगा तटकी ओर चल पड़े।

कात्यायनीने कुछ दुःखी होकर सोचा—आज रमासे भेंट नहीं हुई। और कल सन्ध्यासे पहले अब भेंट हो भी नहीं सकेगी।

यद्यपि जमींदार कामाख्यानाथका मकान पास ही था; परन्तु फिर भी कात्यायनीका वहाँ ज्यादा आना जाना नहीं था और रमा भी एक मन्दिरको छोड़कर और कहीं आती जाती नहीं थी। हाँ, सन्ध्याके समय आरती देखनेके लिए वह अपने पिता भाई या और किसी आत्मीयके साथ गंगातटवाले मन्दिरमें नित्य आया करती थी। कात्यायनी भी नित्य सन्ध्याके समय अपने पिताके साथ गंगा-किनारे जाया करती थी। जमींदारका मन्दिर और उससे सटा हुआ घाट भी कात्यायनीके मकानके बहुत पास था। वहीं मन्दिरमें रमाके साथ कात्यायनीका परिचय हुआ था। ज्योतिरत्न बहुत देर तक घाटपर बैठकर सन्ध्या और जप आदि किया करते थे और रमाके बुलाने पर कात्यायनी उसके पास जा बैठती थी। स्वयं मन्दिरमें

ही या मन्दिरसे सटी हुई कोठरीमें दोनों बैठकर बात चीत किया करती थीं । केवल गंगातटपर निवास करनेके अभिप्रायसे ज्योतिरत्न महाशय थोड़े दिनोंसे इस गाँवमें आ रहे थे। इसी लिए इस गाँवमें कात्यायनीकी कोई बाल्यावस्थाकी सखी सहेली नहीं थी। जिन लड़कियोंके साथ उसका परिचय हुआ था, वे भी कात्यायनीकी, अवस्थासे कहीं अधिक बढ़ी हुई गम्भीरता देखकर उसके पास नहीं आती थीं और कात्यायनीको भी किसीसे बहुत ज्यादा मिलने जुलनेका आग्रह नहीं था। केवल अपने पिताके साथ रहकर ही उसने अपने जीवनके सत्रह वर्ष बिताए थे। जब वह बहुत छोटी थी, तब भी अपने पिताके पास ही बैठकर खेला करती थी और उनकी पुस्तकें उठाकर इधरसे उधर किया करती थी। अब वह धीरे धीरे पिताकी सहायतासे उन पुस्तकोंसे थोड़ी बहुत परिचित हो चली थी और उन्हीं पुस्तकोंको उसने अपने जीवनका सर्वश्रेष्ठ साथी बना लिया था। गाँवकी युवती सधवाओं कुमारियों अथवा बालिकाओंमेंसे कोई कात्यायनीके सप्तदश-वर्षीय कुमारीत्वके वर्मके पास फटकनेका भी साहस नहीं कर सकती थी। उसे देखते ही वे सब मानों आश्चर्यसे स्तब्ध हो जाती थीं। उनके लिए मानो वह किसी और ही लोककी कन्या थी। केवल बालिकाओं और युवती सधवाओंकी दृष्टिमें ही कात्यायनी अदृष्टपूर्व नहीं थी, बल्कि गाँवकी सभी स्त्रियाँ उसे असाधारण और अलौकिक समझतीं थीं। कोई सोचती थी कि दुष्ट ग्रहों और नक्षत्रोंकी कोपदृष्टिके कारण इस अपूर्वदर्शना कन्याका अखंड वैधव्य योग समझकर इसके पंडित पिता इसे पुराणोंमें कही हुई ऋषिकन्याओंके समान कुमारी संन्यासिनी बनानेके लिए इसे अनेक प्रकारके शास्त्रोंकी शिक्षा देते हैं। कोई सोचती थी कि कन्याका जन्म देव-अंशसे हुआ है, मनुष्यके साथ ब्याह उस सहेगा।

नहीं, इसी लिए पिताने उसके विवाहका विचार ही छोड़ दिया है। और नहीं तो क्या ऐसी देवीके समान कन्याके विवाहके लिए कोई वर ही न मिलता ? यद्यपि ज्योतिरत्न महाशय उस गाँवमें अभी हालमें ही आकर बसे थे, लेकिन फिर भी उनके परिवारके लोगोंके उत्तम स्वभावके कारण सभी लोग उनके प्रति बहुत अधिक श्रद्धा भक्ति रखने लगे थे। धीरे धीरे उनके गुणोंकी प्रशंसा जमींदार बाबू कामाख्यानाथके कानों तक भी पहुँची थी। यद्यपि कात्यायनीको अभी तक कुमारी ही देखकर गाँवकी स्त्रियोंको बहुत आश्चर्य हुआ था, तो भी उस कुमारीकी ओर किसीको अवज्ञाकी दृष्टिसे देखनेका साहस नहीं होता था।

परन्तु गाँवके लोगोंकी विस्मय और श्रद्धासे युक्त दृष्टिकी ओर कात्यायनीका कुछ भी ध्यान नहीं था। जो बालिका जन्मसे ही अपने विद्वान् पिताके साहचर्यमें इतनी बड़ी हुई थी, उसने आज तक अपने जीवनमें किसी प्रकारके अभावका अनुभव ही नहीं किया था। इधर कुछ दिनोंसे उसकी गृहस्थीमें एक प्रकारकी अशान्ति अवश्य उपस्थित हो गई थी। परन्तु उसके लिए उसका परिणाम केवल यही होता था कि कभी कभी रह रहकर वह कुछ चंचल हो उठती थी। बस और कुछ नहीं। उसके शान्तिस्निग्ध परिजनोंमें यह मनोवाद, शान्तिभंगकी यह सूचना क्यों हुई है, पिता माता और भाईके तुल्य-आत्मीयोंमें रहनेपर भी इस मनोमालिन्यका सूत्रपात क्यों हुआ है और फिर पिताजी भी क्यों उसके लिए दिन रात इस प्रकार चिन्तित रहते हैं, यही सब बातें सोच सोचकर कात्यायनी बीच बीचमें कुछ विचलित हो जाती थी। वह अपना मन किसी और तरफ लगानेके लिए कोई साथी ढूँढ़ रही थी कि इसी बीचमें रमाके साथ पहले पहल उसकी बातचीत हुई। रमामें कात्यायनीको कोई ऐसी बात मिल गई थी

जिसके कारण उसका संगीविमुख स्वभाव दिनपर दिन चुपचाप अपने आवरणका परित्याग कर रहा था। परन्तु कौन कह सकता है कि वह विधवा किशोरी, अवस्थामें अपनेसे कुछ अधिक बड़ी इस कुमारीके असाधारण जीवनकी क्यों संगिनी हो गई थी!

जब ज्योतिरत्न महाशय गंगातटकी ओर चले गए, तब कात्यायनी कुछ देर तक रमाके साथ उस दिन भेंट न हो सकनेकी बात सोचती रही और तब वह कुछ आगे बढ़कर बाहरी दरवाजेके पास जा पहुँची। वहीं उस खुले हुए दरवाजेमेंसे उसने हाथ जोड़कर गंगाजीको प्रणाम किया। उस समय हेमन्तकी नदीका शरीर बहुत संकुचित हो रहा था। बिना घाटपर उसके पास पहुँचे उसके शीर्ण शरीरके दर्शन नहीं होते थे। जब वह प्रणाम करके लौटने लगी, तब घंटेका गम्भीर नाद सुनकर वह सिहर उठी और दाहिनी ओर देखने लगी। गोविन्ददेव और शिव-जी दोनोंके मन्दिरोंके शिखर मानों चुपचाप उंगलीकी भाँति उठे हुए किसीको कोई संकेत कर रहे थे। स्तब्ध और भयभीत भावसे कात्या-यनी चुपचाप उसी ओर देखती रह गई।

थोड़ी देरमें बाजे बन्द हो गए। कात्यायनीने समझ लिया कि मूर्ति-योंकी शयन-आरती हो रही है। उन देवताओंके उद्देश्यसे कात्यायनीने कुछ देरके लिए सिर झुका लिया और तब फिर आकाशकी ओर देखा। उन्हीं शिखररूपी दोनों उंगलियोंके ऊपर नीले आकाशमें बहुतसे चमकते हुए तारोंके अनेक पुंज थे जिनके आस पास और भी कितने ही उज्ज्वल तथा अनुज्ज्वल रहस्यपूर्ण ज्योतिपुंज थे। उन्हें देखकर कात्यायनीने फिर सिर झुका लिया।

तीसरा परिच्छेद।

रात भरकी उमस भरी गरमीके बाद प्रभातकी शीतल वायुने मानो रुँधी हुई साँसवाले जगतके उष्ण वक्षस्थलको मानो शीतल और स्निग्ध कर दिया था। कामाख्यानाथ पलंग परसे उठकर और प्रातःकृत्योंसे निवृत्त होकर अपनी छतपर टहल रहे थे। पीले आकाशमें मलिन चन्द्रमाकी रेखा पड़ी हुई थी। एक एक करके सब नक्षत्र निष्प्रभ हो रहे थे; केवल शुक्र तारा दप् दप् करके चमक रहा था। अभी तक पूर्व आकाशमें सूर्यकी किरणोंका लाल आभास दिखाई नहीं पड़ रहा था। उषाकी पिंगल कान्ति केवल कोमल शुभ्रतासे भर रही थी। कामाख्यानाथने थोड़ी देर तक टहलनेके बाद पीछे फिरकर देखा कि उसी मलिन चन्द्रमाकी भाँति एक बालिका चुपचाप खड़ी हुई हमारी ओर देख रही है। कामाख्यानाथ कुछ व्यस्त होकर बोले—क्या है बेटी रमा, आज तुम इतने सबेरे कैसे उठीं?

बालिकाने स्थिर दृष्टिसे उनकी ओर देखकर कहा—बाबूजी, क्या आज तुम सन्ध्या पूजा करने नहीं बैठे थे, तुम्हारी तबीयत तो ठीक है न?

का०—नहीं बेटी, तबीयत तो ठीक है। पर रातको गरमी बहुत थी, इसलिए आज जरा सबेरे उठकर हवामें टहल रहा हूँ। क्यों बेटी, आज तुम्हारा चेहरा इतना उतरा हुआ क्यों है? क्या तुम्हारी तबीयत कुछ ठीक नहीं है?

रमाने चुपचाप सिर हिला दिया जिससे अस्वीकार प्रकट होता था।

कामाख्यानाथने फिर पूछा—तुम्हारे लड़के बच्चे तो सब अच्छी तरह हैं न? किसीके लिए किसी चीजकी जरूरत तो नहीं है? तुम्हारे गोविन्द-देवकी सेवाके लिए किसी नई व्यवस्थाकी आवश्यकता तो नहीं है न?

रमाने म्लान मुख और काँपते हुए स्वरसे कहा—नहीं, कुछ नहीं। बाबूजी, क्या तुमने नहीं सुना कि कात्यायनीके पिता बहुत बीमार हैं ?

का०—कात्यायनीके पिता ? कौन ज्योतिरत्न महाशय ? नहीं, मैं तो कुछ भी नहीं जानता। तुमसे किसने कहा ?

रमा—इधर कई दिनसे कात्यायनी सन्ध्या समय मन्दिरमें नहीं आती थी, इसी लिए कल सन्ध्याको आरतीके समय मैंने उसे बुला भेजा था। इसपर उसने कहला भेजा कि बाबूजीकी तबीयत बहुत खराब है, इसलिए मैं नहीं आ सकती।

का०—क्या वे बीमार हैं ? कबसे ? आजकल वह यहाँ आते भी बहुत कम थे। इसीलिए उनकी कोई खबर भी नहीं मिलती थी।

इतना कहते कहते कामाख्यानाथ रुक गये और मन ही मन सोचने लगे—इधर जब भेंट होती थी तब भी वे पहलेकी तरह बात चीत नहीं करते थे। वे बहुत चिन्तित और दुखी दिखाई देते थे। इसीलिए मैं उन्हें छेड़ना भी नहीं चाहता था। पर क्या वे बीमार हैं ? उन्होंने फिर अपनी कन्यासे पूछा—क्या वे सचमुच बीमार हैं ? मैंने तो किसीसे उनकी बीमारीका हाल नहीं सुना।

रमा—बाबूजी, आज तुम उनके यहाँ जाओ और जाकर देखो कि उनकी क्या हालत है।

रमाकी आँखोंमें आँसू भरे हुए देखकर कामाख्यानाथ चंचल हो उठे और उन्होंने आगे बढ़कर आदरपूर्वक उसके मस्तकपर हाथ फेरते हुए कहा, तुम भी निरी पागल हो। जरासी बीमारीका हाल सुनकर इतनी डर गई। मैं अभी जाकर उन्हें देखता हूँ। भला इसमें घबरानेकी कौनसी बात है ?

रमा—बाबूजी, मैं भी एक दिन कात्यायनीके पास जाऊँगी।

का०—आज ही चली जाना। पर उससे पहले ही मैं अभी जाता हूँ और उन्हें देख आता हूँ। फिर जैसा हाल होगा तुमसे कहूँगा।

इस समय तक पूर्व आकाश लाल रंगके प्रकाशसे भर गया था और कुछ ही क्षणोंमें उदय होनेवाला ज्योतिगोलक अपनी सिन्दूर-रक्त-कान्तिसे जगत्के तृषित नेत्रोंको तृप्त करनेको था। रमाने पीछे मुड़कर उसी ओर देखते हुए अपने आँसू पोंछे और उसके मर्मज्ञ पिता घबड़ाकर छतपरसे नीचे उतरे और एक कमरेमेंसे दूसरे कमरेमें पहुँचे। उन्होंने जोरसे आवाज दी—निरंजन, निरंजन। इतने सबेरे पिताको इस प्रकार अकस्मात् पुकारते हुए सुनकर निरंजन घबराकर पलँगपरसे उठ बैठा। उसने आँखें मलते हुए विस्मय और व्यग्रतासे भरे स्वरमें कहा—हाँ बाबूजी, अभी आया, कहिए क्या है? परन्तु निरंजनको पिताके पास जानेका अवकाश ही नहीं मिला। इससे पहले ही उसने देखा कि पिताजी कमरेमें सामने मौजूद हैं। वह चटपट पलँगपरसे उतरकर जमीनपर खड़ा हो गया।

का०—निरंजन, तुम्हें महेन्द्रका कुछ पता है? उसके घरका भी कुछ हाल मालूम है?

बहुत ही विस्मित होकर पिताकी ओर देखते हुए निरंजनने उत्तर दिया? महेन्द्रका हाल—आप तो जानते ही हैं कि आज तीन महीने हुए वह लिखना पढ़ना छोड़कर स्वाधीन रूपसे जीविका उपार्जन करनेके लिए—

कामाख्यानाथने बीचमें ही रोककर कहा—मैंने ही उसकी यह इच्छा देखकर उसे जमींदारीका काम सिखलानेके लिए दीवानके सपुर्द कर दिया था। पर क्या वह बीच बीचमें कभी तुमसे मिलता भी नहीं?

निरंजनने कुछ सोचकर कहा—वह कहाँ मुझसे ज्यादा मिलता है। मैं तो प्रायः दो महीनेसे यहाँ आया हुआ हूँ। इस बीचमें एक दिन दो दिन, बहुत हुआ होगा तो तीन दिन, मेरी उसकी भेंट हुई होगी। वह भी या तो संयोगसे कहीं रास्तेमें, या दीवानके सरिश्तेमें। मैंने सुना है कि वह प्रायः देहातोंमें रहकर ही काम सीखता है। कुछ देर ठहरकर निरंजनने दुःखित भावसे कहा—बल्कि मैं तो कह सकता हूँ कि वह अब आगेकी तरह मुझसे उतना हेल मेल भी नहीं रखता। भेंट होने पर भी दूर ही रहता है। वह बड़े आदर और मान्य भावसे मुझसे बातें करता है, इसी लिए मैं भी उतना—

कामाख्यानाथने कोई उत्तर नहीं दिया। वे केवल गम्भीर स्वरमें 'हूँ,' करके बाहरकी ओर चल पड़े। उनके पीछे पीछे जो नौकर चला आ रहा था, उसे उन्होंने दीवानको बुलानेकी आज्ञा दी और आप आगे बढ़े। जब वे सदर दरवाजेसे बाहर निकलकर सड़कपर पहुँचे, तब पीछेसे दीवानजी दौड़े हुए आए और अभिवादन करके खड़े हो गए। उनके अभिवादनका उत्तर देकर कामाख्यानाथने उनसे पूछा—महेन्द्र कहाँ है?

दीवान—जी, वह तो आज तीन चार दिन हुए देहातसे घूमकर घर आए हैं। वह भी बड़े विलक्षण काम करनेवाले हैं। मैंने तो ऐसी तेज अकलका आदमी ही आज तक नहीं देखा। इन दो ही तीन महीनोंमें—

कामाख्यानाथने मधुर स्वरसे बीचमें ही रोककर कहा—हाँ यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। मैं तो सिर्फ यह जानना चाहता हूँ कि उनका इधर तीन चार दिनका कुछ हाल आपको मालूम है या नहीं। जबसे वह बाहरसे आए हैं तबसे इधर सरिश्तेमें आए हैं या नहीं और इस समय वह कहाँ होंगे?

दीवान—जी, इधर तो वह मेरे पास नहीं आए। मैं तो समझता हूँ कि इस समय वह अपने ही मकानपर होंगे।

कामाख्यानाथने मानो आप ही आप कहा—मेरा भी कुछ यही अन्दाज था। तब तो वह अवश्य ही—। अच्छा अब आप जाकर अपना काम कीजिए।

मालिककी आज्ञा पाकर दीवानजी पीछेकी ओर लौटे और कामाख्यानाथ जल्दी जल्दी आगेकी ओर बढ़े।

ज्योतिरत्न महाशयके मकानके सामने पहुँचकर कामाख्यानाथने देखा कि दरवाजा अभी तक बन्द है। उन्होंने जोरसे पुकारा—महेन्द्र! महेन्द्र!

तुरन्त ही दरवाजा खुल गया और महेन्द्रने बाहर निकलकर चकित होकर कहा—आप इस समय कहाँ?

का०—ज्योतिरत्न महाशयकी तबीयत कैसी है?

महे०—ठीक नहीं है। इधर कई दिनोंसे वे बीमार हैं।

का०—चलो, मैं उन्हें जरा देखूँगा।

'आइए,' कहकर महेन्द्र आगे बढ़ा। उसके पीछे पीछे चलकर कामाख्यानाथ आँगनमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि आँगन बहुत गन्दा हो रहा है। ऐसा जान पड़ता था कि कई दिनोंसे वह झाड़ा बुहारा नहीं गया है। उन्हें ध्यान आया कि कुछ ही दिनों पहले जब ज्योतिरत्न महाशयसे परिचय हुआ था और मैं यहाँ उन्हें प्रणाम करनेके लिए आया था तब यह आँगन कैसा साफ सुथरा था। बस इसी साधारण लक्षणसे उन्होंने समझ लिया कि अवश्य ही ज्योतिरत्न महाशयके रोगने भीषण रूप धारण कर लिया है। और नहीं तो गृहस्थ लोग सहजमें घरकी सफाई आदिकी ओरसे इस तरह उदासीन नहीं होते। कामाख्यानाथके मुखपर धीरे धीरे गम्भीर चिन्ता छा गई।

महेन्द्रने घरके सब लोगोंको बाबू कामाख्यानाथके आनेकी सूचना दे दी और कोठरीका दरवाजा और जंगला खोल दिया और कोठरीके बाहर खड़े हुए कामाख्यानाथसे अन्दर आनेके लिए कहा। कोठरीमें एक चारपाई बिछी हुई थी। उसीपर रुग्ण ज्योतिरत्न महाशय सोए हुए थे। उनके पैरोंके पास पत्नी और सिरके पास कन्या कात्यायनी बैठी हुई थी। जब कामाख्यानाथ उनके सामने पहुँचे तब कात्यायनी वहाँसे उठकर दूसरी ओर जा बैठी।

ज्योतिरत्नने कामाख्यानाथकी ओर देखकर कुछ म्लान हँसी हँसते हुए कहा—आओ, बैठो भाई। इतना कहते हुए उन्होंने महेन्द्रके लाए हुए आसनकी ओर देखा। कामाख्यानाथ उस आसनपर बैठ ही रहे थे कि ज्योतिरत्नने पूछा—कामाख्यानाथ, आज इस समय इस रूपमें यहाँ कैसे चले आए?

ज्योतिरत्न महाशय कुछ विस्मित भावसे देख रहे थे, इस लिए कामाख्यानाथने जब अपने वेशकी ओर दृष्टि डाली तब उन्हें मालूम हुआ कि मैं जल्दीमें पूजनके वस्त्र पहने हुए ही यहाँ चला आया हूँ। मैं वही कौषेय वस्त्र, वही उत्तरीय और वही टाटकी जूती पहने हुए हूँ। जल्दीमें इन्हें उतारकर दूसरे कपड़े पहनना भी भूल गया हूँ। उन्होंने कुछ कुंठित भावसे उत्तर दिया,—मैंने अभी रमासे आपकी बीमारीका हाल सुना था, इसी लिए चला आया। मुझे तो कुछ खबर ही नहीं थी कि आप इतने बीमार हो गए हैं।

ज्यो०—कुछ बहुत ज्यादा दिन तो हुए नहीं थे। दो चार दिनोंमें ही मैं तुम्हें क्या खबर देता?

का०—क्यों जी महेन्द्र, तुमने भी मुझे कोई खबर नहीं दी। यह तो बड़े दुःखकी बात है।

ज्यो०—नहीं कामाख्यानाथ, इसमें महेन्द्रका कोई दोष नहीं है। मैंने देखा कि कहीं व्यर्थ तुम्हें चिन्ता और कष्ट न हो, इसी लिए मैंने ही मना कर दिया था।

परन्तु कामाख्यानाथने उनकी इस बातकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया और वे खिसककर ज्योतिरत्नके और पास जा पहुँचे। उन्होंने एक बार उनका ललाट छूआ और दाहिना हाथ ऊपर उठाया। थोड़ी देर तक नाड़ीकी गति देखनेके बाद उन्होंने कहा,—ज्वर तो अब भी पूरे जोरों पर दिखाई देता है। और क्या क्या शिकायतें हैं, अब इलाज किसका हो रहा है?

ज्योतिरत्नने कुछ म्लान हँसी हँसते हुए उंगलीसे अपने ललाटकी ओर संकेत किया।

महेन्द्रने कोमल स्वरसे कहा—अभी तक तो कोई दवा नहीं दी जा सकी है। डाक्टरी दवा तो आप छूते ही नहीं।

का०—डाक्टरी दवा न खायँ तो खैर कविराजी तो है। महेन्द्र, तुम्हारा इस तरह चुपचाप रहना ठीक नहीं हुआ।

महे०—मैं क्या करता? आप बराबर मना करते थे, इस लिए मैं क्या कर सकता था? आपकी आज्ञा कैसे टाल सकता था?

ज्यो०—कामाख्यानाथ, तुम व्यर्थ मेरे लिए अधिक चिन्ता मत करो। अपनी ही कही हुई बात आज क्यों भूले जा रहे हो। नियतिः केन बाध्यते।

का०—आप अभीसे ऐसे निराश क्यों हो रहे हैं, यह तो बहुत साधारण रोग है।

ज्यो०—जब आशाके साथ मेरा कोई मतलब ही नहीं है, तब फिर मैं निराश क्यों होने लगा?

इतनेमें बाहरसे किसीने पुकारकर कहा—महेन्द्र, बाबूजी यहाँ आए हैं?

कामाख्यानाथने महेन्द्रसे कहा—देखो महेन्द्र, निरंजन आया है। तुम बाहर जाकर उससे कह दो कि जल्दी किसी आदमीको कविराज चन्द्रनाथजीको बुलानेके लिए भेजे। तुम मत जाना। यहाँ शायद तुम्हारा काम पड़ेगा। निरंजनसे आदमी भेजनेके लिए कह आओ।

महेन्द्रके वहाँसे चले जानेपर थोड़ी देर तक सब लोग चुपचाप बैठे रहे। सहसा ज्योतिरत्नने अपनी मुँदी हुई आँखें खोलीं और हँसते हुए मानो किसी अदृश्य व्यक्तिको सम्बोधन करते हुए कहा—इतने दिनों तक मैंने उसे ग्रहण नहीं किया, सदासे पौरुषको ही श्रेष्ठ मानता आया हूँ। पर अब वह भ्रम नहीं रह गया। अब प्रत्येक बातमें उसीका खेल दिखाई देता है। यह क्या? तुम कौन हो? यह कौषेय वस्त्र पहने हुई ज्योतिर्मय मूर्त्ति कौन है? तुम्हारी कैसी तेजपूर्ण मूर्त्ति है कि आँख ही नहीं ठहरती। क्या तुम कात्यायनीके भाग्यविधाता हो?

कामाख्यानाथ बहुत ही चकित हुए। ज्योतिरत्न महाशय टकटकी लगाए उन्हींकी ओर देख रहे थे। उनके आँखोंके भाव और असम्बद्ध बातोंसे उन्होंने समझ लिया कि रोगीके मस्तिष्कमें विकार आ गया है। उन्होंने भग्न स्वरसे कहा—आप क्या कह रहे हैं? मैं आपके लड़केके समान कामाख्यानाथ हूँ। आप क्या मुझे नहीं पहचानते?

ज्यो०—क्या मैं नहीं पहचानता? किसे नहीं पहचानता? कात्यायनी, क्या मेरी बुद्धि भ्रष्ट गई हो है, क्या मैं यों ही बक रहा हूँ?

कात्यायनी खिसककर पिताके मुँहके पास आ गई और उनके मुँहके पास अपना मुँह ले जाकर कोमल स्वरसे बोली—नहीं बाबूजी।

ज्यो०—देखो, मैं तुम्हें तो पहचान रहा हूँ। देखो यह तुम्हारी माता है। तब कौन कहता है कि मेरा ज्ञान नष्ट हो गया है?

का०—नहीं बाबूजी, यह तो किसीने नहीं कहा। मैं तुम्हारे सिर-पर हाथ फेरती हूँ। तुम सोओ।

यह कहकर कात्यायनीने ज्योतिरत्नके सिरपर हाथ फेरना आरम्भ किया और वे विवश बालककी भाँति आँखें बन्द करके पड़ रहे।

कामाख्यानाथ चुपचाप सिर झुकाए हुए बैठे थे। इतनेमें उनके कानमें कोमल स्वर सुनाई पड़ा—कविराजके आनेमें कितनी देर है? उन्होंने चकित होकर सिर उठाया और देखा कि सामने आँखोंमें जल भरे हुए कात्यायनी खड़ी यह प्रश्न कर रही है।

कामाख्यानाथने उसी प्रकार कोमल स्वरमें उत्तर दिया—कुछ देर तो होगी ही। उनका मकान यहाँसे कुछ दूर है। इनकी यह अवस्था कबसे है?

का०—यह अवस्था तो अभी पहले पहल दिखाई दे रही है। ज्वर आज पाँच दिनोंसे अवश्य है, परन्तु अभी तक इस प्रकारका प्रलाप देखनेमें नहीं आया।

का०—कविराजको जो नहीं दिखलाया गया, यह बहुत ही अनुचित हुआ। यदि इस बीचमें आपने कमसे कम मुझको ही खबर भेज दी होती, तो भी एक बात थी।

कात्यायनी कोमल स्वरमें मानो आप ही आप कहने लगी—इनके साहसके कारण हम लोगोंमें भी साहस आ गया था। पहले ज्वर होनेपर वे कभी दवा नहीं खाते थे, इसलिए हम लोगोंने इस बार भी दवा आदिकी आवश्यकता नहीं समझी। आजसे दो दिन पहले तक हम लोगोंकी समझमें यह बात नहीं आई थी कि यह बीमारी इतने जोरोंकी है। इसी लिए अन्तमें आपको भी इतना कष्ट करना पड़ा। केवल—

इससे और आगे कात्यायनीसे कुछ कहा नहीं गया। आशंकाके कारण वह कुछ काँपने लगी और कष्टपूर्ण दृष्टिसे एक बार कामाख्यानाथकी ओर देखकर उसने सिर झुका लिया।

कामाख्यानाथ भी बहुत दुखी हुए और कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहे। अन्तमें उन्होंने सोचा कि यदि रमाको भी यहाँ बुला लिया जाय तो अच्छा हो।

इतनेमें महेन्द्रने धीरे धीरे कोठरीमें आकर मृदु स्वरसे कात्यायनीसे कहा——जरासा तुम बाहर जाओ। देखो माँ वहाँ बहुत अधीर हो रही हैं।

कात्यायनीने आँख उठाकर देखा तो उसे मालूम हुआ कि अपने स्वामीका ज्ञान इस प्रकार नष्ट होता हुआ देखकर अधीर साध्वी कभीकी कोठरीके बाहर चली गई है। उसने ज्यों ही वहाँसे उठना चाहा, त्यों ही ज्योतिरत्नने कुछ कुछ आँखें खोलकर पुकारा——बेटी कात्यायनी।

कात्यायनी 'बाबूजी' कहकर तुरन्त ही फिर वहीं बैठ गई और पिताके मस्तकपर हाथ फेरने लगी। साथ ही उसने इशारेसे महेन्द्रको समझा दिया कि मेरा यहाँसे उठना नहीं हो सकता। तुम माँके पास जाओ और वहीं रहो। इसपर महेन्द्र उठकर बाहर चला गया। कामाख्यानाथ रोगीके मुँहकी ओर देखते हुए चुपचाप बैठे रहे।

इतनेमें कविराजजी भी आ पहुँचे। एक साथ कई आदमियोंके पैरोंकी आहट सुनकर ज्योतिरत्न फिर जाग पड़े। सब लोगोंकी ओर आश्चर्यभरी दृष्टिसे देखते हुए उन्होंने कहा——तुम लोग कौन हो? कामाख्यानाथ नहीं हैं? महेन्द्र ये सब लोग कौन हैं?

कामाख्यानाथने उत्तर दिया—यह मेरा लड़का निरंजन है और ये कविराजजी हैं।

ज्यो०—कविराजकी क्या आवश्यकता है ? अब तो मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मेरे शरीरमें कोई रोग ही नहीं है। मैं तो बड़े आरामसे सोया हुआ था। मैंने कैसा विलक्षण स्वप्न देखा था। ओह! ब्राह्मणी कहाँ है ? मुझे एक दिव्य कान्तिवाले और कौषेय वस्त्र पहने हुए देवता दिखाई दिए थे। उन्हींके हाथमें मैं कात्यायनीको समर्पित करता हूँ।

कविराजने बहुत देर तक रोगीको बहुत अच्छी तरह देखा, बहुतसे प्रश्न किए और अन्तमें कई प्रकारकी गोलियाँ आदि देकर और सब व्यवस्था बतलाकर वे उठ खड़े हुए। खड़े होकर उन्होंने कहा—ज्यों ही अवस्थामें किसी प्रकारका परिवर्तन हो त्यों ही मुझे खबर दी जाय। और नहीं तो फिर सन्ध्या समय मैं स्वयं ही आऊँगा।

कविराजजीके साथ कामाख्यानाथ और महेन्द्र आदि भी बाहर निकल आए। आँगनसे बाहर निकलकर कामाख्यानाथने कविराजसे पूछा—क्या हाल है ?

कवि०—हाल तो अच्छा नहीं मालूम होता। पूर्ण रूपसे विकार है। नाड़ी बहुत ही खराब है। बहुत होशियार रहनेकी आवश्यकता है।

कुछ देर तक चुप रहनेके उपरान्त कामाख्यानाथने फिर पूछा, अच्छे हो जानेकी आशा तो है न ?

कवि०—यह तो भगवानके हाथ है। आदमियोंकी कही हुई कोई बात यहाँ काम नहीं आती। हाँ जो कुछ हो सकता है, उसमें किसी प्रकारकी त्रुटि न होनी चाहिए। बस इतना ही।

कविराज चले गए। कामाख्यानाथने निरंजनसे कहा—जाकर रमासे सब हाल कह दो। इनकी बीमारी भारी जान पड़ती है। पर इससे ज्यादा और कुछ मत कहना और यदि वह यहाँ आना चाहे तो उसे अपने साथ ही लेते आना।

निरंजन चुपचाप वहाँसे चला गया। दिन बहुत चढ़ आया था। पिताजीने अभी तक स्नान और पूजन आदि भी नहीं किया था। पर फिर भी इस विषयमें उनसे कोई बात कहनेका निरंजनको साहस नहीं हुआ। बल्कि उसने यही सोचा कि अभी इस बातकी चर्चा करना ठीक नहीं है। तिसपर पिताजी गाँवके सभी लोगोंके कठिन अवसरपर इसी प्रकार उपस्थित रहा करते थे। वह लड़कपनसे ही पिताजीको इसी प्रकार सबके यहाँ मौजूद रहते देखता था और स्वयं भी उसने ऐसा ही करनेकी शिक्षा पाई थी। परन्तु रमाका हृदय बहुत ही कोमल था और ऐसे अवसरोंपर वह बहुत ही विह्वल हो जाया करती थी। यह सब कुछ जानते हुए भी पिताजीने रमाको जो समाचार सुनानेके लिए कहा था उससे यही सूचित होता था कि ज्योतिरत्नके परिवारपर भारी विपत्ति आनेवाली है। यदि यह बात न होती तो वे रमासे कभी यह समाचार कहनेके लिए आदेश न देते। क्योंकि निरंजन यह बात अच्छी तरह जानता था कि जहाँ तक हो सकता है पिताजी रमाको सब प्रकारके सांसारिक दुःखों और कष्टोंसे सदा दूर ही रखना चाहते हैं। घरपर रमाके पास उसके इतने अधिक अनाथ और आर्त्त आश्रित आया करते थे कि जिनकी कोई गिनती नहीं थी। उसके उन पुत्रों और कन्याओंके सब प्रकारके अभाव तथा दुःख आदि दूर करनेके लिए कामाख्यानाथ सदा मुक्तहस्तसे धन व्यय किया करते थे। परन्तु फिर भी रमा सदा उनके स्नेहरूपी गोदकी सीमाके अन्दर ही निवास किया करती थी। केवल मन्दिरको छोड़कर वह और कहीं नहीं जाती थी। ज्योतिरत्न महाशयके बीमार होनेपर पिता केवल कर्तव्यज्ञानसे ही यह सब कुछ नहीं कर रहे हैं। और दिनों दूसरे लोगोंके यहाँ जो इस प्रकारकी घटनाएँ हुआ करती थीं उनमें और आजकी घटनामें बहुत अन्तर है।

ज्योतिरत्नपर उनकी देवताकी भाँति श्रद्धा और भक्ति थी। निरंजनको भी यह बात माळूम हो गई थी कि पिताजी इस समय मन ही मन बहुत व्याकुल हो रहे हैं। और रमा? कात्यायनीके इस सर्वनाशकी सम्भावनासे वह भी मन ही मन न जाने कितनी दुखी हो रही होगी। यही सब बातें सोचकर निरंजनने जल्दी जल्दी घरकी ओर पैर बढ़ाए।

कामाख्यानाथके पीछे पीछे चलकर महेन्द्रने भी कोठरीमें प्रवेश किया। वहाँ पहुँचकर महेन्द्र पास ही पड़ी हुई एक छोटी चौकीपर बहुत उदास होकर बैठ गया। थोड़ी देर बाद कामाख्यानाथने उसके मस्तकपर हाथ रखकर कहा—देखो औरतोंकी तरह अधीर मत हो। परन्तु इतना कहते कहते उन्हें कात्यायनीकी आशंकासे काँपती हुई दुखी और दृढ़ मूर्त्तिका ध्यान आगया और उन्होंने अपने मुँहसे निकलती हुई बात वहीं रोक ली, आगे कुछ नहीं कहा। कविराजने जिस प्रकार बतलाया था उसी प्रकार रोगीको औषध आदि दी गई। ब्राह्मणीको कुछ कुछ आशा होने लगी और वह फिर अपने स्वामीके पास आ बैठी। महेन्द्र रोगीके मस्तकपर हवा करने लगा।

कात्यायनी जब कविराजके आदेशके अनुसार पथ्य आदि तैयार करनेके लिए उठी तब उसने दो एक बार कामाख्यानाथकी ओर देखकर अन्तमें सिर झुकाकर बहुत ही धीरेसे कहा,—बहुत देर हो रही है। आप भी स्नान भोजन आदि करें।

का०—हाँ मैं भी अब जाता हूँ। महेन्द्र, चलो तुम भी हमारे साथ चलकर कुछ खा पी आओ।

महेन्द्र वहाँसे उठना नहीं चाहता था। इसपर कात्यायनीने कहा,—कलसे तुमने कुछ खाया पीया नहीं है। (कामाख्यानाथसे) आप चलें, ये थोड़ी देरमें आते हैं।

कामाख्यानाथने महेन्द्रकी ओर देखकर कहा—जान पड़ता है कि इन लोगोंने भी कुछ खाया पीया नहीं है। रमा अभी आती होगी। मन्दिरसे प्रसाद—

महे०—आप चिन्ता न करें। मन्दिर तो पास ही है। यदि आवश्यकता होगी तो वहींसे प्रसाद मँगवा लिया जायगा।

कामाख्यानाथने एक बार कात्यायनीकी ओर देखा। उसकी मूर्ति ठीक उसी दीपककी भाँति जान पड़ती थी जो बिना हवाके स्थानमें शान्त और अचंचल रहता है। पर साथ ही उसकी ज्वालामय दाहिका शक्ति उसके समस्त धैर्य और संयमको जलाकर राख कर देनेके लिए वैसी ही उज्ज्वल और उन्मुख हो रही थी। यद्यपि ऊपरसे देखनेमें उसका धैर्य पर्वतके समान अटलता प्रकट कर रहा था, पर ऐसा जान पड़ता था कि अन्दर ही अन्दर समुद्र-गर्जनकी भाँति ऊँची और वेगवती तरंगें उठ रही थीं और उनके आघातसे पत्थरका जो अधीर क्रन्दन हो रहा था उसका शब्द बाहर तक सुनाई पड़ता था। उस बालिकाके मुखकी ओर देखकर प्रवीण कामाख्यानाथकी आँखोंमें भी जल भर आया। उन्होंने बहुत ही कोमल स्वरमें कात्यायनीसे कहा—विपत्तिके समय अधीर नहीं होना चाहिए।

का०—नहीं।

कामा०—अपनी माँको भी धीरज दो। अभी बहुत कुछ आशा है।

कात्यायनीने सिर उठकर कामाख्यानाथकी ओर देखा। उसकी दृष्टिसे ही कामाख्यानाथने समझ लिया कि इसे धैर्य दिलाना अनावश्यक है। उन्होंने भग्न स्वरसे कहा—ईश्वरकी इच्छा।

कात्यायनी चुपचाप खड़ी रही। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। कामाख्यानाथने महेन्द्रसे कहा, अच्छा अब मैं जाता हूँ। स्नान पूजन

और भोजन आदि करके जल्दी ही आता हूँ। तुम भी देर मत करना। यहाँका जो काम हो वह समाप्त करके जल्दी चले आना। इसके उपरान्त उन्होंने कात्यायनीकी ओर देखकर कहा—मैं रमाको अभी भेज देता हूँ।

कात्यायनीने अस्फुट स्वरमें कहा,—रमा? उसे यहाँ भेजनेकी तो कोई ऐसी आवश्यकता नहीं है। व्यर्थ ही कष्ट देना है। आप तो हैं ही—

कामा०—उसीने मुझे इनकी बीमारीका हाल सुनाया था। उसके कहनेसे पहले मुझे कुछ माळूम ही नहीं था। वह तो आप ही यहाँ आनेके लिए छटपटा रही थी। जान पड़ता है कि मैं अभी तक वहाँ नहीं गया, इसी लिए वह अभी तक यहाँ नहीं आई। देखो जब गोविन्द-देवका प्रसाद आवे तब माँको जरूर उसमेंसे जबरदस्ती कुछ खिला देना। तुम समझदार हो। यदि तुम्हीं अधीर होगी तो माँ तो और भी अधिक अधीर होंगी। तुम यह तो जानती ही हो कि यदि तुम लोग भोजन न करोगी तो रोगीकी सेवा शुश्रूषामें भी त्रुटि होने लगेगी।

कात्यायनीने चुपचाप सिर झुकाकर स्वीकृति प्रकट की।

कामा०—यदि इस बीचमें ही कोई आवश्यकता आ पड़े तो मुझे खबर देनेमें संकोच मत करना।

कात्या०—जी नहीं।

कामा०—महेन्द्र, देखो तुम भी ज्यादा देर मत करना।

इतना कहकर कामाख्यानाथ वहाँसे चले गए। कात्यायनीने रोगीको पथ्य देकर महेन्द्रसे कहा,—इस समय तो तबीयत जरा ठहरी हुई माळूम होती है। तब तक तुम जाकर भोजन कर आओ।

महे०—तुम लोगोंने भी तो कलसे कुछ खाया नहीं है। मैं नहीं जाऊँगा।

कात्या०—तुमने सुन तो लिया ही कि प्रसाद आवेगा। इसलिए अब जाओ, तुम भी खा आओ।

माताने कहा—नहीं रहने दो। महेन्द्र भी उसी प्रसादमेंसे कुछ ले लेगा। यह चला जायगा तो मुझे डर लगने लगेगा।

कात्या०—अच्छी बात है। रहने दो।

थोड़ी देरमें कात्यायनीने देखा कि निरंजन दरवाजेके पास एक ओर खड़ा हुआ है। उसने समझ लिया कि रमा आई है। इसलिए वह पिताके पाससे उठकर दरवाजेके पास गई। निरंजन जल्दीसे कुछ पीछे हट गया। कात्यायनीने देखा कि रमा मुँह ढके हुए दीवारके साथ बिलकुल सटी हुई खड़ी है। उसके समस्त शरीरसे मानो एक सहानुभूतिपूर्ण कुंठा प्रकट हो रही है। कात्यायनीने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—रमा, तुम आज इस समय यहाँ कैसे आई?

ज्यों ही कात्यायनीने रमाका हाथ पकड़ा त्यों ही रमा अस्फुट स्वरमें रोने लगी। वह कात्यायनीके गलेसे लिपट गई और उसकी गोदमें मुँह छिपाकर आती हुई रुलाईको उसने जबरदस्ती रोका। रमाके इस व्यवहारसे कात्यायनीका कुंठा और दूरत्ववाला भाव जाता रहा और उसकी आँखोंमें भी आँसू भर आए। रमाके स्पर्शसे ही कात्यायनी बहुत विह्वल हो गई और वह भी रोती हुई इसी प्रकार किसीके गलेसे लिपटनेके लिए उत्सुक होने लगी। परन्तु फिर भी कात्यायनीने बड़े कष्टसे अपने मनका वह आवेग रोका और अपने आँसू पोंछकर भग्न स्वरसे कहा—रमा, तुम इस जलती हुई आगमें क्यों आई? तुमसे तो यह सब देखा नहीं जायगा। मुझसे तुमसे भेंट तो हो ही गई। अब तुम लौट जाओ।

परन्तु रमाने कात्यायनीकी इस बातका कोई उत्तर नहीं दिया, उसने कात्यायनीको और भी जोरसे पकड़कर दबा लिया। कात्यायनी उसका मतलब समझ गई, इसलिए उसने लाचार होकर कहा—अच्छा, तो फिर अन्दर चलो।

कात्यायनीका आँचल पकड़े हुए रमाने उसके साथ घरमें प्रवेश किया और वह ज्योतिरत्नकी शय्याके पास कात्यायनीसे सटकर बैठ गई। यद्यपि अवस्थामें वह कात्यायनीसे कुछ छोटी थी; परन्तु फिर भी उसे कात्यायनीका स्वभाव बिलकुल छोटी बालिकाके समान ही जान पड़ता था। ज्योतिरत्नकी ओर उसने केवल एक बार देखा था। फिर दोबारा उनकी ओर देखनेका उसे साहस ही नहीं होता था। वह चुपचाप कात्यायनीकी पीठके पीछे मुँह छिपाए हुए काठ होकर बैठी हुई थी। कात्यायनीने फिर एक बार मनमें सोचा कि ऐसे समयमें उन लोगोंने रमाको यहाँ भेजकर अच्छा नहीं किया। अपनी किसी असुविधाकी बातको उसने मनमें नहीं आने दिया। उसने केवल यही सोचा कि क्यों व्यर्थ इन लोगोंको इतना कष्ट होने दिया जाय। विधिका विधान तो किसी प्रकार टलेगा ही नहीं, तो फिर हम लोगोंके कारण इन लोगोंको क्यों व्यर्थ इतना कष्ट हो। जो रमा इतिहासों और पुराणों आदिमें कही हुई करुण कहानियाँ सुनकर भी धैर्य नहीं धारण कर सकती, उसे जब इस प्रकार अपने किसी स्नेहभाजन व्यक्तिकी विपत्तिके क्षेत्रमें उपस्थित रहना पड़ेगा तब वह अधिक समयतक धीरतापूर्वक यह दृश्य न देख सकेगी। जिसका अन्तःकरण इतना कोमल हो उसे ऐसे अवसरोंपर सदा दूर ही रहना चाहिए।

अब निरंजनने फिर आगे बढ़कर आवाज दी—महेन्द्र बाबू, आइए। बाबूजी आपका आसरा देख रहे हैं। और देखिए ये लोग मन्दिरसे प्रसाद लाए हैं। यह ले लीजिए।

कात्यायनीने महेन्द्रकी ओर देखा, पर उसने चुपचाप सिर झुकाकर मानो अस्वीकार कर दिया। लाचार होकर कात्यायनीने स्वयं दरवाजेपर जाकर धीरेसे कहा—महेन्द्रको यहीं रहने दीजिए। वह इसी प्रसादमेंसे यहीं कुछ ले लेंगे। वह चले जायँगे तो हम लोगोंसे यहाँ रहा नहीं जायगा।

निरंजनने सरल आग्रह जतलाते हुए कहा—आप लोग अकेली क्यों रहेंगी? जब तक वे लौटकर नहीं आवेंगे तबतक मैं यहाँ रहूँगा।

का०—आप लोग इतना घबरायँ नहीं। घबरानेसे तो कोई लाभ नहीं। आप जायँ और रमाको भी लेते जायँ। शायद वह आपका ही रास्ता देख रही हैं।

निरंजन चुपचाप खड़ा रहा। कात्यायनीका धीर परन्तु विषादयुक्त स्वर सुनकर वह कुछ भी निश्चय न कर सका कि अब क्या करना चाहिए। मानो निरुपाय होकर उसने फिर आवाज दी—महेन्द्र बाबू।

पर महेन्द्रने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने ऐसा भाव दिखलाया कि मानो निरंजनके साथ उसकी कभीकी जान पहचान ही नहीं है। कात्यायनीने देखा कि महेन्द्र तो निरंजनकी बातका कोई उत्तर ही नहीं दे रहा है, इसलिए वह भी चुपचाप खड़ी रही। इतनेमें रमाने बाहर निकलकर अपने भाईसे कहा—भइया, अब तुम जाओ। इन लोगोंका इस समय यहाँसे हटना ठीक नहीं है। तुम व्यर्थ देर मत करो।

लाचार होकर निरंजन वहाँसे चला गया। कात्यायनीने रमाकी ओर देखकर कहा—रमा तुम नहीं गई, तुम भी चली जाओ न?

परन्तु रमाने कात्यायनीकी बात मानो सुनी ही नहीं। जो दो ब्राह्मण मन्दिरसे प्रसाद लेकर आए थे उनके हाथसे उसने एक एक करके दोनों थाल ले लिए और उन्हें बिदा कर दिया।

चौथा परिच्छेद ।

बुझते हुए दीपकमें और तेल देनेकी आवश्यकता नहीं हुई । बहुत शीघ्र ज्योतिरत्नका अन्तिम काल आ उपस्थित हुआ ।

न तो उस दिन और न उसके बाद रातको ज्योतिरत्नके ज्ञानमें किसी प्रकारका विभ्रम दिखलाई दिया । वे सबके साथ सहज भावसे बातें करते रहे । अपनी पत्नीको उन्होंने बहुत कुछ ढारस दिया और महेन्द्रको बार बार आशीर्वाद दिया । कात्यायनीके विवाहके सम्बन्धमें उन्होंने कामाख्यानाथसे कहा—मेरी कन्याके विवाहके लिए तुम अधिक चिन्ता मत करना । हम लोग मुख्य कुलीन हैं । हमारे कुलोंमें बहुतसी कन्याएँ जन्म भर कुँआरी ही बैठी रहती हैं । मैंने जो कुछ किया है, उसके कारण कात्यायनीके भाग्यके सम्बन्धमें कदाचित् कुछ सन्देह उत्पन्न हो गया है । उसके लिए उपयुक्त पात्र ढूँढ़नेके लिए तुम किसीके कृपाप्रार्थी मत होना । इतनी चिन्ता भी मुझसे सही नहीं जाती । तुम लोग कभी कोई ऐसा काम मत करना जिससे लोग मेरी गौरीके समान कन्याको कुलक्षणी समझकर उसका निरादर करें ।

कामाख्यानाथने बहुत ही धीरेसे उत्तर दिया—आपकी कन्याके सम्बन्धमें लोगोंके मुँहसे इस प्रकारकी उच्च भावनाएँ भी सुनी जाती हैं, इस लिए आप इस बातकी जरा भी चिन्ता न करें कि लोग आपकी कन्याको कुलक्षणी समझकर उसका निरादर करेंगे । इसी लिए मैं आपसे यह निवेदन करना चाहता हूँ कि जहाँ तक हो सकेगा, कोई उपयुक्त पात्र ढूँढ़कर मैं उसे आपकी कन्या देनेका विचार करता हूँ । आप कृपा कर इसके लिये मुझे आज्ञा प्रदान करें ।

परन्तु ज्योतिरत्नने कामाख्यानाथको यह बात पूरी तरहसे कहने ही नहीं दी। उन्होंने मानो उनकी यह बात सुनी ही नहीं और आप ही आप कहना आरम्भ किया—जब मैं ही किसी उपयुक्त पात्रको उसका हाथ न पकड़ा सका, तब मैं समझता हूँ कि उसके भाग्यमें आजन्म कुमारी रहना ही लिखा है। और भाग्यका लिखा भला कौन मिटा सकता है? इसी लिए लाख चेष्टा करनेपर भी मैं सफल नहीं हो सका था।

ब्राह्मणीने रुँधे हुए गलेसे कहा—तुम मुझे यह अनुमति दे दो कि मैं महेन्द्रको कात्यायनीका हाथ पकड़ा दूँ।

यह सुनते ही ज्योतिरत्न मानो बहुत ही डर गए और विचलित होकर चिल्ला उठे—नहीं नहीं, कदापि नहीं। मैं अब भी भाग्यके साथ युद्ध कर रहा हूँ और यही युद्ध करते करते मरूँगा। मेरा यह युद्ध अब बन्द नहीं होगा। मेरे प्राणोंसे भी प्यारे बेटे महेन्द्र, आओ मैं तुम्हें आशीर्वाद दूँ। बस, तुम इस आशीर्वादसे ही सन्तुष्ट रहो।

ज्योतिरत्नका उठा हुआ हाथ धीरे धीर फिर नीचे गिर गया। महेन्द्र चुपचाप बिना हिले डुले जहाँका तहाँ बैठा रहा। थोड़ी देर बाद ज्योतिरत्न फिर मानो आप ही आप कहने लगे—स्वकर्मफलभुक् पुमान्। मैं भूल रहा हूँ। सब बातें भूल रहा हूँ। नमस्तत्कर्मेभ्यः। इसी लिए जब महेन्द्र पढ़ने लिखनेकी ओरसे मन हटाकर काम-काजकी शिक्षाकी ओर ध्यान देता था तो मैं सदा दुखी होता था, कभी सन्तुष्ट नहीं होता था। मैं अभी तक यह न जान सका कि यह किसकी कुटिल गति है। अरे वह कौन है? कौन है! ओह!

ज्योतिरत्नने सहसा पास ही बैठी हुई कन्याको स्पर्श करके कहा—बेटी कात्यायनी।

कात्यायनीने उत्तर दिया—हाँ बाबूजी।

कन्या अपने पिताके मस्तकपर झुककर इस बातकी प्रतीक्षा करने लगी कि पिताजी कुछ कहें। परन्तु ज्योतिरत्नने फिर उसकी ओर नहीं देखा और वे आप ही आप बड़बड़ाने लगे—कामाख्यानाथ—ओह! ईश्वर मुझसे अन्तिम मुहूर्त्त तक बोल रहे हैं, जिससे मैं यह प्रलोभन संवरण कर सकूँ। कामाख्यानाथ, देखो विधाताका विधान कैसा विलक्षण है! कात्यायनी अब पूरे सत्रह वर्षोंकी हो गई है। बस अब इसी समय एक बार उसके विवाहका अनुकूल योग उपस्थित होगा। केवल शुक्रके क्रूर दृष्टिपातकी ही आशंका थी। महापुरुष स्वामी प्राप्त करके भी वह सुख नहीं भोग सकती। हाँ, ऐसा ही जान पड़ता है। पर नियतिकी यह कैसी विचित्र लीला है! कहाँ तो आज इसका विवाह—नहीं, आज वह आत्मीयों और स्वजनोंसे बिलकुल रहित हो गई है, वह निस्सहाय आर आश्रयहीन हो रही है। ओह! देखो फिर भूला जा रहा हूँ। शनि तो उसके पिता माताके सम्बन्धमें भी शत्रु हो रहा है। लेकिन उसका फल इतनी जल्दी—

कामाख्यानाथने कुछ दृढ़ होकर कहा—यदि आप इस समय भी मुझपर कोई भार नहीं रक्खेंगे तो मुझे जन्मभर इसका दुःख रहेगा। क्या आप मुझे अपनी स्त्री, कन्या और पुत्रकी रक्षा करने या यथासाध्य कन्याका विवाह करनेकी आज्ञा नहीं देंगे? आप मुझपर इतना स्नेह रखते आये हैं, लेकिन ऐसे समय भी आप मुझपर कोई भार नहीं छोड़ेंगे?

मृत्युशय्यापर पड़े हुए ब्राह्मणने स्निग्ध नेत्रोंसे कामाख्यानाथकी ओर देखकर कहा—कामाख्यानाथ, तुम कौनसा भार उठाना चाहते हो? कन्याके विवाहका? यदि उसका विवाह होनेको ही होता तो—। परन्तु वह बात जाने दो। मुझे तो उसका केवल एक ही उपाय दिखलाई

पड़ता है। परन्तु वह उपाय हो ही नहीं सकता। इसी लिए मैं कहता हूँ कि मेरी कन्या जन्मभर कुमारी ही रहेगी। मेरा यह आदेश स्मरण रखना।

कामा०—जरा मैं भी सुनूँ कि वह उपाय क्या है। मैं वही उपाय करनेकी पूरी पूरी चेष्टा करूँगा। आप केवल यह बतला दीजिए कि वह उपाय क्या है?

ज्योतिरत्नने जोरसे मुँह बन्द कर लिया। कुछ देरतक चुप रहनेके उपरान्त उन्होंने फिर कोमल स्वरसे कहा—इन लोगोंकी देखरेख रखनेकी बात कहते हो! वह यदि तुम न करोगे तो फिर और कौन करेगा? इन लोगोंके भरण पोषणकी कोई चिन्ता नहीं है। महेन्द्र सब प्रबन्ध कर लेगा। वह इस ब्राह्मणीके लड़केकी जगह है। लेकिन फिर भी वह लड़का ही है। कामाख्यानाथ, इन लोगोंके रक्षणावेक्षणका सारा भार मैं तुम्हींपर छोड़े जाता हूँ। तुम्हीं इन लोगोंका शुभाशुभ देखना और और इन्हें उत्तम परामर्श देना। कामाख्यानाथ, एक बात और कहता हूँ। जरा भाग्यका रहस्य देखो! फिर प्रकारान्तरसे तुम्हींपर मुझे कात्यायनीका सब भार रखना पड़ा। उस दिन जब तुम बिना बुलाए आप ही आप व्यग्र होकर दौड़े आए थे, तभी मैंने समझ लिया था कि अन्तमें यही होगा।

कामा०—भला आप यह कौनसा बहुत बड़ा भार मुझे दे रहे हैं। और इतनासा देनेमें भी क्या आपको कष्ट होता है?

ज्यो०—नहीं, कष्ट क्यों होने लगा। उस दिन तुम्हारी जन्मपत्री देखते ही मुझे यह सन्देह हुआ था। बस यही विधिलिपि है। खैर, उस बातको जाने दो। महेन्द्र, महेन्द्र, जरा एक बार तुम मेरे पास आओ।

जब महेन्द्र पास आ गया तब ज्योतिरत्नने बड़े कष्टसे उसका एक हाथ पकड़ा और धीरे धीरे वह हाथ कामाख्यानाथके ऊपर रख दिया। फिर बहुत ही धीरे धीरे कहना आरम्भ किया—देखो कामाख्यानाथ, मैं अपने इस महेन्द्रको तुम्हारे हाथ सौंपता हूँ। तुम सदा इसका ध्यान रखना और इसपर स्नेहकी दृष्टि रखना। इसके मंगल अमंगलपर ध्यान रखना। बस, यही मेरा अनुरोध है। कात्यायनीके सम्बन्धमें अब मुझे कोई चिन्ता नहीं है। जितनी चिन्ता—

ज्योतिरत्न क्रमशः निस्तेज होते जा रहे थे और उनकी बोली धीरे धीरे बन्द होती जा रही थी। वे बीच बीचमें न जाने क्या अस्पष्ट रूपसे कहने लगे। यद्यपि कामाख्यानाथ बहुत ही ध्यानसे उनकी बातें सुनना चाहते थे, पर फिर भी उन्हें कुछ सुनाई या समझाई नहीं देता था। बस बार बार कभी तो स्पष्ट रूपसे और कभी अस्पष्ट रूपसे चार आँच शब्द सुनाई पड़ते थे। वही महेन्द्र, कात्यायनी, कामाख्यानाथ, अदृष्ट, नियति, विधिलिपि आदि। बीचमें केवल एक बार वे कुछ जोरसे बोल उठे थे कि ओह! क्या वह इतना बलवान् है? क्या किसी प्रकार उसका उलंघन हो ही नहीं सकता? होगा, अवश्य होगा।

कामाख्यानाथने समझ लिया कि ज्योतिरत्न जन्मभर जिस विषयकी चिन्ता और आलोचना करते रहे हैं वह विषय मृत्युके समय भी उनका पीछा नहीं छोड़ रहा है। जन्म भरका किया हुआ काम उनके निष्प्रभ मस्तिष्कमें अब भी चक्कर लगा रहा है और मृत्युके समय भी उन्हें चैन नहीं लेने देता। इससे कामाख्यानाथको बहुत मनस्ताप हुआ और वे चुपचाप ज्योतिरत्नके मुँहकी ओर देखते हुए बैठे रहे।

रात्रि गम्भीर हो चली और पृथ्वी निस्पन्द हो गई। उस अँधेरे मकानके छोटे आँगनमें एक दीपक छोटे तारेके समान टिमटिमा रहा है

ज्योतिरत्न बहुत देरसे श्रान्त होकर सोए हुए हैं और घरके बाकी सब लोग बैठे जाग रहे हैं। कविराज महाशय बराबर रोगीकी नाड़ी देख रहे हैं। ब्राह्मणी चुपचाप अपने स्वामीके पैरोंके पास पड़ी हुई है। पास ही भीतिविह्वल पत्थरकी मूरतकी तरह निश्चेष्ट और निर्वाक् रमा बैठी हुई है। मुमूर्षुके मुखके पास एक ओर कात्यायनी और दूसरी ओर कुछ दूरीपर बैठे हुए कामाख्यानाथ टक लगाए हुए ज्योतिरत्नके मुखके भावोंके परिवर्तन ध्यानपूर्वक देख रहे हैं।

सहसा रोगीकी अवस्था चरम सीमापर जा पहुँची। कविराजने कहा—अब देर नहीं है। अन्त कालके जो कुछ विधान हैं वे सब किए जायँ।

जब सभी लोग चुपचाप बठे रहे तब अन्तमें विवश होकर कामाख्यानाथ उठकर खड़े हो गए और निरंजनके द्वारा उन्होंने सब व्यवस्था कराई। बहुत धीरेसे मुमूर्षुको लोग उठाकर बाहर आँगनमें लाए और वहीं तुलसीके थालेके पास लेटा दिया। किसीने गंगातटपर ले चलकर अर्घ्योदक देनेके लिए कहा। परन्तु कामाख्यानाथने कहा कि यदि ज्ञानकी अवस्थामें उन्होंने ऐसा करनेके लिए कहा होता, तब तो ऐसा करना ठीक था। और नहीं तो यह सिवा इन्हें और अधिक कष्ट देनेके और कुछ नहीं है। आखिर यह भी तो गंगाका तट ही है।

थोड़ी देर बाद ऐसा जान पड़ा कि ज्योतिरत्नके शरीरमें बिजली दौड़ गई। उन्होंने बहुत ही स्पष्ट स्वरमें पुकारा—कहाँ हो बेटी कात्यायनी, हमारे पास आओ।

आवाज सुनते ही सब लोग चौंक पड़े। कात्यायनी पास ही बैठी हुई थी। पिताका पुकारना सुनते ही वह अधीर हो गई और उनके मुँहके

पास पहुँचकर दोनों हाथ उनके गलेमें डालकर जोरसे चिल्ला उठी—बाबूजी बाबूजी

कामाख्यानाथने किसी तरह उसे पकड़कर सँभालते हुए कहा—हें कात्यायनी ! यह क्या कर रही हो ? ठहरो ठहरो, जरा ठहरो । धीरज धरो । इस समय उन्हें और अधिक कष्ट मत दो ।

ज्यो०—कौन, कामाख्यानाथ ?

कामा०—जी हाँ, मैं हूँ । आप ईश्वरका नाम लें, भगवानको याद करें । कहिए—नारायण परावेदा नारायण—।

ज्यो०—कहता हूँ । ओह ! कैसी तीव्र ज्योति दिखलाई देती है ! यही मेरी कात्यायनीका भाग्यनियामक नक्षत्र है । प्रसन्न होओ । मैं अन्धा और मूढ़ हूँ । अब मैं तुम्हारे विरुद्ध युद्ध नहीं करूँगा । कामाख्यानाथ, यह लो, कात्यायनीको मैं तुम्हारे हाथमें सौंपता हूँ । अब कहो क्या कहूँ—चलो, मुझे गंगातटपर ले चलो और अर्घ्योदक दो । कहो—नारायण परावेदा नारायण पराक्षरा, नारायण परामुक्ति नारायण परागति । ओम् नारायण—ओम् ।

इतना कहते कहते आत्मा शरीरसे मुक्त हो गई ।

* * * *

यथासमय कात्यायनीने ज्योतिरत्नका श्राद्ध आदि किया । महेन्द्र केवल पालित पुत्र था, इसलिए शास्त्रके अनुसार वह इन सब कर्मोंका अधिकारी नहीं था । धीरे धीरे दिन बीतने लगे । अब महेन्द्र प्रायः दिन रात घरपर ही रहा करता था । वह ब्राह्मणीके पास रहकर सब कार्योंमें कात्यायनीकी सहायता किया करता था । कामाख्यानाथ नित्य आकर इन लोगोंका हाल चाल पूछ जाया करते थे । सन्ध्याको

जब मन्दिरमें आरती हो जाती थी तब वे अपनी कन्या रमाके साथ आया करते थे और ब्राह्मणीको प्रणाम कर जाया करते थे। यद्यपि कात्यायनीसे मिलनेकी रमाकी बहुत अधिक इच्छा रहती थी, पर महेन्द्र दिन भर घरमें रहा करता था इसलिए वह नहीं आ सकती थी। केवल सन्ध्या समय अपने पिताके साथ आया करती थी और कात्यायनीके पास थोड़ी देर तक बैठा करती थी। इसी तरह कुछ दिन बीतनेके बाद कामाख्यानाथने महेन्द्रसे कहा—जो स्वयं ही बहुत दुःखी हो उसे दिन-रात ऐसे लोगोंके साथ नहीं रहना चाहिए जो शोकार्त्त हों। इससे शरीर और मन दोनों ही बहुत निस्तेज हो जाते हैं। ये लोग स्त्रियाँ ठहरीं। यदि ये शोक न करें तो इन्हें शान्ति नहीं मिल सकती। पर तुम पुरुष हो। तुम्हें जन्म भर काम धन्धा करना है और काम धन्धेमें लगनेसे ही आदमीका सब सन्ताप दूर हो जाता है। तुम्हारा अत्र अधिक समय तक इस प्रकार इन लोगोंके साथ रहना ठीक नहीं है। तुम बीच बीचमें बाहर निकला करो। मैं देखता हूँ कि तुम्हारा शरीर भी दिन-पर दिन खराब होता जाता है।

महेन्द्रने कोई उत्तर नहीं दिया।

इसके बाद निरंजनने दो तीन दिन आकर महेन्द्रसे बाहर चलनेके लिए कहा, पर उस शोकाच्छन्न घरसे बाहर निकालनेमें उसे सफलता नहीं हुई। अन्तमें एक दिन ब्राह्मणीने महेन्द्रसे कहा—बेटा, अब तुम इस तरह घरमें मत रहा करो। इस तरह रहनेसे तुम्हारा शरीर कहाँ तक चलेगा।

महे०—जब तक चले। अब ज्यादा दिन रहकर क्या होगा?

ब्रा०—छीः बेटा, तुम्हारे मुँहसे इस तरहकी बातें अच्छी नहीं लगतीं। क्या तुम नहीं जानते कि हम माँ बेटीको केवल तुम्हारा ही भरोसा है?

महे०—नहीं माँ, भगवानने कात्यायनीको—तुम लोगोंको बहुत अच्छा सहायक दिया है। मैं तो तुम लोगोंके किसी काम न आ सकूँगा। मेरे किए और कुछ तो होगा ही नहीं। बस यही है कि ऐसे समयमें जरा तुम लोगोंके पास रह लूँ। देखो माँ, अब तुम इससे भी वंचित करके मुझे दूर मत हटाओ।

ब्रा०—अरे बेटा, तुम ऐसी बात कहते हो! भला मैं तुमको दूर भगाऊँगी? क्या तुम नहीं जानते—

इतना कहते कहते ब्राह्मणीका गला भर आया और रुलाई आने लगी। महेन्द्र बालकोंकी तरह उसके पैरोंसे लपट गया।

महे०—माँ, तुम मुझे क्षमा करो। हाय! मैं ऐसा अभागा हूँ कि तुमपर भी अविश्वास करता हूँ।

पहले तो ब्राह्मणी कुछ देर तक रोती रही, पर महेन्द्रको बहुत अधिक कातर देखकर अन्तमें वह स्वयं ही शान्त हुई। उसने कहा—देखो बेटा महेन्द्र, अब आगेसे तुम कभी ऐसी बात मत कहना। मेरे मनमें अब और कोई बात नहीं है। अब उस आशाको मैं मनसे बिलकुल निकाल ही देना चाहती हूँ। तुम अब सत्रह बरस पहलेके वही महेन्द्र हो जिसे मैं अपने पेटका जनमा हुआ लड़का बतलाया करती थी। अब तुमसे भी मैं उसी तरहकी प्रत्याशा करती हूँ। जो बात हुई नहीं और अब हो भी नहीं सकती, उसकी चिन्ता मैं छोड़ देती हूँ। पर अब मैं चाहती हूँ कि तुम्हारा ब्याह करके बहूका मुँह देखूँ और तुम्हारे बच्चोंको गोदमें खेलाकर अपना यह दुःख भूलूँ। कात्यायनीके भाग्यमें जो कुछ बदा होगा वह होगा। पर उसके साथ साथ मैं तुम्हारा जीवन इस प्रकार नष्ट नहीं करना चाहती। अब तुम

उठो और कामाख्यानाथके पास जाओ। तुमने जो काम हाथमें लिया है उसीमें मन लगाओ और अपनी उन्नति करो। लड़कोंको इस तरह नहीं रहना चाहिए। अब मैं तुम्हारा व्याह करके और तुम्हारी गृहस्थी देखकर ही स्थिर होऊँगी। मैं तुम्हारी माँ हूँ और केवल तुम्हारा मँगल चाहती हूँ। अच्छा, अब उठो, चलो।

महेन्द्रने कोई प्रतिवाद नहीं किया। वह सिर झुकाकर चुपचाप कामाख्यानाथके मकानकी ओर चल पड़ा। जब कामाख्यानाथने देखा कि महेन्द्र किसी काममें मन लगाना चाहता है तब उन्होंने बहुत सन्तोष प्रकट किया। उस दिन दोपहरके समय रमा कात्यायनीके पास गई। कात्यायनीकी माँ दुःखित भावसे लेटी हुई थी। उसके पैरोंके पास बैठकर कात्यायनी कह रही थी—खाली महेन्द्रके सँभालनेसे तो काम चलेगा नहीं, साथ साथ तुम्हें भी सँभलना चाहिए। जब तक तुम साहस नहीं करोगी तबतक उसमें भी साहस नहीं आवेगा।

ब्राह्मणीने कोमल स्वरसे कहा—तुम जो कुछ कहती और समझाती हो वह तो मैं भी समझती हूँ। अब बतलाओ बेटी, मैं और क्या करूँ?

कात्या०—यदि महेन्द्र आकर देखेगा कि तुम इसी तरह चुपचाप पड़ी हो तो वह समझेगा कि उसे तुम जो कुछ समझाती बुझाती हो, वह सब जबानी है। यदि तुम्हारा शेष जीवन सचमुच उसीपर निर्भर करता है, तब तुम्हें अपने कार्यों और व्यवहारोंसे उसे अच्छी तरह जतला देना चाहिए। जबानी कहनेसे काम नहीं चलेगा।

माताने कुछ चिन्तित होकर कहा—आज तो मैंने जबरदस्ती उसे काम करनेके लिए भेजा है। बेटी, अभी तक उसका मन अच्छी तरह ठिकाने नहीं आया है। उसे सिर्फ एक ही दुःख नहीं है। उसे—

इतना कहते कहते माताने देखा कि कात्यायनीके मुखपर कुछ अप्रसन्नता प्रकट हो रही है, इसलिए उसने ठंढी साँस लेकर चुप होनेसे पहले अस्पष्ट स्वरमें फिर कहा—मैंने जो उसे जबरदस्ती यहाँसे भेजा है सो वह समझता होगा कि मेरे मनमें उसके लिए स्नेह नहीं है। वह सोचता होगा कि यदि मेरी अपनी माँ होती, तो वह क्यों मुझे इस तरह घरसे निकालती। शरीर ठीक नहीं है—

कात्यायनीने कुछ अप्रसन्न होकर कहा—माँ, तुम्हारा यह सब सोचना बिलकुल व्यर्थ है। इन्हीं सब बातोंसे तो उसका शरीर और भी खराब होता जाता है। तुमने जो कुछ किया है वह ठीक ही किया है। बाबूजी कहा करते थे कि संसारमें अपना दुःख बढ़ानेसे बढ़कर अन्याय और कुछ नहीं है। हम लोगोंने अपने दुःखसे उन लोगोंको आजतक कितना अधिक कष्ट दिया है? ये लोग जिनका उपकार करने जायँगे वे सभी यदि उन्हें इतना अधिक कष्ट देंगे तो फिर संसारमें कोई किसीके साथ उपकार करनेकी इच्छा न करेगा। इसलिए सबसे अच्छा यही है कि तुम स्वयं ही बलिष्ठ हो। शोक और दुःख क्या बाहर प्रकट करनेकी चीज़ है? और क्या किसी दूसरेके सान्त्वना देनेसे उसमें उससे कोई कमी बेशी हो सकती है? तब क्यों व्यर्थ दूसरोंको इतना कष्ट दिया जाय?

माताने कात्यायनीको इस बातका कोई उत्तर नहीं दिया। रमा अब तक चुपचाप बैठी सब बातें सुन रही थी। कात्यायनीकी किसी बातमें उसने बाधा नहीं दी थी। जब कात्यायनीकी बात समाप्त हो गई तब उसने बहुत ही धीर और शान्त स्वरमें कहा—शोक और दुःखमें सान्त्वना देनेकी शक्ति तो संसार भरमें एक ईश्वरको ही है। उसे छोड़कर और कोई मनुष्यको सान्त्वना नहीं दे सकता। पर कात्यायनी, मनुष्यको उन्होंने बस यही तो एक काम दिया है। यदि मनुष्य कुछ कर सकता

है तो केवल यही कि वह औरोंके लिए थोड़ा बहुत दुखी हो सकता है। केवल मनुष्य ही क्यों कदाचित् प्राणीमात्र दूसरोंके दुःखसे कुछ दुखी होते हैं। यह गुण पशु पक्षियों तकमें देखा जाता है। एकको विपत्तिमें देखकर और सब पक्षी भी अस्थिर हो जाते हैं। यदि तुम्हारे लिए कोई कुछ दुखी हो, तो इसके लिए तुम क्यों दूनी दुःखित तथा चिन्तित होती हो? और कात्यायनी दूसरोंके उपकारकी जो बात तुमने कही, वह भी ठीक नहीं है। हम ऐसे लोगोंकी विपत्तिकी बात भी तो नित्य ही सुना करते हैं जिनके साथ हमारा कभीका कोई परिचय नहीं होता। उस समय कौन किसके लिए चिन्ता करता और दुखी होता है? वे लोग अपने नहीं जान पड़ते, इसी लिए कोई उनके वास्ते उँगली भी नहीं हिलाता।

कात्यायनीकी माँने सजल नेत्रोंसे रमाकी ओर देखते हुए स्नेहपूर्ण स्वरमें कहा—बेटी, गाँव भरमें सभी लोग तुम्हारी दयाका हाल जानते हैं। हम लोग तो यहाँ नई आई हैं। हम अधिक नहीं जानतीं। पर छोटे बड़े सबके मुँहसे तुम्हारे बाबूजीके जो गुण मैं सुना करती हूँ—

रमा—क्या इस गाँवके लोग बाबूजीके लिए पराए हैं? वे सब लोग तो हमारे अपने ही हैं। लेकिन इन लोगोंके सिवा संसारमें और भी तो बहुतसे लोग हैं जिन्हें अनेक प्रकारकी आवश्यकताएँ होतीं हैं और जिन-पर अनेक प्रकारके कष्ट पड़ते हैं। आप ही बतलाइए कि कौन उन्हें देखने जाता है और कौन उनके दुःखमें सान्त्वना प्रकट करता है? बाबूजी कहा करते हैं कि इसी प्रकार और भी बहुतसे अच्छे आदमी हैं जो सदा लोगोंके कष्टके समय काम आते हैं। परन्तु मेरे मनमें यह बात बैठती ही नहीं। मैं सोचती हूँ कि आदमीमें इतनी शक्ति ही नहीं है कि वह किसीको कुछ शान्ति दे सके। भला आदमामें इतना सामर्थ्य कहाँ?

ब्राह्मणीने शोकपूर्ण स्वरमें उत्तर दिया,—रमा इस संसारमें शान्ति कहीं है भी ? मैंने तो इतनी उमरमें कभी कहीं किसीको शान्तिपूर्वक रहते नहीं देखा। जो चीज संसारमें कहीं है ही नहीं—वह भला कोई किसीको क्या देगा और कहाँसे देगा ?

रमाने सिर झुकाकर उत्तर दिया—आप ऐसी बात न कहें। यदि यह बात होती तो फिर संसारमें शान्ति शब्द ही न रहता। परन्तु वह आदमीके हाथकी चीज नहीं है, इसी लिए कोई किसीको शान्ति नहीं दे सकता। संसारमें जिसे कोई देखने सुननेवाला नहीं है, जिसका कहीं कोई आत्मीय स्वजन या बन्धु बान्धव नहीं है, उनकी ओर भी जो परमात्मा समदृष्टिसे देखते हैं और उनको भी उस शान्तिसे जो वंचित नहीं रखते, जब तक उसी परमात्माके हाथसे शान्ति न मिले तब तक और कहीं या किसी प्रकारसे शान्ति नहीं मिल सकती।

ब्राह्मणीने स्नेह और श्रद्धासे मिश्रित स्वरमें कहा—हाँ बेटी, मैं भी यह बात अच्छी तरह जानती हूँ। और यह भी जानती हूँ कि तुम्हारे घरके सब लोग भी ऐसा ही करते हैं। जिसका कहीं कोई नहीं होता, उसे भी तुम्हारे घरके लोग देखते सुनते हैं और उस शान्तिमयके हाथसे मिलनेवाली शान्तिमें बहुत कुछ दखल देते हैं।

रमाकी आँखोंमें जल भर आया। उन्हीं सजल आँखोंसे उसने ब्राह्मणीके पैरोंकी ओर देखते हुए कहा—कहाँकी बात ? पृथ्वीपर असंख्य दुःख सुने जाते हैं। पर आप ही बतलाइए कि उनमेंसे कितने दुःख हमारे कानों तक पहुँचते हैं ? बाबूजी जो इतना ढूँढ़ते हैं वे क्या उन-मेंके एक अंशका भी पता लगा पाते हैं ? सारी पृथ्वीमें हमारे इस छोटेसे गाँवका स्थान ही क्या है, इसमें आदमी ही कितने बसते हैं, इन लोगोंके अभाव और दुःख ही कितने हैं, और जो हैं भी उनका क्या

सबको पता लगता है ? जब मैं पहले बाबूजीके मुँहसे लोगोंके कष्टोंकी बातें सुना करती थी तब सोचती थी कि कौन इन लोगोंकी खोज खबर लेता है, इन लोगोंकी क्या दशा होती है ? बहुत सोचते सोचते अब मुझे मालूम हुआ है कि इन लोगोंको देखनेवाला एक ऐसा भी है जिसके रहते हुए संसारमें फिर और किसी देखने सुननेवालेके रहनेकी आवश्यकता नहीं होती। किसीका दुःख ऐसा नहीं है जो उसे न दिखाई देता हो।

ब्रा०—लेकिन फिर भी बेटी, तुम्हारे जैसे लोगोंकी इस संसारमें नित्य ही आवश्यकता हुआ करती है। यदि यह बात न होती, तो तुम्हारे जैसी लड़कीको कोई क्यों किसीके दुःखों और कष्टोंका भागी बनानेके लिए भेजता ?

रमाने कुछ लज्जित होकर उत्तर दिया—आप ऐसी बात क्यों कहती हैं। बाबूजी तो आप ही मुझे किसीके दुःख या कष्टके स्थानमें नहीं भेजते। लेकिन आप लोगोंको तो हम लोग स्वयं अपना ही समझते हैं। बाबूजी दूसरोंके लिए व्याकुल हो सकते हैं, पर मैं तो दूसरोंके लिए व्याकुल नहीं हो सकती। जो लोग हमारे घरपर जाते हैं उनको छोड़-कर और जो लोग गाँवमें रहते हैं उनको तो मैं जानती भी नहीं। परन्तु आप हम लोगोंको पराया समझकर क्यों कष्ट देती हैं ?

ब्राह्मणीने इस बातका कोई उत्तर नहीं दिया। वह कुछ तो लज्जित होकर और कुछ स्नेहपूर्वक बालिकाके मस्तकपर हाथ फेरने लगी।

कात्यायनी अब तक बिलकुल चुप बैठी थी। अब उसने कोमल स्वरसे कहा—माँ, आज सन्ध्याको तुम रमाके साथ मन्दिरमें जाओगी ?

माँने कुछ इधर उधर करके कहा—मन्दिरमें ? नहीं।

कात्या०—क्यों, चली क्यों नहीं जातीं? वहाँ रमाके साथ बात चीत करोगी, आरती देखोगी, तो जरा मन बहल जायगा।

रमाने कात्यायनीकी ओर देखकर पूछा—और तुम?

कात्यायनीने केवल सिर हिलाकर अस्वीकृति प्रकट की। रमाने फिर पूछा—क्यों?

का०—मुझे यहीं कुछ काम है।

रमाने ब्राह्मणीके मुखकी ओर देखा। उसने कहा—इसे अभी अपने बाबूजीके सब कागज पत्र और पोथी पत्रे आदि ठीक करके रखने हैं। घरकी सफाई करना है, धूप धूनी देना है।

इतना कहते कहते ब्राह्मणीका गला भर आया। रमाने भी सिर झुका लिया।

थोड़ी देर बाद कात्यायनीने कहा—माँ, जब तक तुम प्रसाद नहीं ले लोगी, तब तक महेन्द्र भी कुछ नहीं खायगा। इसलिए अब रसोईका इन्तजाम करना होगा। मैंने सोचा था कि तुम चुपचाप यहाँ अकेली पड़ी रहोगी, इसी लिए मैंने तुमसे रमाके साथ मन्दिर जानेके लिए कहा था।

ब्रा०—मैं यहीं अच्छी तरह रहूँगी। तुम अपने काममें लगो।

जब कात्यायनी वहाँसे उठकर चलने लगी, तब ब्राह्मणीने उसकी ओर स्थिर दृष्टिसे देखकर ठंढी साँस लेते हुए अस्फुट स्वरमें कहा—अब वह तो हैं ही नहीं कि महेन्द्र उनकी सेवा करे, इसलिए वह सदा हम ही लोगोंकी चिन्तासे व्याकुल रहता है। तुम्हें तो हम लोगोंकी चिन्ता रहती है, पर तुम्हारी चिन्ता कौन करता है? हाय, मैं भी तेरी कैसी पत्थरकी माँ हूँ। मुझे तो अब बहुत दिन तक जीना नहीं है। और

महेन्द्र मरद मानुस ठहरा। पर तेरा क्या होगा? तू किस तरह अपने दिन बितावेगी? मेरी समझमें नहीं आता कि भगवान् तेरी क्या दशा करेंगे।

इतना कहते कहते ब्राह्मणीका गला और आँखें भर आईं और वह अपने आपको सँभालने लगी। रमा भी उसी प्रकार चुपचाप सिर झुकाए बैठी रही; परन्तु वृद्धा ब्राह्मणीकी आँखोंमें जो आँसूकी बूँदें आ गईं थीं, उन्होंने रमाको कुछ देखने सुनने नहीं दिया और आप ही आप उसके नेत्रोंमें बहुत सा जल लाकर उपस्थित कर दिया।

पाँचवाँ परिच्छेद।

विचित्र प्रकृतिकी सृष्टिमें जो कुछ है वह यही मनुष्य है। जिस नियमकी धारामें अणुओं और परमाणुओंसे लेकर ग्रहों और नक्षत्रों तक सभी एक स्रोतमें बहे चले जाते हैं, वह प्रचंड शक्तिका स्रोत मानो इसी मनुष्यके पास आकर रुक जाता है। विश्वके नियंत्रित किए हुए सभी नियम उसके सामने आकर अनियमित हो जाते हैं। वह जब चलेगा तब स्वयं अपने ही बनाए हुए नियमके अनुसार चलेगा, नहीं तो उसका सन्तोष नहीं होगा। चाहे वह नियम स्वयं उसके पैरोंकी बेड़ीके रूपमें हो अथवा सब प्रकारकी बाधाओं और बन्धनोंको दूर करनेवाली शक्तिके रूपमें हो; पर मनुष्य सदा यही चाहता है कि अपने जीवन मरण और गति अगतिका मार्ग मैं स्वयं ही बनाऊँ और मनुष्य जब तक अच्छी तरह न समझने लगेगा तब तक उसका यह क्रम कभी रुकेगा ही नहीं। चाहे शिवजीकी मूर्ति बनाते बनाते बन्दरकी शक्ल ही क्यों न बन जाय और चाहे प्राण लानेके

प्रयत्नमें मृत्युका आवाहन ही क्यों न हो जाय; परन्तु मनुष्यमें जो अहंभाव भरा हुआ है वह अपनी केलेकी डोंगीसे इस विश्व-शक्तिके उत्ताल सागरको पार कर जाना चाहता है। पद पद पर प्रतिकूल तरंगें उठती हैं, विपरीतमुख प्रचंड वायु बहती है, परन्तु फिर भी वह अपने चित्तरूपी पाल, इच्छारूपी डाँड़ों और बुद्धिरूपी पतवारके बलपर विश्वकी प्रचंड प्रतिकूलताको सदा अपने अनुकूल बनानेकी चेष्टा करता रहता है। मानो यह सागर उसे किसी प्रकार डुबा ही नहीं सकता और उसकी विद्रोहिणी क्षुद्र शक्तिका किसी प्रकार पराजय हो ही नहीं सकता। यद्यपि महा शक्तिमयी विश्व प्रकृतिमें अघटित बातें भी सहजमें घटित हो जाती हैं तथापि ऐसा जान पड़ता है कि मनुष्यके सामने आकर वह भी समय समय पर अपनी शक्ति खर्व कर देती है। ऐसा जान पड़ता है कि उसकी समझमें भी नहीं आता कि इस अबोध शिशुके साथ कैसा व्यवहार किया जाय। इसी लिए वह उसे शान्त रखनेके विचारसे अनेक प्रकारसे अपने आपको असमर्थ बनाकर इस क्षुद्र शिशुको भुलाए रखना चाहती हैं। पौरुष ही पुरुषकी शक्ति है। उसी पौरुषने उसकी आँखोंके सामने एक ऐसा अहं-कार खड़ा कर रक्खा है कि वह इस युद्धमें किसी प्रकार पीछे हटना ही नहीं चाहता। जिस प्रकार कोई शिशु बलपूर्वक अपनी माताको हराकर अपने आपको विजयी समझता हुआ अहंकार करता है, मनुष्यका यह युद्ध और यह विजय मानो उसीका एक अभिनय है। यह बात नहीं है कि मनुष्य यह न जानता हो कि मुझे यह युद्ध किसके साथ करना पड़ रहा है। वह जानता, मानता और समझता हुआ भी अपनी शक्तिके मोहमें पड़ा रहता है और समय समय पर इस प्रकार अन्धा बन जाता है। बस यही मनुष्यकी विचित्रता है।

कामाख्यानाथने बहुत कुछ सोच विचारकर अन्तमें यही स्थिर किया कि कात्यायनीका विवाह कर देना चाहिए। संसारमें कात्यायनीका कोई ऐसा आत्मीय नहीं था जिसपर निर्भर रहकर वह अपने थोड़ेसे बीते हुए जीवनके बाकी बहुतसे दिन सुखपूर्वक बिता सकती। महेन्द्र उसके भाईकी जगह अवश्य था; परन्तु संसारमें प्रायः होनेवाली बहुतसी बातोंसे भी कामाख्यानाथ भली भाँति परिचित थे। कौन कह सकता है कि आगे चलकर किसी समय महेन्द्र स्वयं अपने ही बाल बच्चोंकी चिन्तामें पड़कर कात्यायनीको जीका जंजाल न समझने लगेगा? एक वृद्धा माताको छोड़कर कात्यायनीका और कोई आत्मीय नहीं था। कामाख्यानाथ सोचते थे कि पहलेसे ही समझ बूझकर यह स्थिर करना चाहिए कि जब वह वृद्धा भी इस संसारसे चली जायगी तब इस अनूढा ब्राह्मण-कन्याकी क्या दशा होगी और इसे कौन सँभालेगा। जिस महेन्द्रके साथ पहले विवाहकी बात चीत हो रही थी, उसी नवयुवक महेन्द्रपर ऐसी अविवाहिता सुन्दरी कन्याका भार छोड़ना भी उन्हें उचित नहीं जान पड़ता था। अब बिना महेन्द्रके साथ उसका विवाह किए और किसी प्रकार वह उसके पास रखी ही नहीं जा सकती थी। उधर मरते समय तक उसके पिता बार बार इस विवाहके लिए इतना अधिक निषेध करते थे कि किसीको उसके विपरीत आचरण करने अथवा कहने सुननेका साहस ही नहीं हो सकता था। कौन कह सकता था कि भविष्यमें इसका कैसा फल होगा। वे सोचते थे कि महेन्द्र, ब्राह्मणी या कात्यायनीमेंसे एक भी इस विवाहके लिए सहमत न होगा। पर साथ ही वे यह भी सोचते थे कि यदि किसी प्रकार सब कठिनाइयाँ दूर हो सकती हैं, तो वह केवल महेन्द्र और कात्यायनीका विवाह होनेसे ही हो सकती हैं। लेकिन यह तो किसी प्रकार हो नहीं सकता, इस लिए अब यही

कर्तव्य बच रहा है कि किसी अच्छे ज्योतिषीको कात्यायनीकी जन्मपत्री दिखलाकर उसके अनुरूप किसी सुपात्रके साथ उसका विवाह कर देना चाहिए। ज्योतिरत्नने भी मरते समय एक बार कहा था कि कात्यायनीके विवाहका एक मात्र उपाय है! शायद उनके कहनेका अभिप्राय यही था कि किसी योग्य वरके साथ इसका विवाह कर दिया जाय। ज्योतिष शास्त्रके अनुसार जो सुपात्र ठहरता हो, उसे अपनी कन्या तो वह देना ही चाहते थे। परन्तु उन्हें कोई ऐसा सुपात्र मिला नहीं था, इसी लिए उन्होंने उसका विवाह नहीं किया था। मरते समय कदाचित् वे यह नहीं चाहते थे कि किसी दूसरेपर बहुत अधिक भार डाला जाय। सम्भवतः इसी लिए वे कह गए थे कि मेरी लड़की कुँआरी ही रहने दी जाय, उसका विवाह न किया जाय। और नहीं तो कन्याका विवाह तो वे अवश्य करना चाहते थे। यह ठीक है कि स्वर्गीय ज्योतिरत्नके मनका पात्र सहजमें नहीं मिलेगा; लेकिन यह भी तो नहीं माना जा सकता कि वैसा पात्र संसारमें मिलेगा ही नहीं। वैसा पात्र ढूँढ़ निकालनेके लिए कामाख्यानाथ पूरी पूरी चेष्टा, यथेष्ट व्यय और आवश्यक परिश्रम करनेके लिए तयार हुए। उन्होंने सोचा कि चाहे जैसे हो, कात्यायनीके लिए एक उपयुक्त पात्र ढूँढ़ ही निकालना चाहिए। उसे इस प्रकार निस्सहाय अवस्थामें छोड़ देना किसी प्रकार शास्त्रसम्मत या युक्तिसंगत नहीं है।

कामाख्यानाथने एक एक करके ये सब बातें महेन्द्रको अच्छी तरह समझा दीं और अन्तमें कहा कि इस प्रकार तुम्हारे सिरसे भी एक बहुत बड़ा भार उतर जायगा। और नहीं तो फिर तुम्हें भी जन्म भर एक बहुत बड़ी चिन्ताकी अशान्ति सहनी पड़ेगी। क्या उसकी अपेक्षा यह मार्ग ठीक नहीं है? तुम अच्छी तरह सोच समझ देखो।

महेन्द्रने दृढ़ स्वरमें उत्तर दिया—आप मेरी अशान्ति या चिन्ताकी बात छोड़ दें। आप जिसके विषयमें यह समझ रहे हैं कि वह मेरे लिए भारस्वरूप होंगी, उनमेंसे एक तो मेरे लिए गर्भधारिणी मातासे भी बढ़कर हैं और कात्यायनी उन्हींकी लड़की है। अतः आपको इस बातकी जरा भी आशंका नहीं होनी चाहिए कि वे लोग मेरे लिए भार-स्वरूप होंगी। मैं जो कुछ कहता हूँ उसे आप बिलकुल ठीक और निश्चित समझें।

कामा०—खैर, मैंने मान लिया कि तुम जो कुछ कहते हो वह बिलकुल ठीक है। पर साथ ही मैंने जो और बातें कही हैं, उनपर भी तो तुम्हें विचार करना चाहिए।

महे०—यही न कि यदि माँका जल्दी शरीरान्त हो गया तो क्या होगा? उस दशामें यदि मैं उनकी कन्याके रक्षणावेक्षणके लिए उप-युक्त न समझा जाऊँ तो आप तो हैं ही। पिताजी आपपर विशेष रूपसे सब भार छोड़ ही गए हैं। आप ही उसकी देख रेख कीजिएगा।

कामा०—परन्तु महेन्द्र, तुम यह बात भूले जा रहे हो कि आखिर मैं पराया हूँ। उन लोगोंका अपना नहीं हूँ। क्या यह बात समझते हुए वे लोग सदा मुझपर ही निर्भर रहेंगी और यदि वे किसी प्रकार मुझपर निर्भर रहें भी, तो मेरा यह कर्त्तव्य नहीं है। क्योंकि कोई यह नहीं कह सकता कि यह जीवन कब तक रहेगा और कब इसका अन्त हो जायगा। तुम्हें यह भी समझना चाहिए कि इस समय मेरी अवस्था अधिक हो चली है और उस बालिकाका अभी बहुतसा जीवन बाकी है। मैं कब तक उसकी देख-रेख करता रहूँगा। और फिर विशेषतः ऐसी अवस्थामें जब कि ज्योतिरत्नजी उसका सारा भार मुझ-पर ही छोड़ गए हैं, जब उसके भले बुरेके लिए धर्मके सामने मुझको

ही उत्तरदायी बना गए हैं तो इस बातके लिए भी चेष्टा करना भी मेरा कर्तव्य है कि जिसमें उसका जीवन व्यर्थ नष्ट न हो। तुम्हीं उसके आत्मीय अभिभावक और सब कुछ हो। मेरी सब बातोंपर तुम अच्छी तरह विचार कर लो और तब अपना कर्तव्य स्थिर करो।

महे०—यह तो आप अच्छी तरह जानते ही हैं कि पिताजी ज्योतिषशास्त्रके असाधारण पंडित थे। वे जब अपनी कन्याके विवाहके लिए इतना मना कर गए हैं तो फिर क्या और किसीका इसके लिए चेष्टा करना उचित है? शायद उन्होंने कोई ऐसी अभ्रान्त दृष्टि पाई थी जिससे वे यह समझते थे कि कन्याका विवाह नहीं करना चाहिए।

कामा०—लेकिन यह बात समझमें नहीं आती कि ऐसी अभ्रान्त दृष्टि विधाताको छोड़कर मनुष्यको भी हो सकती है। कौन कह सकता है कि वे यहीं आकर विशेष रूपसे भ्रान्त न हो गए हों और उन्होंने अपनी कन्याके सामान्य दुष्ट ग्रहोंको ही बहुत बड़ा न बना लिया हो या केवल उसी भ्रमसे ही अपना सारा जीवन न ढँक रक्खा हो? मनुष्य ऐसी ही जगह आकर सबसे अधिक भ्रान्त होता है। कोई कितना ही बड़ा विद्वान्, ज्ञानी या अभ्रान्तदर्शी क्यों न हो परन्तु सन्तानके लिए होनेवाली प्राकृतिक स्नेहशंका उसे सहजमें विचलित कर देती है। इसी लिए चिकित्साशास्त्रमें आत्मीयजनोंकी चिकित्सा करनेका निषेध है। आज यदि कात्यायनी किसी प्रकार तुम्हारे हाथ सौंपी जा सकती, तो कहीं कोई झगड़ा ही न रह जाता; किन्तु अब तो मैं इसका साहस ही नहीं कर सकता। वे एक ऐसे कठिन बन्धनसे हम सब लोगोंको बाँध गए हैं कि उसका उल्लंघन ही नहीं हो सकता। सम्भव है कि यह भी उनका एक भ्रम ही हो; पर अब तो इसके विपरीत कुछ हो ही नहीं सकता।

पहले कुछ देर तक महेन्द्र चुपचाप सिर झुकाए खड़ा रहा । फिर उसने इस प्रकार सिर उठाया मानो वह कामाख्यानाथसे कुछ कहना चाहता हो । पर न जाने क्या सोचकर उसने चुपचाप फिर पहलेकी तरह ही सिर झुका लिया ।

कामाख्यानाथने कहा—तुम जो कुछ कहना चाहते हो वह कहो न । तुम्हीं तो उसके एक मात्र आत्मीय हो ।

महे०—नहीं, कुछ नहीं । क्या आप उन लोगोंसे भी ये सब बातें कहेंगे ?

कामा०—यदि तुम चाहो तो मैं कह क्यों नहीं सकता हूँ । क्योंकि बिना माँकी आज्ञाके तो कुछ होगा ही नहीं ।

दूसरे दिन प्रातःकाल कामाख्यानाथने जाकर कात्यायनीकी माँके सामने यही प्रसंग उपस्थित किया ।

ब्राह्मणीने कहा—हाँ, कल महेन्द्रने इस विषयमें मुझसे दो एक बातें कही थीं । मैं एक साधारण स्त्री ठहरी, न मुझे बुद्धि है और न ज्ञान । मैं तो इस समय अच्छी तरह यह भी सोच समझ नहीं सकती कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए । वे कात्यायनीका सारा भार तुम्हींपर छोड़ गए हैं । तुम धार्मिक और ज्ञानी हो । जो तुम्हारी समझमें ठीक जान पड़े, वही करो । वे तुमपर देवताओंके समान विश्वास रखते थे । तुम जो कुछ करोगे उससे वे स्वर्गमें भी असन्तुष्ट न होंगे । तुम महेन्द्र और कात्यायनी दोनोंकी जन्मपत्रियाँ एक बार फिर किसी अच्छे ज्योतिषीको दिखलाओ । यदि किसी प्रकार इनका मेल मिल जाय तो मैं समझूँगी कि मेरे जीवनमें अब भी शान्तिकी कुछ आशा है ।

कामाख्यानाथने कुछ सोचकर कहा—यदि आपकी यही इच्छा हो तो पहले इसी बातका प्रयत्न किया जाय। यदि यह बात हो जाय तो सब कुछ ठीक ही ठीक है। इसमें सिर्फ यही एक बात है कि वे इसके लिए विशेष रूपसे निषेध कर गए हैं।

ब्रा०—इस बातका तो मुझे भी ध्यान है। पर यदि ज्योतिषके अनुसार दोनोंकी जन्मपत्रियाँ बिलकुल ही न मिलें तब तो यह बात यों ही रहने दी जाय। मैं और कहीं अपने महेन्द्रका ब्याह कर दूँगी और बहू अपने घर ले आऊँगी। यदि कात्यायनीके कारण उसका कुछ भी अनिष्ट हो तो मुझे यह ब्याह नहीं चाहिए। मैंने उनसे सुना था कि लड़कीके राशि-गण बहुत उच्च हैं।

कामा०—अच्छा जैसा होगा देखा जायगा। आप महेन्द्र और अपनी लड़की दोनोंकी कुंडलियाँ मुझे अभी दें। इसमें अधिक देर नहीं होनी चाहिए।

ब्राह्मणीने कात्यायनीको पुकारा। वह दूसरी कोठरीमें थी। माताकी आवाज सुनकर वह आँगनमें आ खड़ी हुई। ब्राह्मणीने कहा—बेटी, जरा तुम अपनी और महेन्द्र दोनोंकी कुंडलियाँ तो लेती आओ।

कात्यायनी वहीं खड़ी रही, वहाँसे हटी नहीं। उसने सिर झुकाए हुए कहा—कुंडलियाँ दिखलानेकी कोई जरूरत नहीं है।

ब्रा०—जरूरत क्यों नहीं है? तुम लाओ, दो तो सही।

कात्या०—महेन्द्रकी जन्मपत्री यहीं इसी कोठरीमें कहीं बाबूजीके कागज-पत्रोंमें पड़ी होगी।

ब्रा०—केवल उसीसे तो काम नहीं चलेगा। तुम्हारी कुंडली भी चाहिए।

सब लोगोंकी ओर अचंचल दृष्टिसे देखते हुए कात्यायनीने उत्तर दिया—उसमें जो देखनेकी बात थी वह सब बाबूजी देख गए हैं। अब उसमें और कुछ देखने दिखलानेकी जरूरत नहीं है।

कन्याका स्वर सुनकर और उसकी आकृति देखकर माता चुप हो गई। महेन्द्र टक लगाए हुए उसकी ओर देखता रह गया। कामाख्यानाथने भी कुछ चकित होकर एक बार कात्यायनीकी ओर देखा। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा—तुम अभी अनजान हो। तुम्हारे शुभाशुभका सारा भार तुम्हारे बाबूजी हम लोगोंपर छोड़ गए हैं। हम लोग जो कुछ करना उचित समझते हैं उसके लिए प्रयत्न करते हैं। तुम लड़की हो, इस बीचमें बाधा मत दो।

कात्या०—आप लोग उनकी सब बातें सुनकर भी भूले जा रहे हैं, इसलिए मैं आप लोगोंको उनकी बातें याद दिलाती हूँ। मैं अवश्य अनजान हूँ, पर फिर भी उनकी लड़की हूँ।

कामा०—उन्हें कोई योग्य वर नहीं मिला था, इसी लिए उन्होंने अब तक तुम्हारा ब्याह नहीं किया था। हम लोग उनकी इच्छाके अनुसार ज्योतिष शास्त्रसे सब बातें मिलान करके किसी काममें हाथ लगावेंगे।

ब्राह्मणीने कोमल स्वरसे कहा—यदि महेन्द्रके नामसे तुम सहमत नहीं हो, तो रहने दो। कोई जरूरत नहीं है। मैं यह जानती हूँ कि वे महेन्द्रके साथ ब्याह नहीं करना चाहते थे, इसी लिए महेन्द्रका नाम आते ही तुम बिगड़ खड़ी होती हो। तुम्हें अपने बाबूजीकी इच्छाके विरुद्ध कोई काम न करना पड़ेगा। उस बातको जाने दो। हाँ, ये कोई और प्रयत्न करना चाहते हों तो करने दो। तुम अपनी कुंडली ले आओ।

कात्या०—नहीं, मेरी कुंडली नहीं मिलेगी। इस विषयमें चाहे जो चेष्टा की जाय वह पाप है और उनकी इच्छा तथा आज्ञाके विरुद्ध काम करना है। मुझमें उनकी आज्ञा टालनेकी शक्ति नहीं है। वे मेरे पिता थे।

छः अपलक नेत्रोंके सामने कात्यायनी उसी प्रकार दृढ़ भावसे खड़ी रही। न तो उसका कंठस्वर विचलित हुआ और न उसने किसीकी ओर एक बार भी दृष्टि उठाकर देखा ही। वह उसी प्रकार चुपचाप नेत्र झुकाए खड़ी रही। उसने कोमल तथा स्पष्ट भाषामें उत्तर देकर सब लोगोंको निर्वाक् कर दिया।

माताने ठंढी साँस लेकर कहा—मैं जानती हूँ कि इस विषयमें कोई प्रयत्न करना बिलकुल व्यर्थ है। वह तो पहले ही कह गए हैं कि कात्यायनीका ब्याह होगा ही नहीं। उनका कहना क्या कभी झूठ हो सकता है? अच्छी बात है, इसे विधवा लड़कीकी भाँति ही रहने दो। वह बाप होकर अपनी लड़कीकी यही व्यवस्था कर गए हैं! लेकिन महेन्द्र मैं इसके लिए तुम्हारा जीवन नष्ट नहीं होने दूँगी। (कामाख्यानाथसे) बाबूजी, आपने इस अभागीके लिए बहुतसे कष्ट उठाए हैं। एक और यह भी कष्ट कीजिए कि महेन्द्रके लिए कोई अच्छी लड़की ढूँढ़ दीजिए। बस, आपसे यही मेरा अन्तिम अनुरोध है।

कात्यायनीका व्यवहार देखकर कामाख्यानाथ इतने चकित हुए थे कि अब भी उनसे कुछ बोला नहीं जाता था। कुछ देर तक चुप रहनेके उपरान्त अन्तमें वे उठकर खड़े हो गए और बोले—इस विषयमें मुझे कुछ और अधिक बोलनेका अधिकार नहीं है। आप अपनी लड़कीको उसके भविष्यके सम्बन्धमें सब बातें अच्छी तरह समझा दीजिए।

मा०—उसे तो उसके जन्मदाता ही सारा भूत भविष्य और वर्तमान समझा बुझा गए हैं। अब और किसीमें इतनी शक्ति नहीं है कि

उससे अधिक उसे और कुछ समझावे बुझावे। बाबूजी, आप इसके लिए व्यर्थ कष्ट मत उठाइए। जो कुछ उसके भाग्यमें बदा है वही होगा।

कामाख्यानाथ अन्यमनस्क भावसे वहाँसे चले गए।

* * * *

कात्यायनीने देखा कि महेन्द्र कई दिनसे मुझसे कुछ बात कहना चाहता है, पर उसे कहनेका साहस नहीं होता है और वह कहता कहता रुक जाता है। और कहीं दूसरी जगह भी वह ज्यादा देर तक नहीं ठहर सकता। वह देखती थी कि महेन्द्रका कहीं और किसी काममें मन नहीं लगता है और उसकी दृष्टि केवल मेरा ही अनुसरण करती है। कात्यायनीने समझ लिया कि महेन्द्रने कुछ दिनोंसे अपने मनमें जो इच्छा संचित कर रखी थी, अभी तक उस इच्छासे वह अपना छुटकारा नहीं कर सका है। पर उसे इस इच्छासे छुटकारा पाना तो अवश्य होगा, उसे अपनी वह इच्छा नष्ट तो अवश्य ही करनी पड़ेगी। उसने सोचा कि यदि यही इच्छा लेकर महेन्द्र मेरे साथ साथ घूमा करेगा, तो फिर मैं उसे भाईके समान निस्संकोच भावसे अपने पास नहीं रख सकूँगी। जब तक माताके मुखसे यह इच्छा प्रकट नहीं हुई थी, तब तक महेन्द्र अपना अधिकांश समय घरसे बाहर ही बिताया करता था। बहुत ही छोटी अवस्थासे दोनों साथ ही रहते आए थे, पर इधर कुछ दिनोंसे वह बात नहीं रह गई थी। दोनोंका एक साथ रहना बहुत कुछ कम हो गया था। पर अब पिताजीके देहान्तके बादसे वह दूरवाला व्यवधान हट गया था। इस शोकाकुल परिवारके अन्तर्भुक्त व्यक्तिकी भाँति महेन्द्र अपने बहुत दिनोंके अधिकारके कारण फिर लौट आया था। बीचमें दोनोंमें जो संकोच उत्पन्न हो गया था, वह अब मानो किसीको याद भी नहीं रह गया था।

परन्तु अब इस बातचीतके कारण वह संकोच फिरसे जागरित हो उठा था। कात्यायनीने अच्छी तरह समझ लिया था कि महेन्द्रको कुछ कहनेका भी साहस नहीं होता है और उसके मनमें दिन रात वही बात भी घूमा करती है। यही समझकर कात्यायनीके माथेपर बल पड़ गए थे। उसने सोचा कि अब मेरा इस प्रकार चुप रहना ठीक नहीं है। अब स्पष्ट रूपसे महेन्द्रसे सब बातें कह देनी होंगी, नहीं तो वह नहीं समझेगा। इसलिए कात्यायनीने बिना पहलेसे किसी प्रकारकी भूमिका बाँधे एक दिन सहसा उससे पूछा—महेन्द्र, क्या तुम मुझसे कुछ कहना चाहते हो? अगर तुम्हें कुछ कहना हो तो कहो।

कात्यायनीका यह प्रश्न सुनकर महेन्द्र कुछ लज्जित हुआ। वह कुछ कहना तो अवश्य चाहता था, पर इस प्रकार प्रश्न होनेकी दशामें यदि वह कुछ कहता तो उसका अभिप्राय सिद्ध नहीं हो सकता था। वह जो कुछ कहना चाहता था वह ऐसे स्पष्ट आदेशसूचक स्वरके सामने नहीं कहा जा सकता था—ऐसी स्पष्ट दृष्टिके सामने मुँहसे नहीं निकल सकता था। उसने बद्ध स्वरसे केवल यही कहा—मैं? नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं है।

कात्या०—खैर, जो कुछ भी हो, सुनूँ तो सही। मैं देखती हूँ कि कई दिनोंसे तुम मुझसे कुछ कहना चाहते हो। क्या तुम मुझसे कुछ कहना नहीं चाहते? क्या मेरे समझनेमें कुछ भूल हुई है? बतलाओ।

महेन्द्रने चुपचाप सिर झुका लिया। उसके मुँहसे 'हाँ' या 'नहीं' कुछ भी नहीं निकला।

कात्या०—तुम्हारा यह संकोच देखकर तो मैं अवाक् हो रही हूँ। क्या तुम यह बात भूले जा रहे हो कि तुम्हीं मेरे एकमात्र आश्रय और एकमात्र आत्मीय हो? तुम तो मेरे भाई हो।

महेन्द्र सिर उठाकर थोड़ी देर तक कात्यायनीके मुँहकी ओर देखता रहा। उस रूप-ज्योतिसे उद्भासित अचंचल और विद्युत्-वरणीकी ओर देखते देखते उसकी आँखोंमें आँसू भर आए। ऐसा जान पड़ता था कि उसकी अन्तरात्मा कहना चाहती है कि यह केवल वज्रगर्भ विद्युत्की रेखा है। उसे छोड़कर यहाँ जरा भी मेघ या नामको भी जलका आभास नहीं है। सूखे हुए गलेसे महेन्द्रने धीरे धीरे कहा—मैंने आज तक कभी तुमसे कोई बात नहीं कही। और मैं समझता हूँ कि शायद जन्मभर तुमसे कोई बात कहनेका साहस न होगा। लेकिन फिर भी मैं तुमसे एक बहुत ही साधारण बात कहना चाहता हूँ, एक बहुत ही सामान्य अनुरोध करना चाहता हूँ।

कात्या०—तुम्हें जो कुछ कहना हो, वह कहो। यदि मेरी शक्तिमें होगा, तो मैं तुम्हारे इस अनुरोधका पालन अवश्य करूँगी।

महे०—तुम्हारी यही स्वीकृति मेरे लिए बहुत है। माँ, मुझसे जो कुछ अनुरोध कर रही हैं वह तो तुमने सुना ही है। तुमसे मैं केवल यही भिक्षा माँगता हूँ कि तुम माँको यह परामर्श दो कि वह अपनी यह इच्छा छोड़ दें। मुझमें न तो तुम्हींसे कुछ कहनेकी शक्ति है और न उन्हींसे कुछ कहनेका साहस है। मैं तुमसे केवल यही प्रार्थना करता हूँ कि तुम उन्हें समझा दो कि जिस तरह वे तुम्हें विधवा कन्या समझकर तुम्हारे विवाहकी चिन्ता छोड़ बैठी हैं, उसी प्रकार वे मुझे भी रोगग्रस्त सन्तान समझ लें और निश्चय कर लें कि मैं भी विवाह करनेके योग्य नहीं हूँ।

कुछ देर तक चुप रहनेके उपरान्त कात्यायनीने कोमल स्वरसे कहा—अच्छा मान लो कि मैंने यह बात माँसे कह दी, पर यदि उनकी समझमें यह बात नहीं आई और उन्होंने नहीं माना तो?

महे०—यदि तुम खूब अच्छी तरहसे आन्तरिक चेष्टा करके उन्हें यह बात समझाओगी तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि वे यह बात अवश्य मान लेंगी।

कात्या०—लेकिन महेन्द्र, जरा यह तो सोचो कि क्या ऐसा करना उचित होगा? क्या उनके मनपर और भी आघात पहुँचाना ठीक होगा?

महे०—लेकिन मेरे पास और कोई उपाय नहीं है। मैं उनकी अकृतज्ञ सन्तान हूँ।

कात्या०—अच्छी बात है, तुम्हारी यह इच्छा पूरी होगी। लेकिन मैं भी तुमसे एक बात कहना चाहती हूँ।

महे०—तुम मुझसे कुछ कहना चाहती हो? कहो कहो, यदि मैं अपने प्राण देकर भी तुम्हारी बात—। लेकिन कात्यायनी, क्या कोई ऐसी बात भी हो सकती है जो तुम मुझसे कहना चाहती हो? जो हो, तुम कहो। मैं मंजूर कर चुका हूँ, तुम्हारी बात अवश्य मानूँगा।

कात्या०—मैं तुमसे और कुछ नहीं कहना चाहती। केवल यही कहना चाहती हूँ कि पहले जिस प्रकार तुमने काम धन्धेमें मन लगाया था, उसी प्रकार अब भी मन लगाया करो। अब तुम भी अपनी उन्नति करनेकी चेष्टा करो। इस तरह घर बैठे रहना ठीक नहीं है।

महेन्द्रने कुछ रुकते हुए धीरेसे कहा—कात्यायनी, क्या यही तुम्हारे कहनेकी बात थी? खैर, जिस तरह तुमने मेरी बात मान ली है उसी तरह मैं भी तुम्हारी बात मान लेता हूँ। अब मैं इस प्रकार तुम्हारे पास न रहा करूँगा। बल्कि अब मैं यहाँ रहूँगा ही नहीं। मैं बहुत जल्दी फिर बाहर चला जाऊँगा। लेकिन कात्यायनी एक बात है। क्या माँ इससे दुखी न होंगी?

कात्या०—वे दुखी तो अवश्य होंगी; पर साथ ही वे यह भी तो समझेंगी कि इस तरह बिलकुल खाली बैठे रहना तुम्हारे लिए ठीक न होगा। वे यह भी तो देखती हैं कि तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। उन्हें लाचार होकर यह समझना पड़ेगा कि जब तक तुम किसी और काममें मन न लगाओगे, अपना दिल न बहलाओगे, तब तक तुम्हारा शरीर ठिकाने न आवेगा।

महे०—घरमें तुम दो ही स्त्रियाँ ठहरीं। आखिर तुम लोगोंको कोई देखने सुननेवाला भी तो चाहिए।

कात्या०—हाँ देखने सुननेवाला तो अवश्य चाहिए। पर जब तुम बाहरसे आया करोगे तब देख सुन लिया करोगे। और जब तुम यहाँ नहीं रहोगे, तब तकके लिए कुछ और बन्दोबस्त करना पड़ेगा। उन लोगोंका मकान भी तो पास ही है। यह तो तुम देखते ही हो कि रमा हम लोगोंका कितना ध्यान रखती है। वे लोग खोज खबर लेते रहेंगे, इसलिए हम लोगोंको किसी प्रकारकी कठिनता न होगी। नित्य जिन बातोंकी जरूरत पड़ा करती है, उनका यदि तुम बन्दोबस्त कर दिया करोगे तो वही हम लोगोंके लिए यथेष्ट होगा। और फिर जब रमाके पिता स्वयं ही हम लोगोंके अभिभावकस्वरूप हैं, तो फिर सभी बातोंमें तुम उनपर निर्भर रह सकते हो।

महे०—यह तो सब ठीक है। और कात्यायनी, मैंने यह भी समझ लिया है कि अब तुम मेरा यहाँ अधिक रहना सहन नहीं कर सकती हो। कई दिनोंसे यह बात मेरे ध्यानमें आ रही है। यदि मेरे यहाँसे न जानेके कारण तुम्हें किसी प्रकारकी अशान्ति हो, तो मैं यहाँसे अवश्य चला जाऊँगा। तुम मुझे क्षमा करना, मैं तुमसे एक और बात कहना चाहता हूँ। जिस बातके कारण तुम्हारे मनमें मेरे

प्रति इस प्रकार विराग उत्पन्न हुआ है, उसकी आशाको या उस प्रस्तावके साहसको मैंने अपनी ओरसे एक दिन भी मनमें स्थान नहीं दिया है। तुम्हारी माँने ही वह प्रस्ताव इस प्रकार मेरे सामने रक्खा था, मानो वह सम्भव था।

कात्या०—यह तो मैं बहुत अच्छी तरह जानती हूँ। इसके लिए मैं तुम्हें कोई दोष नहीं देती।

महे०—पिताजी जो हमारा और तुम्हारा विवाह असम्भव बतला गए हैं, उसका कुछ कुछ कारण अब धीरे धीरे मेरी समझमें आ रहा है। कात्यायनी, जो ग्रह हमारे तुम्हारे जरा पास रहने तकका सौभाग्य सहन नहीं कर सकता और इतना नाराज होता है वह ग्रह कितना बलवान् है, यह मैं आज समझ पाया।

कात्यायनी बिलकुल चुप रही। महेन्द्रने फिर कहना आरम्भ किया—तो फिर कात्यायनी, अब तो यही निश्चय हुआ न कि अब हमारा और तुम्हारा कोई सम्पर्क न रहेगा?

कात्या०—यदि तुम यही बात समझकर अब हम लोगोंके पास नहीं आना चाहते हो, तो तुम्हें अधिकार है—तुम यह समझकर निश्चिन्त रहो। तुम यही समझ लो कि हम सब लोग इस संसारमें हैं ही नहीं, मर गई हैं। इससे फिर तुम्हें—

महेन्द्रने हाथ जोड़कर कहा—कात्यायनी, क्षमा करो, मेरे इस निर्बोध अभिमानको क्षमा करो। संसारमें ऐसा कौनसा आघात है जिससे मेरे शरीरकी इस रक्त धाराका स्रोत बन्द हो सकता है! जब तक मेरे शरीरमें रक्त है तब तक उसका प्रत्येक बिन्दु तुम लोगोंका है।

कात्या०—तो फिर इन बातोंको जाने दो। याद रक्खो कि हम लोग केवल तुम्हारे ही भरोसेपर इस संसारमें हैं।

कुछ देर बाद महेन्द्रने सहसा अपने अश्रुपूर्ण नेत्र उठाकर कात्यायनीकी ओर देखा और कहा—यह बात नहीं है कि मैं तुम्हारे मनकी इच्छा नहीं समझता। तुम अपने मनमें यह सोचती हो कि तुम्हारे पास रहनेके कारण मैं और भी यह बात भूलनेमें असमर्थ हो रहा हूँ। तुम यह समझती हो कि जब मैं यहाँसे दूर चला जाऊँगा और काम धन्धेमें लग जाऊँगा, तो मेरा मन दूसरी ओर हो जायगा और धीरे धीरे मैं यह बात भूल जाऊँगा। इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारी यह युक्ति तुम्हारी बुद्धि और तुम्हारे चरित्रके अनुकूल ही हुई है। तुम वही कात्यायनी हो जिसकी प्रतिभा देखकर मैं बचपनहीमें अवाक् हो जाया करता था और जिसे मैं शापभ्रष्टा समझा करता था। तुम्हें इससे अच्छा और कौनसा उपाय दिखाई देगा? लेकिन मैं तुम्हें यह बात क्योंकर समझाऊँ कि कोई ऐसी बात भी है, जो मेरे सब कुछ समझनेपर भी मुझे कुछ समझने नहीं देती और मेरे हृदयमें तीव्र वेदनासे भरे हुए उपहासका अट्टहास भर देती है? कात्यायनी, वह समझानेकी बात नहीं है। आज तुम नए सिरेसे मुझे भूलनेका क्या उपाय बतलाओगी, क्या मैं स्वयं अपनी ओरसे वह बात भूलनेका प्रयत्न करनेमें कोई कसर करता हूँ? जबसे मैंने यह देखा है कि मेरे हृदयका यह संघात असंयत हो गया है तबसे जहाँ तक हो सकता है, मैं प्रायः बाहर ही बाहर अपना समय बिताया करता हूँ। आजन्मके सुख और साधनाकी वस्तु उच्च शिक्षाका क्षेत्र, उसमें भी वह मेरा मन नहीं बहलने देता है। इतना ही नहीं, यह जानकर मैंने अपने मनको भी कीचड़में फँसा दिया है कि वह उसी आशा और उसी स्मृतिका मोह बढ़ा देता है। उस उच्च शिक्षाके क्षेत्रको छोड़कर मैंने अपने आपको हीन काम-काजके कीचड़में फँसा लिया और मैंने सोचा कि इस नीच काम-काजके साथ साथ

मन भी क्रमशः गिरता गिरता निरुद्देश हो जायगा । लेकिन यहाँ तो कुछ और ही बात हो गई। यदि यह बात न होती तो आज मुझे तुम्हारे मुँहसे यह क्यों सुनना पड़ता कि तुम यहाँसे हटकर दूर चले जाओ, और काममें मन लगाओ? अच्छा अब इन सब बातोंको जाने दो। लेकिन कात्यायनी, मैं तुमसे सच कहता हूँ कि इस बार मैं तुमसे कुछ अधिक समयके लिए विदा होता हूँ। लेकिन फिर भी बहुत दिनों तक मैं बाहर नहीं रह सकूँगा। जब तक माँ जीती हैं तब तक तो बीच बीचमें उन्हें देखनेके लिए मुझे यहाँ आना ही पड़ेगा। फिर भी कात्यायनी, यदि तुम बहुत दिनोंके बाद भी देखो कि मैं अपने मनमें यही बात रखे हुए हूँ तो क्या होगा? पर शायद तुम समझती हो कि यह सम्भव नहीं है। क्यों यही बात है न?

म्लान हास्यमें विदा लेकर महेन्द्र कामाख्यानाथके मकानकी ओर चला गया।

छठा परिच्छेद।

दोपहरकी प्रचंड धूपमें सारा गाँव निस्तब्ध है। वर्षा ऋतु है, परन्तु इधर कई दिनोंसे पानी बिलकुल नहीं बरसा है। आकाश मेघरहित है और आँखोंको जलानेवाली तेज धूप निकली हुई है। पृथ्वी निस्पन्द है और वायुके संचारका आभास भी उसके अंगके वस्त्रोंको चंचल नहीं कर सकता। जीवमात्र निस्तब्ध हैं। जिन पतंगों और जंगली मक्खियोंका काम केवल वनका स्पन्दन प्रकट करना है, उनके दल भी पेड़ों और पौधों आदिपर चुपचाप बैठे हुए हैं, केवल

बीच बीचमें बहुत दूरसे तीव्र सिस्कारकी तरह कोई तीक्ष्ण स्वर आ आकर प्रकृतिके इस सम्पूर्ण मूक भावको दूर करता है। वही स्वर मानो प्रकृतिके मर्मस्थलको बेधकर प्रतिध्वनि उत्पन्न करता है।

ज्योतिरत्नके मकानकी एक कोठरीमेंसे रह रहकर कुछ शब्द निकलता है जो उस घरके आँगनकी धूप द्वारा स्तम्भित निस्तब्धता भंग करता है। कोठरीमें रमा और कात्यायनी दोनों बैठी हैं। रमासे कात्यायनी पूछ रही है कि तुम्हारे अवश्य प्रतिपाल्य पशु पक्षी कौन कौन हैं तथा कौन कौनसे दीन आश्रित हैं और रमा भी बहुत उत्साहपूर्वक उन सबका विस्तृत वर्णन कर रही है। जो रमा बहुतसे लोगोंके सुख दुःख और अभाव आदिका बहुतसा अंश अपने ऊपर लिए रहती थी, उस रमाको स्वयं अपने दुःख और शोकमें डुबा रखना कात्यायनीको अच्छा नहीं लगता था। इसी लिए उसने आज अपना कोई जिक्र न छेड़कर रमासे ही उसके सम्बन्धकी सब बातें पूछना आरम्भ किया था। यह देखकर कि कात्यायनी अपना मन और बातोंकी ओर लगाना चाहती है, रमा भी प्रसन्नतापूर्वक अपनी सब बातें कहती चली जाती थी। जिक्र यह था कि रमाने अपने पोष्य जीवोंमें एक और वृद्धि की है। वह एक लूला बालक है। उस मातापिताहीन बालकका मुँह देखकर मनमें कैसी ममता उत्पन्न होती है, यही बात कात्यायनीको समझानेके लिए रमा कह रही थी कि मैं उसे एक दिन तुम्हारे पास भेज दूँगी, तब तुम उसे देखना।

कात्यायनीने कुछ उदासीन भावसे कहा—रमा, तुम उसे देखोगी तो उसका कुछ भला भी होगा। मैं उसे देखकर क्या करूँगी?

रमाको कुछ आघातसा लगा और उसने दुखी होकर कहा—मेरे देखनेसे उसका क्या भला होगा? यही न कि उसे थोड़ा भोजन मिल

जायगा और पहननेको कुछ कपड़े मिल जायँगे ? क्या इतने दिनों तक मैं ही उसे खाना कपड़ा दिया करती थी ? जिस भगवानके देखनेसे मनुष्यका सचमुच भला होता है, वे क्या मनुष्यको कभी नहीं देखते ? लेकिन फिर भी वे क्यों मनुष्यको मनुष्यके पास भेजते हैं ? उसके दुःखका कुछ भार देनेके लिए ही न ? बस मनुष्यके अधिकारमें केवल यही है कि वह किसीका दुःख देखकर स्वयं भी दुखी हो और जान पड़ता है कि भगवान भी यही चाहते हैं कि मनुष्यका दुःख देखकर दूसरे मनुष्य कुछ दुखी हों, उसके दुःखका स्वयं भी कुछ अनुभव करें। तो फिर इस जरासी बातके लिए मनुष्य इतनी कृपणता क्यों दिखलावे ?

कात्यायनीने बात बदलकर कहा—तुम्हारी वह बुढ़िया रामाकी माँ अभी तक जीती है न ?

रमा—हाँ, जीती तो है, पर उसे आनेमें बहुत कष्ट होता था, इस लिए मैंने उससे कह दिया है कि तुम मत आया करो। हारानकी बुआको मैं बीच बीचमें उसे देखनेके लिए भेज दिया करती हूँ। हाय, उस बेचारीको भी कितना कष्ट है! किसी दिन सुननेमें आवेगा कि वह चुपचाप मर गई। अबकी जब भइया घर आवेंगे तब—लेकिन उनके आनेसे ही क्या होगा ? कोई उसका वह कष्ट कैसे दूर कर देगा ? हाँ, जो ठाकुरजी उसका कष्ट दूर कर सकते हैं उन्हींसे मैं प्रार्थना किया करती हूँ कि हे महाराज, तुम उसका कष्ट कम कर दो और मेरे मनमें इस बातका विश्वास भी दृढ़ कर दो कि तुम उसे सदा देखा करते हो, जिसमें मेरी यह अस्थिरता कुछ कम हो जाय। मेरा तो बहुत जी चाहता है कि कभी कभी उसके पास जाया करूँ। पर मैं किसी तरह जा ही नहीं सकती। गोविन्ददेवने मेरा मन क्यों इतना अस्थिर

कर दिया है कि मैं बराबर यही सोचा करती हूँ कि हाय मैं आप जाकर उसे न देख सकी ? क्यों यह बात मेरी समझमें नहीं आती कि वे उसे देख रहे हैं ?

कात्या०—रमा, तुम्हारे गोविन्ददेवकी एक तो पत्थरकी आँखें ठहरीं, दूसरे वे भी बन्द रहती हैं। उन आँखोंसे तो वे संसारको देखते ही नहीं हैं। वे तुम्हारी इन्हीं रक्त मांसकी आँखोंसे काम लेते हैं और इन छोटे छोटे हाथोंमें ही उनके हाथोंके चिह्न दिखाई देते हैं। जिस दिन इस संसारमें तुम्हारी दृष्टि न रह जायगी उस दिन वे भी दृष्टि-हीन हो जायँगे।

रमाके अन्तःकरणको मानो इस बातसे चोट पहुँची। वह जल्दीसे बोल उठी—नहीं बहन, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, ऐसी बात मत कहो। गोविन्ददेवको पत्थर मत कहो। वे उन्हीं आँखोंसे सब कुछ देखते हैं और जिसकी समझमें उनका वह दृष्टिपात आ जाता है, वह अपने मनमें ही उस दृष्टिका अनुभव करने लगता है। जिस प्रकार मनुष्यके अन्तःकरणमें वह दृष्टि आती है उसी प्रकार जगत्के हृदयमें भी आती है। इसी लिए जगत् ठहरा हुआ है। इसी लिए तुम भी हो और मैं भी हूँ। यदि वह दृष्टि न रह जाय तो फिर क्या कोई इस संसारमें रह सकता है ? मैं अपनी आँखें बन्द करके मन ही मन सुना करती हूँ, बल्कि देखती भी हूँ कि बुढ़िया रामाकी माँ अपनी अंधेरी कोठरीमें अकेली पड़ी हुई रोगकी पीड़ाके कारण रोती है और उसी भगवानको पुकारती है जिसकी दृष्टि उस छोटे घरके अँधेरेमें और साथ ही मृत्युके गम्भीर अन्धकारमें प्रकाशमान रहती है। इसी लिए वह दिन रात निर्भय होकर मृत्युको बुलाया करती है। यदि उसे भगवानकी वह दृष्टि न दिखाई देती तो क्या मनुष्य कभी इस तरह मृत्युको बुला सकता था,

वह इस प्रकार निर्भय होकर मृत्युकी कामना करनेका साहस कर सकता था ?

कात्यायनीने चुपचाप सिर झुका लिया। रमाकी बातका प्रतिवाद करनेका उसे साहस नहीं हुआ। थोड़ी देर तक चुप रहनेके उपरान्त रमाने उसके मुखकी ओर देखते हुए पूछा—क्यों जी, आज कल तुम कभी मन्दिरमें नहीं आतीं, आरतीके समय माँको साथ लेकर चली आया करो न ?

कात्यायनीने उसी प्रकार सिर झुकाए हुए उत्तर दिया—इच्छा नहीं होती।

रमा—क्यों ? इच्छा क्यों नहीं होती ? तुम्हें जबरदस्ती ऐसी इच्छा करनी पड़ेगी। तुम आकर आरतीके प्रकाशमें गोविन्ददेवकी उन पत्थरकी आँखोंकी ओर देखा करो, तब तुम्हारी समझमें आ जायगा कि उन बन्द आखोंकी ही दृष्टि किस प्रकार मनुष्यके हृदयके अन्दर पहुँच जाया करती है और तब वहाँसे वह दृष्टि चलकर किस प्रकार समस्त भुवनका चक्कर लगाती है। तथा उसी दृष्टिके कारण मनुष्यको किस प्रकार शोकके समय सान्त्वना मिलती है, दुःखमें शान्ति मिलती है और अनन्त यन्त्रणामें भी वह किस प्रकार परमात्माको प्राप्त करता है।

कात्यायनी फिर भी पहलेकी ही भाँति चुप रही। उसने केवल एक ठंढी साँस ली, जिससे रमाने समझ लिया कि कात्यायनीका शोकग्रस्त मन अभी तक स्वाभाविक अवस्थामें नहीं आया है। अपनी आकस्मिक उत्तेजनासे कुछ लज्जित होकर रमाने फिर कहा—अगर तुम मन्दिरमें आया करोगी तो तुम्हारा मन भी कुछ कुछ बहलने लगेगा।

कात्या०—भला मन भी कहीं इधर उधर जानेसे बहलता है ? तुम तो जानती ही हो कि सन्ध्या समय पिताजी इसी मन्दिरके नीचेवाले

घाटपर जाकर सन्ध्या पूजा और जप आदि किया करते थे। तुम मुझे प्रायः अपने पास बुलाया करती थीं। किसी दिन मैं तुम्हारे पास आती थी, किसी दिन नहीं आती थी। मैं घाटपर बैठी बैठी देखा करती थी कि उस पारके आकाशमें लाल आभा मिलती जा रही है, मन्दिरके शिखरपर सन्ध्याका तारा चमकता है और उसी समय मन्दिरमें घंटा और घड़ि-याल बजने लगते हैं। उसी समय पिताजी उठकर खड़े हो जाते थे और आकाशकी ओर देखते हुए हाथ जोड़कर जोर जोरसे स्तोत्र पढ़ने लगते थे। तुम्हारे मन्दिरकी आरतीकी अपेक्षा उस आरतीकी शोभा मेरे मनमें अधिक समाई हुई है। अब मुझे वह आरती तो दिखाई ही नहीं देगी और न वह स्तोत्र ही सुनाई देगा। तो फिर मैं वहाँ क्या करने जाऊँ?

पहले तो कुछ देर तक रमा चुप रही, फिर वेदनाके कारण आँसु-ओंसे भरे हुए नेत्रोंसे कात्यायनीकी ओर देखती हुई बोली—तुम और किसीको मत देखा करना, केवल गोविन्ददेवकी ओर देखना।

कात्या०—बहन, मैं तो तुम्हारे गोविन्ददेवको पहचानती ही नहीं। मेरे गोविन्ददेवका स्थान तो घाटकी उन्हीं सीढ़ियोंपर था। जब मैं वहाँ जाऊँगी, तब क्या मुझे उस शून्य स्थानके अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई पड़ेगा?

रमाने कात्यायनीके गलेमें हाथ डाल दिया, उसकी गोदमें अपना मुँह छिपा लिया और रुँधे हुए स्वरसे कहा—अच्छा तो रहने दो। तुम वहाँ मत जाना।

कात्यायनीने कुछ सोचकर कहा—नहीं, अब मैं वहाँ जाया करूँगी। माँकी तो वहाँ जानेकी इच्छा होती है, पर वे मेरे ही कारण नहीं जातीं। वहाँ जानेपर तुमसे भी रोज भेंट हो जाया करेगी।

रमा—मैं भी तो यही कहना चाहती थी। तुम लोग दिन भर अकेली ही घरमें बैठी रहा करती हो।

कात्या०—नहीं, इससे हम लोगोंको किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता।

रमा—कष्ट नहीं होता? मुझे तो होता है। दिन भर तो मेरे पास बहुतसे लोग रहा करते हैं। आदमीको जितना ही काम होता है उसे उतने ही ज्यादा आदमियोंसे मेल जोल रखना पड़ता है और उतने ही आदमियोंसे बात चीत करनी पड़ती है। लेकिन फिर भी कभी कभी मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मैं अकेली हूँ और मेरी तबीयत घबराने लगती है। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मेरे पास कोई अच्छा साथी नहीं है। हाँ, यदि उस समय मैं मन्दिरमें चली जाऊँ और गोविन्ददेवका कुछ काम करने लग जाऊँ, तो तबीयत ठीक हो जाती है। और नहीं तो फिर यह जी चाहता है कि तुम्हारे पास चली आऊँ और तुम्हींसे बात चीत किया करूँ। क्या तुम्हारा जी इन सब बातोंके लिए नहीं चाहता?

कात्यायनीने कुछ सोचकर कहा—नहीं, यह बात तो नहीं है कि बिलकुल ही जी न घबराता हो। पर वह घबराहट केवल पिताजीके लिए ही होती है। जब तक वे थे तब तक मुझे कभी किसी बातका अभाव नहीं जान पड़ता था। तुम तो जानती ही हो कि वे सदा मुझे अपने ही पास रखा करते थे। मैं जो कुछ पढ़ती, सुनती और समझती थी वह सब उन्हींसे। आज वह नहीं हैं तो मेरे लिए फिर और कोई नहीं है। मुझे चारों ओर वही अभाव दिखाई देता है।

रमा—बहन, ईश्वरके कार्यमें मनुष्य तो कुछ कर ही नहीं सकता। अब वह दुःख दूर करनेका तो कोई उपाय ही नहीं है। वह दुःख के

अब जैसे तैसे सहना ही पड़ेगा। लेकिन माता पिता अपनी लड़कीके लिए एक और ऐसा संगी ठीक कर देते हैं, जो माता पिताके न रहनेपर भी सदा उसके साथ रहता है। बहन, तुम ऐसा संगी लेनेमें क्यों इतनी आपत्ति करती हो, भला इस तरह कब तक काम चलेगा? आज तो मान लिया कि माँ हैं, कलको जब वे नहीं रहेंगी तब क्या होगा?

कात्या०—क्या तुम्हारी माँ हैं? यदि नहीं हैं तो फिर तुम्हारा काम कैसे चलता है? लेकिन नहीं, तुम्हारे तो गोविन्ददेव हैं न।

रमा०—तो क्या वे गोविन्ददेव तुम्हारे नहीं हैं?

कात्या०—यह तो मैं पहले ही कह चुकी हूँ। इसी लिए मैं कहती हूँ कि जिस तरह तुम रहती हो उसी तरह मैं भी रहूँगी।

रमा०—मनुष्यको और विशेषतः स्त्रीको इस प्रकार असंयत भावसे नहीं रहना चाहिए। उसे किसी बन्धनमें अवश्य पड़ना चाहिए। माता पिता और समाज मिलकर मनुष्यको सदाके लिए धर्मके उसी एक बन्धनमें बाँध देते हैं जिसके कारण वह विधाताकी शक्ति देखता है और शान्त तथा सन्तुष्ट होकर अपना जीवन बिताता है। और नहीं तो जब तक मनुष्य अपने सम्बन्धमें स्वाधीन रहता है तब तक वह यही सोचता रहता है कि क्या करूँ, यह करूँ या वह करूँ और इस असमंजसके कारण उसका जीवन बहुत ही अशान्तिपूर्वक बीतता है। जब तक तुम उस बन्धनमें न पड़ोगी, तब तक तुम्हें निश्चिन्तता और शान्ति नहीं मिलेगी।

कात्या०—तो तुम समझ लो कि मुझे वह शान्ति मिल गई। मैं भी तो सब तरहसे निश्चिन्त ही हूँ।

रमा०—तुम यह व्यर्थका तर्क छोड़ दो। यदि निश्चिन्त होती तो इस शोकके समय भी तुम्हें कुछ शान्ति मिलती। लेकिन वह बात तो

है नहीं। तुम संसारसे अलग और अनोखी तो हो ही नहीं। तुम मुझे यह बतलाओ कि ब्याह करनेमें तुम्हें क्यों इतनी आपत्ति है ?

कात्या०—क्या तुमने नहीं सुना कि मेरी जन्मपत्री जन्मकुंडली ठीक नहीं है ? मेरे राशि गण सब बहुत ही खराब हैं।

रमा०—मैं तो सुनती हूँ कि वे बहुत ही उच्च हैं। वे इतने उच्च हैं कि सहजमें उपयुक्त पात्र नहीं मिलने देते हैं। फिर भी जब बाबूजी प्रयत्न कर रहे हैं तब अवश्य ही कोई अच्छा पात्र मिल जायगा।

कात्या०—क्या वे अभी तक इसके लिए उद्योग किए ही जाते हैं, उन्होंने उद्योग छोड़ा नहीं ?

रमा—क्यों, उद्योग क्यों छोड़ने लगे ? वे क्या कोई तुम्हारी तरह पागल हो गए हैं ? तुम्हारे बाबूजी तुम्हारा सब भार उन्हींपर छोड़ गए हैं, क्या उन्हें इस बातका ध्यान नहीं है ?

कात्या०—मेरा भाई महेन्द्र है, तुम लोग हो, क्या तुम लोगोंमेंसे कोई मेरा भार न उठा सकेगा ?

कात्या०—हम लोग हैं तो सही, पर तुम्हारे लिए क्या कर सकते हैं ? तुम परायोंकी तरह इतनी दूर पड़ी रहा करती हो। कौन तुम्हें देखने आता है और कौन तुम्हारी फिक्र रखता है ? आज यदि ईश्वर न करे तुम्हारी माँ न रह जायँ, तो सब लोग तो तुम्हें अनाथ ही कहेंगे।

कात्या०—लोग अनाथ कहा करें। उनके कहनेसे मैं अनाथ नहीं हो जाऊँगी। तुम्हीं लोग सदा मेरी खोज खबर लिया करोगे।

रमा—क्या सदा तुम यही भरोसा किए बैठी रहोगी या हम लोग ही सदा तुम्हारी खोज खबर लिया करेंगे ?

कात्या०—क्यों नहीं ? और जो तुम ब्याहकी बात कहती हो, सो वह भी तो पराएके ही साथ होगा। ब्याहके बाद वही पराया अपना हो जायगा। फिर भी सदा उसीके ऊपर भरोसा रखना पड़ेगा।

रमा—लेकिन उसे पराया नहीं कह सकते । बहन, वह तो धर्म और समाजके बन्धनसे बँध जाता है और ऊपरसे उसमें प्राणोंका बन्धन भी आ मिलता है ।

कात्या०—क्या दयाका बन्धन कोई बन्धन ही नहीं है ? क्या इसमें भी प्राणोंका बन्धन नहीं होता ? यदि इसमें भी प्राणोंका बन्धन न होता, तो रमा, आज तुम मेरे सामने मिथ्या हो जातीं । संसारमें और सब जगह यह बात चल सकती है, पर तुम लोगोंके निकट तुम्हारे मुँहसे यह बात बिलकुल शोभा नहीं देती ।

रमा०—बहन, मैं तो तुमसे हार गई । अब मैं तुम्हारे साथ तर्क नहीं करूँगी । लेकिन फिर भी इतना समझ रखो कि जहाँ तक हो सकता है, बाबूजी अब भी प्रयत्न कर रहे हैं ।

कात्यायनीका मुख क्रमशः गम्भीर हो गया । उसने कहा—रमा, तुम उन्हें मना कर दो । वे इसके लिए व्यर्थ कष्ट न करें । बाबूजी मुझे सदा कुमारी रहनेका आदेश दे गए हैं । वे व्यर्थ मुझसे पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करनेके लिए आग्रह न करें ।

रमा—तुम्हारे मनमें यह भ्रमपूर्ण संस्कार कैसे स्थान कर बैठा है ? वह बहुत शोकका समय था, इसी लिए शायद उस समयकी सब बातें तुम्हें ठीक ठीक याद नहीं हैं । तुम्हारे बाबूजीने कहा था कि तुम्हारे ब्याहका एक मात्र उपाय है । यदि वह उपाय न हुआ तो फिर मेरी कन्या सदा कुमारी ही रहेगी । उस एक मात्र उपायका यही मतलब था न कि ज्योतिषके अनुसार कोई उपयुक्त पात्र ढूँढ़कर तुम्हारा ब्याह कर दिया जाय ? यही बात तो बाबूजी भी कह रहे हैं । क्या वह कभी भूल सकते हैं ? जान पड़ता है कि तुम्हें वह बात अच्छी तरह याद नहीं है ।

कात्या०—मुझे बहुत अच्छी तरह सब बातें याद हैं। और फिर मान लो कि मैं भूलती ही हूँ, तो भी रमा मैं तुमसे एक अनुरोध करती हूँ; केवल अनुरोध ही नहीं करती बल्कि तुमसे भिक्षा माँगती हूँ कि इस अनहोनी बातके लिए तुम व्यर्थ चेष्टा मत करो और मुझे अधिक लज्जित तथा दुःखित मत करो।

रमा—लेकिन तुम पहले यह बतलाओ कि यह बात अनहोनी कैसे है, यह हो क्यों नहीं सकती ? पहले तुम मुझे इसका कारण बतला दो, तब और कोई बात कहो।

कात्या०—यदि तुम मुझे कुछ भी चाहती हो, मुझपर कुछ भी स्नेह रखती हो, तो मैं हाथ जोड़कर तुमसे यही भिक्षा माँगती हूँ कि तुम आगेसे इस बातका कोई जिक्र ही मत किया करो।

कात्यायनीका कातर स्वर सुनकर रमा व्यथित होकर चुप हो रही। कुछ देर बाद वह बोली—अच्छा जाने दो, अब मैं इस बातका कभी कोई जिक्र न करूँगी। मैं तुमसे अभी जो कुछ कह रही थी वह केवल अपनी इच्छासे ही नहीं कह रही थी। बाबूजीने मुझसे कहा था कि तुम ये सब बातें अच्छी तरह एक दिन कात्यायनीको समझा दो और तुम्हारे मनमें जो भ्रमपूर्ण विश्वास हो गया है उसे दूर करनेके लिए भी कहा था। पर आज मैंने समझ लिया कि मुझसे यह काम नहीं हो सकेगा। मैं समझती हूँ कि जन्मभर कुमारी रहना ही तुम्हारे भाग्यमें लिखा है।

कात्या०—हाँ, उनसे कह दो कि वे अपने मनमें यही बात समझ लें।

रमा—लेकिन कात्यायनी, मैं तुमसे एक और बात कहती हूँ। तुम अपने मनमें और कोई ख्याल मत करना। मेरी समझमें यह आता है कि तुम मुझसे कोई बात छिपाती हो। तुमने मुझसे जो कुछ कहा है उसके सिवा

कोई और बात भी तुम्हारे मनमें है, पर तुम वह बात कह नहीं रही हो। लेकिन क्या तुम सचमुच मुझसे वह बात छिपाए रहोगी? यह बतलाओ कि तुम मुझसे साफ साफ सब बातें क्यों नहीं कहती हो?

कात्यायनीने चुपचाप सिर झुका लिया और वह मानो धीरे धीरे निस्पन्द होने लगी। जब रमाने देख लिया कि कात्यायनी मेरी इस बातका कोई उत्तर नहीं देगी, तब उसने ठंढी साँस लेकर कहा—यदि तुम वह बात न कहना ही ठीक समझती हो, तो रहने दो। अच्छा, अब मैं घर जाती हूँ। अब सन्ध्या होनेमें अधिक विलम्ब नहीं है।

कात्यायनीने सिर उठाकर रमाके उदास मुखकी ओर देखा। उसकी नीरव दृष्टिमें कोई ऐसी बात थी जिसे देखकर रमा उठती उठती फिर बैठ गई और कात्यायनीका हाथ पकड़कर उसने स्नेहपूर्ण कोमल स्वरमें कहा—बहन तुम नाराज मत हो। मुझे क्षमा करो। मुझसे भूल हो गई।

अब कात्यायनीने गम्भीर स्वरमें उत्तर दिया—रमा, सचमुच मैं तुमसे एक बात छिपाती हूँ। लेकिन तुम अच्छी तरह समझ लो कि वह बात छिपाना ही ठीक है। इसीमें तुम्हारा भी मंगल है और मेरा भी।

रमा—क्या वह बात सुननेसे मेरा भी अमंगल होगा? भला वह कौनसी ऐसी बात है? अब तो बहन तुम्हें वह बात कहनी ही होगी।

कात्यायनीने बातको सँभालते हुए कहा—नहीं, अमंगल नहीं होगा। मेरे कहनेका मतलब केवल यही है कि वह बात सुनकर न तो तुम्हीं सुखी होगी और न कहकर मैं ही सुखी होऊँगी।

रमा—यदि वह बात कहनेमें तुमको दुःख हो, तो जाने दो; किन्तु—

कात्यायनी—अब और 'किन्तु' नहीं। सचमुच बहुत देर हो गई है। ठाकुरजीकी आरती आदि कब करोगी ? अब तुम घर जाओ। आज मैं माँको लेकर आरती देखने आऊँगी।

रमा कुछ प्रसन्न होकर उठी। दोनोंने बाहर आँगनमें आकर देखा कि सचमुच दिन बहुत ढल गया था। जो पृथ्वी दिनभर धूपके कारण उजली थी उसपर अब श्याम छाया आ चली थी। केवल नारियलोंके ऊँचे सिर सोनेकी पताकाओंके समान चमक रहे थे। गरम पृथ्वीमेंसे अब भी गरमी निकल रही थी। दग्ध दिगन्त अब भी ताम्र और कपिश वर्णका था। रमा बोली—बहुत देर हो गई। अब मैं किस समय क्या करूँगी ? लेकिन हारानकी बूआ भी तो अभी तक नहीं आई। मैं किसके साथ जाऊँगी ?

कुछ देर तक इधर उधर देखनेके उपरान्त रमाने फिर कहा—बेलेके पेड़ोंमें तो खूब कलियाँ लदी हुई हैं। जान पड़ता है कि खूब पानी देती हो।

कात्या०—कूएँके पास हैं न, इसीसे इन्हें बराबर बहुतसा जल मिला करता है। पहले तो इनमें और भी अधिक जल पड़ा करता था। बाबूजी यहीं हाथ पैर धोया करते थे।

रमा—तब तो नित्य बहुतसे फूल उतरा करते होंगे। तुम सब फूलोंका क्या करती हो ?

कात्या०—कुछ भी नहीं। यहीं सब फूलते हैं और यहीं झड़ जाते हैं।

रमा—आज कुछ फूल गोविन्ददेवको चढ़ानेके लिए लेती आना। इन फूलोंकी माला बहुत बढ़िया होगी।

कात्या०—लो देखो, तुम्हारी मजदूरनी भी आ गई।

रमा—(मजदूरनीसे) तुम इतनी देर करके क्यों आई? मैं तो यहाँ बातोंमें लगी रह गई। शायद तुम भी वहाँ बैठी बैठी बातें ही करती थी। चलो बहुत देर हो गई। अब मैं कब क्या करूँगी?

रमा मजदूरनीके साथ चली गई। कात्यायनीने माँको पुकारा, पुकारकर कहा—माँ, आज मन्दिरमें आरती देखने चलोगी?

माँ—इधर बहुत दिनोंसे तो हम लोग गई ही नहीं। यदि आज तुम्हारा जी चाहे तो चलो।

दोनों घरका काम धन्धा निपटाकर दर्शन करनेके लिए जानेको तैयार हुईं। उस समय पृथ्वीके नासारन्ध्रोंमेंसे धीरे धीरे मृदु निश्वास-वायु निकल रही थी। मेघरहित नीला आकाश घूसर आभासे रंग गया था। दिग्वधूके लाल अंचलसे गाँवमें शान्तिका स्निग्ध प्रकाश फैल रहा था। कात्यायनीको फूल चुनते हुए देखकर माँने पूछा—फूल क्या ठाकुरजीपर चढ़ानेके लिए चुन रही हो?

कात्या०—नहीं गंगाजीको चढ़ानेके लिए।

माँने अस्फुट स्वरसे कहा,—ठाकुरजीपर ही क्यों न चढ़ा दो?

कात्या०—नहीं, आज तो मैं गंगाजीको ही चढ़ाऊँगी। कलसे ठाकुरजीपर चढ़ाया करूँगी।

जब रमा घबराई हुई जल्दी जल्दी मकान पहुँची, तब उसने आँगनमें पैर रखते ही देखा कि एक कौनेमें कई दीन बालक और बालिकाएँ तथा मलिनमुख एक स्त्री बैठी हुई है। लम्बे दालानमें कई स्त्रियाँ हँसिया लिए हुए तरकारी चीर रही हैं और मुँहसे कहती जाती हैं—छोटे

आदमियोंको इतना सिर चढ़ाना भी ठीक नहीं। अरे भाई, भीख माँगने आए हो तो बाहर खड़े रहो और भीख लेकर चले जाओ। घुसते घुसते यहाँ अन्दर तक क्यों आ पहुँचे? पहले तो कभी ऐसी बात नहीं होती थी। इसीको सिर चढ़ना कहते हैं।

एक ओर एक विधवा वृद्धा नहा धोकर एक आसनपर बैठी हुई थी और गौमुखीमें हाथ डाले जल्दी जल्दी माला फेर रही थी और उस विचित्र गौमुखीके छेदमेंसे तर्जनी उँगली निकालकर उन भिखमंगोंको तर्जन करके मनका गुस्सा निकाल रही थी। पास ही एक और स्त्री पैर पसारे हुए बैठी बत्ती बना रही थी और उस वृद्धाको इशारेसे बतला रही थी कि घरके मालिक जो सब लोगोंका असंगत आदर करते हैं, उसीका यह परिणाम है। वृद्धाने जल्दीसे जप खतम करके गौमुखी हाथसे रख दी और कहना शुरू किया—वाह वाह, बड़ी बापकी दुलारी बनी है। मैं भी तो इसी तरह लड़कपनमें विधवा हुई थी। अपने माँ बापपर बहुत हुकूमत करती थी। व्रत किए, नियम किए, तीर्थ किए, धर्म किए। लेकिन इस तरहकी बातें तो मैंने कभी कानसे भी नहीं सुनीं।

इसके बाद उस वृद्धाने हुंकार भरकर उन म्लानमुख व्यक्तियोंकी ओर देखते हुए और हाथ चमकाते हुए कहा—भीख माँगने आए हो, तो अतिथिशालामें जाओ। क्या बिना घरके अन्दर घुसे भीख नहीं माँगी जाती? आजकलके लड़के लड़कियोंका जो यह हाल हो रहा है, उसीसे छोटी जातके लोगोंका मिजाज इतना बढ़ गया है। और यह जो लंगड़ा लड़का है इसका तो मिजाज और भी बढ़ गया है। अपना तो ठिकाना ही नहीं लगता, साथमें औरोंको भी लगा लाया है। जाओ, बाहर जाओ। लो मेरी तो समझमें ही नहीं आता कि लोग क्यों इन्हें अन्दर आने देते हैं। जब देखो तब नई नई मूर्तियाँ सामने आ खड़ी होती हैं।

बैठी हुई दीन बालिकाएँ और बालक घबराकर उठ खड़े हुए। क्योंकि वे पहले कभी इस मकानमें आए नहीं थे और कभी कहीं उनकी ऐसी खातिर नहीं हुई थी। वृद्धाके डरसे वह लँगड़ा बालक भी घबराकर इधर उधर देखने लगा और अपने साथियोंको बुलाकर वहाँसे चलनेकी तैयारी करने लगा। इतनेमें ज्यों ही उसकी दृष्टि दरवाजेकी ओर गई, त्यों ही उसका मलिन मुख आनन्दसे उज्ज्वल हो गया। उसने अपने साथियोंकी ओर अभय और आश्वासनकी दृष्टिसे देखते हुए आनन्दपूर्ण स्वरमें कहा—लो, माँ आ गई।

रमा—क्यों रे कन्हई, तू इस समय कहाँसे चला आया?

कन्हईने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल आनन्दपूर्वक सिर हिला दिया। उसके साथ जो वृद्धा स्त्री आई थी, अपने नेता कन्हईकी बालिका माँको देखकर भी उसे तसल्ली नहीं हुई। जप करनेवाली वृद्धा स्त्रीके बिगड़नेके कारण उसकी जान सूख गई थी। उसने एक बालिकाको खींचकर अपने पास कर लिया और कुछ दुखी होकर कहा—चल बेटी, चलें, यहाँ रात करनेसे कोई फायदा नहीं। यह वक्त इन लोगोंके काम करनेका है।

रमा—क्या तुम लोग बहुत देरसे आए हुए हो?

रमाकी आवाज सुनते ही वहाँकी सारी हवा ही बदल गई। अब तक जो स्त्रियाँ छोटे आदमियोंका सिर चढ़ना देखकर बड़ी बड़ी वक्तृताएँ दे रही थीं, उन्होंने ऐसा स्वर बदला कि मानो किसी और ही जगतसे उतरकर आई हों। वे बोलीं—हाँ बेटी, ये सब बेचारे बहुत देरसे आकर बैठे हुए हैं। बैठे बैठे बेचारे हैरान हो गए हैं। ये लोग यह नहीं बतलाते थे कि कौन हैं और किस लिए आए हैं। इसीसे हमने समझा था कि ये सब नए हैं। हम तो इन्हें पहचानती नहीं थीं। बाहरवाले

अगर पहचानते हों तो पहचानते हों। इसी लिए हम इनसे कह रही थीं कि भइया, तुम लोग बाहर जाओ।

रमा—अगर ये लोग बाहर जा सकते होते तो फिर यहाँ क्यों आते? बेटा, तुम लोग बैठ जाओ। तुम्हें बहुत कष्ट हुआ होगा। इन लोगोंको तो मैंने भी कभी नहीं देखा था।

कन्हईने आगे बढ़कर बिना कुछ भूमिका बाँधे कहा—माँ इन लोगोंका घर जल गया है। इसलिए इन लोगोंको बड़ा कष्ट है।

रमा—हैं? घर जल गया है? कब? इनका घर कहाँ था, इसी गाँवमें?

कन्हई—नहीं, अगर इस गाँवमें होता तब तो बड़े बाबूजीसे कहते ही बन जाता। इन लोगोंका घर महुरा गाँवमें था। यहाँसे दो तीन कोस दूर है। आज तीन महीने हुए इनका घर जल गया है। तब से ये लोग बिना घरके यों ही पड़े रहते हैं। बड़े कष्टसे दिन बिताते हैं। इधर कुछ दिनोंसे एक आदमीके यहाँ रहते थे। पर जिसके घरमें रहते थे वह अब इन लोगोंको अपने घरमें रखना नहीं चाहता।

जप करनेवाली वृद्धा अब तक बराबर इन लोगोंकी ओर कोपपूर्ण दृष्टिसे ही देख रही थी। पर अब उसने भी सहानुभूति बतलाते हुए कहा—क्यों जी, तुम्हारे गाँवका जमींदार कौन है? आखिर सब जगह जमींदार ही तो अपनी प्रजाका दुःख दूर करते हैं।

कन्हई—नौगाँवके जमींदार ही इनके गाँवके जमींदार हैं। पर वे—

सर्वज्ञा वृद्धा बीचमें ही बोल उठी—अरे वह? भला उनके जैसा नीच कौन होगा! भला हमारे बाबूकी बराबरी कौन कर सकता है? रमा, देखो ठाकुरजीकी आरतीका समय हो रहा है। अब तुम तो मन्दिरमें जाओगी न? इस समय इन लोगोंको जाने दो।

रमा—हाँ अब मैं जाती हूँ। पर जरा इन लोगोंसे बात कर लूँ। ये लोग बहुत देरसे आकर बैठे हुए हैं। हाँ, अगर तुम इन लोगोंसे थोड़ी देर तक बातें करो तो—

वृद्धा—नहीं, यह मुझसे नहीं होगा। लो मैं अब जाती हूँ। बेचारे सब कबसे तुम्हारे आसरे बैठे हैं। तुम इनसे बातें करो। मैं ठाकुर-जीकी आरतीका बन्दोबस्त कर दूँगी।

इतना कहकर वह अपनी अप्रसन्नताको छिपानेका प्रयत्न करती हुई फिर गौमुखीमें हाथ डालकर माला जपने लगी।

रमाकी समझमें नहीं आ रहा था कि अब मुझे क्या करना चाहिए। यह देखकर कन्हई बोला—अच्छा तो माँ, आज हम लोग जाते हैं। मैं फिर किसी दिन इन लोगोंको लेकर आऊँगा।

रमा—अरे तू फिर किसी दिन इन लोगोंको दो तीन कोससे लेकर यहाँ आवेगा? एक तो तू ही लँगड़ा है, दूसरे इस औरतमें तो हड्डी और चमड़ेके सिवा और कुछ भी नहीं है। क्यों जी, इन छोटे छोटे बच्चोंको इतनी दूरसे लेकर तुम कैसे यहाँ तक आई और अब तो सन्ध्या हो चली है तुम वहाँ जाओगी किस तरह?. और यह तो बतला कन्हई, कि ये लोग तुझे मिल कहाँ गए?

कन्हईने हँसते हुए उत्तर दिया—हमारे मामाका घर वहीं है, जहाँ ये लोग रहते हैं। माँ, अब तो मैं बहुत दूर तक चल लेता हूँ। घरके बिना इन लोगोंको बहुत कष्ट था, इसी लिए—

इतना कहते कहते कन्हई चुप हो गया।

रमाने उसे उत्साहित करते हुए कहा—कन्हई, तूने बहुत अच्छा किया जो इन लोगोंको यहाँ ले आया। (स्त्रीसे) क्यों जी, तुम फिर उसी गाँवमें अपना घर बनाना चाहती हो?

वह दीन स्त्री अब तक कुछ आशा और कुछ निराशामें पड़ी हुई रमाके मुँहकी ओर देख रही थी । रमाके सुन्दर अमल तरुण मुखसे मानो करुणा फूटी पड़ती थी। पर वह सोचती थी कि यह अभी बालिका है, इससे कहाँ तक दयाकी आशा रखना उचित है ! संसार बड़ा ही कठिन है। क्या यह बालिका मेरा अभाव दूर कर सकेगी ? इसी लिए रमाके पूछनेपर उसने उत्तर दिया—मेरे चाहनेहीसे क्या होगा ? मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। मैं तो इन लड़कोंके खाने पीनेका भी कुछ बन्दोबस्त नहीं कर सकती, तो फिर मकान कहाँसे बनाऊँगी ?

हारानकी बूआने आगे बढ़कर कहा—आज क्या मन्दिरमें दर्शन करने नहीं चलोगी ?

रमा—आज कात्यायनीके यहाँ मुझे बड़ी देर हो गई। तुम मिसरानीजीसे आरती करनेके लिए कह दो। मैं जरा इन लोगोंसे बात कर लूँ।

हारानकी बूआने कहा—नहीं, आरतीका इन्तजाम तो हो गया है। उसकी फिक्र नहीं है। मैं कहती हूँ कि आज तुम मन्दिरमें नहीं चलोगी ?

रमा—मैं अभी चलती हूँ। तुम जरा जल्दीसे जाकर इन लड़कोंके वास्ते कुछ खानेको तो ले आओ।

उन बालक बालिकाओंकी माताने बीचमें बाधा देकर कहा—तुम्हारी सेवा पूजामें देर हो रही है। तुम जाओ बेटी। मैंने तो तुम्हारे जैसी लड़की कहीं देखी ही नहीं। तुम्हारी खाली बातोंसे ही मेरा जी ठंढा हो गया है। हो सका तो मैं फिर किसी दिन आऊँगी, यदि कोई इन अनाथोंपर कुछ दया करे । हमारा दुःख कुछ तुम्हीं समझ

सकोगी । तुम्हारी बातोंसे ही हमारा बहुतसा दुःख दूर हो गया है । यह लड़का तुम्हारा सब हाल कहकर हम लोगोंको यहाँ तक ले आया है । अच्छा, आज तुम्हें बहुत काम है । जाओ, तुम जाकर ठाकुरजीकी सेवा पूजा करो । मैं फिर किसी दिन आऊँगी ।

रमा—नहीं भला यह कैसे होगा ? इस सन्ध्याके समय तुम गृहस्थके घरसे ऐसे ही कैसे चली जाओगी ? इन लड़कोंके चेहरेसे ही मालूम होता है कि इन्हें बहुत भूख लगी है । इन्हें लेकर दो तीन कोसका रास्ता चलोगी और रातके समय चलकर जाओगी ? और फिर तुम्हारी भी तो यही दशा है !

स्त्री—हम लोग सब कुछ इसी तरह सह लेते हैं । चाँदनी रात है, बीच बीचमें ठहरकर सुस्ताते हुए चले जायँगे ।

इतनेमें हारानकी बूआ बहुतसा खानेका सामान वहाँ ले आई और उन लड़कोंको खिलाने लगी । वे लड़के भी बहुत प्रसन्न होकर खाने लगे । रमाने सिर हिलाते हुए कहा—नहीं, यह नहीं हो सकता । आज रातको तुम्हें यहीं रहना पड़ेगा ।

स्त्री—नहीं, मैं यहाँ नहीं रह सकूँगी । वहाँ मेरी बुड्ढी माँ है । वह रातभर चिन्ता करती करती ही मर जायगी । तुम्हारी यह दया ही मैं जन्मभर नहीं भूलूँगी ।

रमाने कुछ चिन्तित होकर हारानकी बूआकी ओर देखते हुए कहा—तुम्हें मालूम है, बाबूजी कहाँ हैं ? मन्दिरमें ठाकुरजीका दर्शन करने गए हैं ?

हारानकी बूआने उत्तर दिया—क्या तुम नहीं जानतीं कि बाबूजी कहाँ हैं ? अब सन्ध्या हो गई है, इन सब बातोंको रहने दो ।

रमा—बतलाओ न क्या बात है? क्या वह घरमें नहीं हैं?

हारानकी बूआ कुछ इधर उधर कर रही थी, पर जप करनेवाली वृद्धासे नहीं रहा गया। उसने जल्दीसे हाथकी माला सिरसे लगाकर और खड़ी होकर कहा—मानो तुम कुछ जानती ही नहीं हो! वन्द्योपाध्यायके लड़केका हाल तुमने नहीं सुना? वह बेचारा बीमार था, बिना दवा दारूके ही मर गया। बाबूजीने शहरसे डाक्टर लानेके लिए आदमी भेजा था। उधर डाक्टर आए इधर घरसे लाश निकालनेकी तैयारी होने लगी। यही सुनकर बाबूजी दौड़े हुए वहाँ गए हैं। हाय उस दिन उसकी माँ लड़केको साथ लेकर अन्नपूर्णाजीका प्रसाद लेने यहाँ आई थी। उस बेचारीका भी कैसा फूटा भाग्य है। ऐसा अच्छा लड़का बातकी बातमें मर गया।

रमा चुपचाप पत्थरकी मूरतकी तरह खड़ी सब कुछ सुनती रही। देखते देखते उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। जप करनेवाली वृद्धा अपना सब सामान उठाकर 'हे हरि, हे परमेश्वर, जो तुम्हारी इच्छा' कहती कहती अन्दर कोठरीमें चली गई। हारानकी बूआने उस वृद्धापर बिगड़ते हुए कहा—तुमसे थोड़ी देर ठहरा भी न गया। सन्ध्याके समय रुलाकर ही छोड़ा। (रमासे) नहीं, तुम घबराओ मत। यह सब कुछ बात नहीं है। मैं अभी जाती हूँ और बाबूजीसे सब हाल पूछ आती हूँ। बल्कि आज तुम मन्दिरमें मत जाना। कन्हई, तुम सन्ध्याके समय—

कन्हई—नहीं, अब मैं घर जाऊँगा। इन लोगोंको भी मैं आज ले जाकर अपने घर रखूँगा। फिर कल—

रमाने अपनी आँखोंसे आँसू पोंछते हुए कहा—सन्ध्या समय तू इन लोगोंको बिना खिलाए पिलाए ही ले जाएगा?

वह स्त्री बीचमें ही धीर स्वरमें बोल उठी—अगर तुम्हें इसी बातका दुख हो बेटी तो आजकी रात हम सब यहीं रह जायँगे । तुम्हारे घरमें जगहकी कमी तो है ही नहीं । अब प्रसाद लेकर कल सबेरे ही सब जायँगे ।

रमा—कल बाबूजीसे मैं तुम्हारा घर बनवा देनेके लिए कहूँगी । आज तो—

स्त्री—हाँ सब हाल तो मैं सुन ही चुकी हूँ और तुम्हारी आँखोंमें आँसू भी देख रही हूँ । आज तुम हम लोगोंके लिए कोई चिन्ता मत करो । मैं नहीं जानती थी कि दुखियोंका दुख देखकर तुम्हें इतना दुख होता है । परमेश्वर तुम्हारे मनका सन्ताप दूर करें । तुम्हारा मंगल हो, तुम देवता हो ।

रमा—कन्हई, तुम तो पहले भी कई बार यहाँ रह चुके हो । ये लोग नए आए हैं । तुम इन लोगोंके पास ही रहो ।

कन्हई—अच्छी बात है । मैं भी यहीं इन लोगोंके पास पड़ा रहूँगा ।

हारानकी बूआने कुछ अप्रसन्न होकर कहा—चलो, अब अन्दर चलकर हाथ मुँह धोओ ।

रमा—नहीं, मैं पहले मन्दिरमें जाऊँगी ।

हारानकी बूआ—पुजारीजी आरती और भोगका सब सामान ले ही गए हैं । मिसरानीजी भी जप करके चली ही गई हैं । अब तुम्हारे जानेका क्या काम है ?

रमा—नहीं, मैं जाऊँगी । बिना वहाँ गए मुझे शान्ति न मिलेगी । कोई मेरे साथ चले ।

हारानकी बूआ—अच्छा तो फिर मैं वहाँ नहीं जाऊँगी । चलो, मैं ही तुम्हारे साथ चलूँ ।

रमा—नहीं नहीं। तुम वहाँ जरूर जाओ और जाकर देख आओ कि क्या बात है। मिसरानीजी तुम मेरे साथ चलो। (स्त्री और बालकोंसे) तुम लोग इस दालानमें बैठो। कन्हई, तुम इन लोगोंको उधर ले जाओ। क्षान्तसे कह दो कि इन लोगोंको चटाई दे दे और इनके लिए पानी रख दे। तुम लोग बैठो। मैं जरा मन्दिरसे हो आऊँ।

उस दीन स्त्रीकी आँखोंमें जल भर आया था। पर ऐसा क्यों हुआ था, यह वही जाने। आँखें पोंछते हुए उसने कहा—अच्छा बेटी, जाओ।

उस समय आरती आरम्भ हो गई थी। रमा अभी तक वहाँ नहीं पहुँची थी, इस लिए कात्यायनीकी माँ कुछ दुःखित भावसे मन्दिरके पासकी एक कोठरीमें चुपचाप कोनेमें बैठी हुई थी। रमाके यहाँकी जप करनेवाली मिसरानी दरवाजेके बीचमें एक आसन बिछाकर उसपर बैठी थी और बीच बीचमें अभिमानपूर्वक अपनी प्रधानताका परिचय दे रही थी। उसके हाथमें तो माला थी और आँखें इधर उधर नाच रही थीं। इतनेमें रमा एक दासी और दूसरी मिसरानीके साथ आती हुई दिखाई दी। उन लोगोंको देखते ही जप करनेवाली वृद्धाकी सारी गम्भीरता जाती रही। वह धीरे धीरे उठ खड़ी हुई और बोली—आओ, इधर आ जाओ। तुमने तो कहा था कि मैं नहीं आऊँगी। भला तुम कहीं बिना आए रह सकती हो? तुम न आओ, तो ठाकुरकी सेवा पूजा हो सकती है!

इतना कहते हुए उसने अपना आसन एक ओर खींच लिया और उसीपर बैठ गई। रमाने किसीके साथ कोई बात चीत नहीं की। वह आरतीके प्रकाशमें चमकती हुई मूर्तिकी ओर देखती हुई दरवाजेके सहारे खड़ी हो गई। जब आरती समाप्त हो गई तब सब लोग प्रणाम

करनेके लिए झुके। केवल रमा ही ज्योंकी त्यों खड़ी रही। सहसा किसीने उसकी पीठपर हाथ रखा और साथ ही साथ पुकारा—रमा!

रमाने पीछे मुड़कर देखा, कात्यायनी थी। वह उसकी ओर मुँह-करके कहने लगी—तुम लोग आ गईं। अब तक कहाँ थीं?

कात्या०—घाटपर।

रमा—वहाँ क्या कर रही थीं?

कात्या०—कुछ नहीं, यों ही खाली घाट देखनेके लिए चली गई थी। वहाँ गंगाजीको फूल भी चढ़ा आई।

रमाने सहसा हताश होकर पूछा—खाली? क्या सचमुच घाट बिलकुल खाली था? तो फिर वे फूल किसने लिए?

कात्यायनीकी माँने आगे बढ़कर कहा—जिसकी दृष्टिसे किसीका दुःख छिप नहीं सकता, जो सब लोगोंका सब कुछ लिया करता है, उसीने लिए और कौन लेगा? उस दिन तुमने जो बात कही थी वही आज देखनेके लिए आई थी। आज मैंने तुम्हारे ठाकुरजीको देखा है।

रमाके व्यथित अन्तःकरणने कात्यायनीकी माँके इस सरल स्निग्ध विश्वाससे मानो एक आश्रयहीन अवस्थासे निकलकर आश्रय पाया। उसने मन्दिरकी ओर घूमकर मूर्तिको प्रणाम किया और पूर्ण निर्भरताके कारण उसकी आँखोंसे झरझर आँसू बहने लगे।

सातवाँ परिच्छेद।

उस दिनसे कात्यायनी प्रायः सन्ध्या समय अपनी माके साथ मन्दिरमें जाया करती थी। कात्यायनीकी माँ कभी तो रमा और उसके साथकी स्त्रियोंसे बातचीत करती थी और कभी जप किया

करती थी। रमा प्रायः ठाकुरजीकी सेवा-पूजामें लगी रहा करती थी। केवल कात्यायनी ही ऐसी थी जो उन सब लोगोंको वहीं छोड़कर गंगाजीके किनारे चली जाती थी और पानीमें पैर डालकर एकान्त घाटपर चुपचाप बैठी रहा करती थी। कभी कभी रमा उसे बुलानेके विचारसे वहाँ आया करती थी, पर उसकी तन्मय मूर्त्ति देखकर उसे आवाज देनेका साहस नहीं होता था और वह चुपचाप लौट जाती थी। उसने समझ लिया था कि आकाशके नीचे बैठकर दिगन्तकी ओर देखने और दूधके समान जलवाली नदीको स्पर्श करके चुपचाप बैठे रहनेमें ही कात्यायनीको सबसे अधिक आनन्द मिलता है। इससे अधिक संसारमें उसे न तो और कुछ मिला ही है और न वह कुछ पानेकी कामना ही करती है। इसी लिए रमा उसका वह ध्यान भग्न नहीं करना चाहती थी। कात्यायनी अपनी बाल्यावस्थासे चली आई हुई जीवनस्मृतिमें ही बैठी रहना चाहती थी, इसलिए रमा भी उसे नहीं छेड़ती थी। जब मन्दिरके घंटों और घड़ियालोंका बजना बन्द हो जाता था, तब मानो कात्यायनीको होश आता था और वह उठकर मन्दिरमें सब लोगोंके पास पहुँचती थी। जिस स्थानपर सब लोग झुककर प्रणाम करते थे, उसी स्थानपर वह भी अपने अवश शरीरको किसी तरह झुका दिया करती थी।

उस दिन श्रावणकी पूर्णिमा थी और झूलनका अन्तिम दिन था। मन्दिरके शृंगार और उत्सवकी सीमा नहीं थी। खूब सजी हुई मूर्त्ति झूलेमें बैठी थी। उसके सामने मनुष्यके उपभोगके योग्य सजावटकी अनेक प्रकारकी चीजें रखी हुई थीं। कई तरहके नकशीदार बढ़िया अतरदान और गुलाबपाश रखे थे जिनमेंसे बहुत उत्तम सुगन्धि निकलकर चारों ओर फैल रही थी। सोने और चाँदीकी अच्छी अच्छी पुतलियाँ

रखी हुई थीं। उनमेंसे किसीके हाथमें दीपक और किसीके हाथमें पुष्प-पात्र थे। स्फटिक पात्रसे जो प्रकाश निकल रहा था उससे मन्दिर और प्रतिमा मानो उज्ज्वल शोभामें हँस रही थी। मन्दिरके बाहर जगमोहनकी शोभा कुछ और ही थी। वहाँ रात भर गान वाद्य होनेको था। जगमोहनके खम्भोंमें कृत्रिम फूलोंकी मालाएँ और पत्तियाँ आदि लिपटी हुई थीं। बीचमें अनेक प्रकार और अनेक रंगोंके झाड़ और फानूस आदि टँगे हुए थे। दीवारोंपर बहुतसे बढ़िया बढ़िया चित्र टँगे हुए थे। गाँवके सब लड़के सब तरफसे छुट्टी पाकर वहीं जगमोहनमें उछल-कुद, मारामारी और छीन-झपटी कर रहे हैं जिनके चीखने चिल्लानेसे मन्दिरमें एक नये तरहका स्वर भर रहा है। भोग बँटनेके स्थानका शोर अभी तक कम नहीं हुआ है। गाँवके ब्राह्मण तथा दूसरे निमन्त्रित लोग भोजन करके चले गए हैं और उनकी जूठी पत्तलोंको लिए कुत्ते आपसमें नोच-खसोट कर रहे हैं। बहुतसे बुलाए और बिना बुलाए लोग अभी तक भंडारीको ढूँढ़ रहे हैं। भिखमंगे पाई हुई मिठाई और पूरी आदिकी पोटली बगलमें दबाकर और कुछ प्राप्त करनेके लिए इस प्रकार इधर उधर मँड़राते और शोक करते फिरते हैं कि मानो उन्हें कुछ मिला ही नहीं। जो लोग गाने बजानेके लिए आए हैं वे भर पेट भोजन करके और पान खाकर एक ओर दरी बिछाकर सोनेकी व्यर्थ चेष्टा कर रहे हैं। कुछ दुष्ट बालक एक ओर कोनेमें बैठकर आपसमें यह परामर्श कर रहे हैं कि ये लोग सो जायँ तो इनकी चोटी काट लें! मन्दिरके नौकर चाकर जब किसी कामसे इधरसे उधर आते हैं तब उन लड़कोंको डाँट डपटकर उनका उत्साह ठंढा कर देते हैं। रमा दिन भरकी थकी माँदी होनेके कारण मन्दिरके पासकी कोठरीके एक कोनेमें बैठी है। दिन भरमें उसने फूलोंकी जो मालाएँ बनाई थीं उनको वह रकाबियोंमें

अच्छी तरह सजाकर रख रही है और चाँदीके डंडेपर पत्ते आदि लगाकर उनका एक चँवर बनानेका उद्योग कर रही है। सन्ध्या हो रही है। सजे हुए मन्दिरके सब दीपक आदि जल गए हैं। कुछ दीपक जो बाकी हैं वे जलाए जा रहे हैं। आकाशके नक्षत्रोंकी भी कुछ ऐसी ही अवस्था है। पर उनके प्रकाशके अंकुरका विनाश करनेके लिए पूर्व आकाशमें पूर्णिमाका चन्द्रमा निकल रहा है। कोई पूर्वकी ओर उस स्निग्ध ज्योतिपिण्डकी ओर देखता है और कोई पश्चिम ओरके बादलके टुकड़ोंकी ओर देखकर सोचता है कि कहीं पानी न बरसने लगे और आजका सारा मजा ही न मिट्टी हो जाय।

जब रमाने देखा कि कात्यायनी अपनी माताके साथ आ रही है, तब उसने धीरेसे उठकर उन दोनोंके लिए आसन बिछा दिए। कात्यायनी तो खड़ी रही और उसकी माँ एक आसनपर बैठ गई। कात्यायनीका भाव समझकर रमाने कहा—आज तुम घाटपर मत जाना। वहाँ मरदोंकी बहुत भीड़ है।

कात्या०—सब लोग तो यहीं मन्दिरमें हैं। आज वहाँ घाटपर कौन जायगा?

रमा—लेकिन फिर भी आज तुम यहीं क्यों न बैठो।

कात्या०—मैं जाती तो हूँ, पर जल्दी ही लौट आऊँगी। देख रही हो, आज कैसे बादल छाए हैं?

रमा—मुझे तो डर लगता है कि आजका सारा उत्सव ही कहीं मिट्टी न हो जाय।

कात्या०—मिट्टी क्यों होने लगा, मैं तो समझती हूँ कि और भी शोभा बढ़ जायगी। इन काले मेघोंके ऊपर चन्द्रमाका जो प्रकाश

पड़ रहा है उसके कारण और भी अपूर्व शोभा हो गई है। चलो तुम भी जरा घाटपर चलकर यह शोभा देखो न?

रमा—मेरी तो अभी यहाँ तलाश होने लगेगी। अभी तक बाबूजी भी नहीं आए।

कात्यायनीकी माँने कहा—घाटपर ज्यादा देर तक मत ठहरना। कहीं ऐसा न हो कि पानी बरसने लगे।

रमा—यदि खुलकर अच्छी तरह बरस जाय तो भी कुशल हो। पर वह बात तो होगी नहीं। रह रहकर थोड़ा बहुत पानी बरसेगा, जिससे सब लोगोंको रातभर कष्ट होगा। बरसात कभीकी लग गई, पर पानी अभी तक एक बूँद भी नहीं बरसा है। सब किसान लोग हाहाकार कर रहे हैं। आज तक तो पानी बरसा नहीं, पर जान पड़ता है कि आज रातको पानी बरसकर सब लोगोंका आनन्द किरकिरा कर देगा।

कात्यायनीकी माँने कहा—यह पानी तो कीर्तन भी न होने देगा। इसके मरनेको और कोई दिन नहीं था।

कात्यायनी यह कहकर वहाँसे चली गई कि—माँ, तुम क्यों इतनी चिन्ता करती हो? पानी नहीं बरसेगा। यह बादल यों ही उड़ जायगा।

इतनेमें कामाख्यानाथने आकर मूर्तिको प्रणाम किया और तब कात्यायनीकी माँको नमस्कार करके और चारों ओर देखकर कहा—क्या आज आपकी कन्या नहीं आई?

रमाने उत्तर दिया—आई है।

कामा०—मैं फिर एक बार आपके यहाँ आना चाहता था। अच्छा हुआ कि आज यहीं आपके दर्शन हो गए। सुनिए, मैंने एक बहुत अच्छा पात्र ढूँढ़ा है। उसकी कुंडली भी बहुत अच्छी है।

ब्राह्म०—भइया, अब तुम मुझसे इस सम्बन्धमें क्यों बातें करते हो? कात्यायनीके ब्याहकी आशा मैं बिलकुल छोड़ चुकी हूँ। न तो अब मैं उससे इस विषयमें कुछ कहूँ सुनूँगी और न कुछ समझाऊँ बुझाऊँगी।

कामा०—लेकिन मैं उसे फिर एक बार अच्छी तरह समझाऊँगा, वह है कहाँ?

रमा—वह अभी घाटपर गई है। उसे बुलाऊँ?

ब्राह्मणीने बीचमें ही रोककर कहा—नहीं बेटी, चारों ओर मरद भरे हुए हैं। वह बड़ी जिद्दी लड़की है। अपनी जिदके सामने, अपनी अक्लके सामने वह किसीकी बात सुनती ही नहीं। वह इनकी बात भी नहीं मानेगी, सामने खड़ी होकर तर्क वितर्क करेगी। अगर कोई सुन लेगा, तो मैं तो मारे लज्जाके यहीं गड़ जाऊँगी। उसे तुम मत बुलाओ।

कामा०—अच्छा तो मैं आप ही घाटपर जाता हूँ। क्या आप भी मेरे साथ चलेंगी?

ब्राह्मण—नहीं, नहीं भइया, तुम उससे जो कुछ बातें कर आओगे वह मैं यहीं सुन लूँगी। मैं तो समझती हूँ कि वह किसी तरह नहीं मानेगी।

परन्तु कामाख्यानाथने ब्राह्मणीकी इस बातपर कोई ध्यान नहीं दिया और वे उठकर खड़े हो गए। उन्होंने सोचा कि क्या एक साधारण बालिका मेरा कहना न मानेगी? भला उसे किस बातकी जिद है? क्यों उसका यह दृढ़ निश्चय है कि समझाने बुझानेसे भी वह अपना भ्रम-पूर्ण विचार न छोड़ेगी? उन्होंने यह भी सोचा कि यदि वह किसी तरह

राजी न होगी, किसी तरह अपनी जिद न छोड़ेगी, तो जबरदस्ती उसका ब्याह कर दिया जायगा। क्या जरासी लड़कीकी जिद तोड़ना कोई बहुत बड़ी बात है? लेकिन पहले जोर जबरदस्ती करनेकी आवश्यकता नहीं, पहले तो उसे अच्छी तरह केवल समझा बुझा देना चाहिए। मैं तो समझता हूँ कि वह बहुत ही समझदार है। यह हो ही नहीं सकता कि अच्छी तरहसे समझाने बुझानेसे भी वह न माने।

उठकर कामाख्यानाथने एक आदमीको आनवाले लोगोंकी अभ्यर्थनाके लिए नियुक्त किया और दूसरा आदमी कीर्तन करनेवालोंके पास उन्हें तैयार करानेके लिए भेजा और आप घाटकी ओर चल पड़े। ऐसा जान पड़ता था कि वे आज ही कात्यायनीको ब्याहके लिए राजी किए बिना दम न लेंगे। उन्होंने यह भी सोचा था कि इसे राजी करके आज ही इसकी कुंडली भी ज्योतिषार्णव महाशयके पास भेज दूँगा। क्योंकि उनसे यही बातें तै हो चुकी हैं। लेकिन वह कुंडली कात्यायनीके पास है, ब्राह्मणीके पास होती तो अब तक कभीकी मिल गई होती। इसी लिए कामाख्यानाथने निश्चय किया था कि आज जैसे होगा इस विषयका निपटारा करके ही छोड़ूँगा।

कामाख्यानाथने ज्यों ही घाटकी पहली सीढ़ीपर पैर रखा त्यों ही मेघने 'गडाम गुम्' गरजकर उनका हृदय और चारों दिशाएँ कँपा दीं। वे चौंककर खड़े हो गए और चारों ओर देखने लगे। म्लान ज्योत्स्ना सहसा छिप गई थी। आकाशमें हाथियोंके बच्चोंके समान जो मेघ एकत्र हो रहे थे और दल बाँधकर इधर उधर घूम रहे थे, उन्हींमेंसे कुछ मेघोंने पूर्व ओर आकर चन्द्रमाको भी ढक लिया था। अपनी ही वप्र-क्रीड़ामें उनका कृष्ण गात्र बीच बीचमें हँस पड़ता था और फिर तुरन्त ही चन्द्रमाके पाससे कुछ हटकर और ज्योत्स्ना-फेनमें स्नान करके वे समस्त

आकाशमें आनन्दपूर्वक विचरते थे। कभी तो वे चाँदको ढक लेते थे, कभी पूर्ण चन्द्रमाकी उज्ज्वल रश्मि उनके कृष्ण शरीरको भेदकर आकाशमें फैल जाती थी और वे चन्द्रमाको छोड़कर दूसरी ओर चले जाते थे और खेलमें मग्न हो जाते थे। उस समय कामाख्यानाथ स्थान और समयको भूल गए और उन्हें यह भी याद न रह गया कि मैं किस कामके लिए कहाँ जा रहा हूँ। वे वहीं खड़े हो गए और थोड़ी देर तक विमुग्ध होकर वही शोभा देखते रहे। ऐसा जान पड़ता था कि पूर्णिमाकी मेघाच्छन्न रात्रिमें बहुत दिनोंसे वृष्टि न होनेके कारण सब चराचर अपने दग्ध नेत्रोंसे उन्हीं स्निग्ध श्यामकान्ति बादलोंकी ओर देखकर ही शीतल होना चाहते थे। जिस प्रकार मेघदूतवाले रामगिरिके यक्षने आषाढके नए मेघके अभ्युदयके दिन कुटज-कुसुमोंका अर्घ्य तैयार किया था, उसी तरह आज सारा संसार इस वर्षाहीन श्रावणके सूखे वक्षमें पड़ा हुआ अपने मेघ अतिथिका सादर आवाहन कर रहा था।

जब मेघ हट गए तब चन्द्रमा अपनी सोलहों कलाओंके प्रकाशसे फिर समस्त संसारको हँसाने लगा। कामाख्यानाथने देखा कि कोई आदमी जलके बहुत ही पास बैठा हुआ पश्चिमके मेघकी ओर देख रहा है। उन्होंने समझ लिया कि यही कात्यायनी है।

अपने निश्चयको और भी निश्चय करनेके लिए कामाख्यानाथने उसके पास जाकर पुकारा——कौन, कात्यायनी?

कात्यायनीने चकित होकर पीछेकी ओर मुड़कर देखा और वह साथ ही उठकर खड़ी हो गई।

कामा०——सुनो कात्यायनी, मैं तुमसे कुछ बातें करना चाहता हूँ। तुम्हारी माँ नहीं चाहती थीं कि इस विषयमें मेरा और तुम्हारा जो

वादविवाद हो उसे वह सुनें, इसलिए वह यहाँ नहीं आई और लाचार अकेले ही मुझे यहाँ आना पड़ा।

कात्यायनी चुपचाप खड़ी हुई उनकी बात सुनती रही। उसकी समझमें कुछ भी न आया कि मैं क्या कहूँ और क्या करूँ। कामाख्यानाथने बिना उसकी ओर कोई विशेष ध्यान दिए कहना आरम्भ किया—घबरानेकी कोई बात नहीं है, तुम जहाँ बैठी थीं वहीं फिर अच्छी तरह निश्चिन्त होकर बैठ जाओ। मैं यहाँ ऊपर सीढ़ीपर बैठता हूँ। क्योंकि बातोंमें कुछ देर लगेगी।

कात्यायनीने बड़ी कठिनतासे धीरेसे उत्तर दिया—मुझे आए बहुत देर हो गई है। वहाँ माँ घबराती होंगी।

कामा०—नहीं, उन्हें मालूम है कि मैं यहाँ तुमसे बातें करनेके लिए आया हूँ।

इतना कहकर कामाख्यानाथने गंगाजीका कुछ जल लेकर मस्तकपर लगाया और गंगाजीको प्रणाम करके वे दो तीन सीढ़ियाँ ऊपर चढ़कर बैठ गए। लाचार होकर कात्यायनी भी अपने स्थानपर बैठ गई।

कामाख्यानाथने कहना आरम्भ किया—मैंने रमासे तुम्हारी वे सब बातें सुन ली हैं, लेकिन यह तुम्हारा बहुत बड़ा भ्रम है। मैं स्वयं वहाँ बराबर उपस्थित था। तुम्हें तो याद ही होगा। उस समय तुम बहुत दुखी थीं, इसी लिए तुम्हें सब बातें अच्छी तरह याद नहीं हैं। बल्कि मैं तो समझता हूँ कि उस समय तुममें उनकी बातोंका ठीक ठीक अर्थ समझनेकी भी शक्ति नहीं थी, इसी लिए तुमने न जाने क्याका क्या सुन लिया और क्याका क्या समझ लिया और इसी लिए अब तुमने एक व्यर्थका झगड़ा कर रखा है। इस अवस्थामें तुमको सब प्रकारसे

मुझपर ही निर्भर रहना चाहिए। उन्होंने जो तुम्हारी आजन्म कुमारी रहनेकी बात कही थी, वह केवल उपयुक्त पात्र न मिलनेके कारण ही कही थी। हाँ, यह ब्याह करनेके लिए उन्होंने अवश्य मना किया था। परन्तु उपयुक्त पात्र मिलनेपर तुम्हारा विवाह करनेमें उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी। मैंने जो कुछ सुना उससे उनका यही मतलब मेरी समझमें आया।

कात्यायनी बिलकुल चुपचाप बैठी थी, वह जरा भी हिलती डोलती नहीं थी। इसलिए कामाख्यानाथको यह आशा होने लगी कि इसपर मेरी बातोंका प्रभाव पड़ रहा है। उन्होंने फिर कहना आरम्भ किया—भला मैं तुमसे यह क्यों कहने लगा कि तुम अपने पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करो? और फिर मुझमें ही उसको उल्लंघन करनेकी कहाँ शक्ति है? पर यह केवल तुम्हारे समझनेकी भूल है। क्या तुम्हें याद नहीं है कि एक बार उन्होंने यह भी कहा था कि ब्याह करनेका एक उपाय है?

कात्या०—हाँ, उन्होंने कहा अवश्य था; पर वह उपाय ही ऐसा था जो बिलकुल न होनेके बराबर था। और यह बात भी उन्होंने उसी समय कह दी थी।

कामा०—उनका विश्वास था कि तुम्हारे लिए कोई उपयुक्त पात्र ही न मिलेगा, मगर यह बात कभी ही हो नहीं सकती। उनकी जो कुछ सम्मति थी, ठीक उसीके अनुसार मैं काम करना चाहता हूँ। तुम यह जानती हो कि उन्हें इस बातका भी भय था कि कहीं लोग तुम्हें कुलक्षणा समझकर तुम्हारा निरादर न करें?

कात्या०—हाँ, यह मैं जानती हूँ।

कामा०—इन्हीं सब कारणोंसे उन्होंने वह बात कही थी। साथ ही उन्हें इस बातका भी भय था कि पीछेसे मुझे इस ब्याहके लिए

कुछ तरद्दुद करना पड़ेगा, इसी लिए मुझपर ज्यादा बोझ न डालनेके विचारसे भी यह कहा था कि हमारी लड़की जन्मभर कुमारी ही रहेगी।

कात्या०—उस भारसे तो आपको मुक्त ही कर गए हैं। फिर क्यों आप इसके लिए व्यर्थ—

कामा०—तुम यही न पूछती हो कि मैं क्यों यह भार अपने सिर ले रहा हूँ ? लेकिन इसका मैं तुम्हें क्या उत्तर दूँ। मैं तो समझता हूँ कि यदि वे इस समय जीवित होते, तो शायद उन्हें भी मैं इसका कारण न बतला सकता ! पर मैं आशा करता हूँ कि अब वे सर्वज्ञता प्राप्त कर चुके होंगे। इसी लिए मैं यह बात तुम्हें बतलाता हूँ और उन्हींपर इस बातका भार देता हूँ कि वे तुम्हें यह बात अच्छी तरह समझा दें। तुमसे मैं केवल यह कहना चाहता हूँ कि लड़कपनके कारण तुम जिद कर रही हो और अभी तक तुम इतनी सयानी नहीं हुई हो कि यह समझ सको कि इसका परिणाम क्या हो सकता है। इसी लिए मैं तुमसे कहता हूँ कि मैं तुम्हारा अभिभावक और शुभचिन्तक हूँ। मैं जो कुछ करना चाहता हूँ, उसमें तुमको इतना लड़कपन नहीं करना चाहिए। तुम अपना यह हठ छोड़ दो। क्यों व्यर्थ सब लोगोंको दुखी और चिन्तित कर रही हो। जब हम सब लोग कह रहे हैं कि तुम्हारे पिताजीके कहनेका वह अभिप्राय कभी नहीं था जो तुम समझ रही हो, तब तुम्हें यह बात मान लेनी चाहिए।

कात्यायनी उठकर खड़ी हो गई। कामाख्यानाथने कहा—मैं आशा करता हूँ कि तुम मेरी सब बातें अच्छी तरह समझ गई होगी। अब तुम इस तरहकी बातें मत करना। अब मुझे तुम्हारी जन्मपत्री चाहिए।

कात्या०—जन्मपत्री नहीं पा सकेंगे। इसके लिए व्यर्थ प्रयत्न मत कीजिएगा।

कामा०—इसका क्या मतलब ? इतनी देर तक मैंने तुम्हें क्या समझाया था ?

कात्या०—वह बात तो मैं उस समय भी समझती थी और इस समय भी समझती हूँ। आपने मुझे कोई नई बात नहीं समझाई है।

कामा०—क्या मैंने तुम्हें कोई नई बात नहीं समझाई है ? क्या तुम अपनी जिद नहीं छोड़ोगी ?

कात्या०—आप चाहे इसे मेरी जिद ही समझें, पर यह मेरे पिता-जीकी आज्ञा है।

कामा०—तुम्हारे पिताजीकी आज्ञा है ? क्या वे यह भी कह गए हैं कि यदि कोई उपयुक्त पात्र मिल जाय तो भी तुम्हारा विवाह न किया जाय ?

कात्या०—जी हाँ, यही बात है।

कामा०—इस ' यही बात 'का क्या मतलब ? तुम जरासी लड़की होकर ऐसी बातें कर रही हो। मैं इतना वयस्क और प्रौढ़ बुद्धि होनेपर भी क्या तुम्हारे सामने बिलकुल निर्बोध हूँ ?

कात्यायनीने सिर उठाया। जिन प्रतिष्ठित और गण्यमान जमींदार बाबू कामाख्यानाथके सामने बड़े बड़े ज्ञानवृद्ध भी बातें करनेका साहस नहीं कर सकते थे, उन्हीं कामाख्यानाथके विरक्त और विस्मयपूर्ण मुखकी ओर देखकर कात्यायनीका हृदय विचलित हो गया। कुछ कहनेके लिए उसके मुखकी कई शिराएँ और उपशिराएँ चंचल हो उठीं। परन्तु उन सबका दमन करके और सिर झुकाकर कात्यायनीने कहा—मैं उनकी लड़की हूँ। ऐसी दशामें यदि मैं आपकी अपेक्षा उनके मनकी बात अधिक अच्छी तरह समझूँ तो क्या यह कोई असम्भव बात है ?

कामा०—यदि उनके मनका वही भाव होता जो तुमने समझा है, तो वे कभी तुम्हारे ब्याहके लिए इतनी चेष्टा न करते । पर मैंने सुना है कि वे जन्मभर उसीकी चेष्टा करते रहे । क्या यह बात तुम नहीं जानती हो कि इसके लिए उपयुक्त वरकी एक कल्पित जन्मपत्री भी उन्होंने तैयार कर ली थी ?

कात्या०—हाँ, यह तो मैं जानती हूँ ।

कामा०—तब फिर ऐसी बातें क्यों कहती हो ? यह सब तुम्हारी जिद सिवाय और कुछ नहीं है । मगर यह जिद तुम्हें छोड़नी पड़ेगी । ठहरो, पहले मेरी सब बातें अच्छी तरह सुन लो । वे मुझपर सब बातोंका भार छोड़ गए हैं । तुम यह जानती हो कि मैं जबरदस्ती तुम्हारा ब्याह कर सकता हूँ ?

कात्या०—भला आप क्या नहीं कर सकते हैं ? पर मैं यह नहीं जानती थी कि किसीकी दत्ता कन्याका आप जबरदस्ती किसी दूसरेके साथ ब्याह भी कर सकते हैं ।

कामा०—दत्ता कन्याका ब्याह ? इसका क्या मतलब ?

कात्या०—आप ही न अभी अपनी प्रौढ़ावस्थाका अभिमान कर रहे थे ! पर मैं तो यही देखकर अवाक् हो रही हूँ कि जो बात एक छोटी लड़की सहजमें समझ सकती है, बड़े बड़े बुद्धिमानों और ज्ञानियोंकी समझमें भी वह बात नहीं आती और शायद इसी लिए आप जबरदस्ती करनेके लिए कह रहे हैं ?

कामा०—कात्यायनी यह तुम क्या कह रही हो ? तुम्हारी इन सब बातोंका अर्थ क्या है ? यदि मैं कोई बात न समझता होऊँ तो तुम्हें यही उचित है कि तुम वह बात मुझे अच्छी तरह समझा दो । मैं तो यही

समझता हूँ कि यदि मैं जबरदस्ती भी तुम्हारा ब्याह कर दूँ, तो भी तुम्हारे या मेरे लिए कोई अधर्म न होगा।

कात्या०—क्या केवल समझनेसे ही जबरदस्ती चल सकती है? क्या आप यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि जबरदस्ती करनेमें कोई अधर्म न होगा?

कामा०—मैं तो यही समझता हूँ। तुम लड़कपनके कारण ही व्यर्थ जिद कर रही हो और मैं समझता हूँ कि इसी जिदके कारण तुम अनेक प्रकारकी कल्पित बाधाओंकी सृष्टि कर रही हो। तुम इन सब व्यर्थकी जल्पनाओंको छोड़कर साधारण लड़कियोंकी तरह सब काम करो।

कात्या०—क्या ये सब मिथ्या जल्पनाएँ और मनगढ़न्त बाधाएँ हैं?

कामा०—और नहीं तो क्या हैं? यदि तुम अपनी जन्मपत्री मुझे नहीं दोगी, तो मैं किसी बड़े ज्योतिषीको ले आऊँगा और तुम्हारी माँसे तुम्हारे जन्मका समय और दिन आदि जानकर नई जन्मपत्री तैयार करा लूँगा और उसी जन्मपत्रीसे मिलाकर किसी उपयुक्त वरके साथ तुम्हारा ब्याह कर दूँगा। यह बात तुम अच्छी तरहसे समझ रखो। अच्छा, अब तुम जा सकती हो; पर इसके लिए तैयार रहना।

कात्यायनी कुछ देर तक चुपचाप कामाख्यानाथके मुँहकी ओर देखती रही। उसके उज्ज्वल नेत्र क्रमशः और भी अधिक उज्ज्वल होने लगे और नीले आकाशके प्रकाशमान् शुक्रके समान चमकने लगे। उसके मुखका वह भाव और उसकी वह दृष्टि देखकर कामाख्यानाथ कुछ भयभीतसे हो गए। उन्होंने सोचा कि इस बालिकाके साथ तर्क करनेमें मैं जो इतना विचलित और क्रुद्ध हो गया, यह ठीक नहीं हुआ।

परन्तु फिर उन्होंने सोचा कि बिना कहे भी तो काम नहीं चल सकता था। यह भार तो मुझे अपने सिरसे उतारना ही पड़ेगा। उन्होंने कुछ शान्त स्वरसे कहा—अच्छा, अब तुम जाओ। रात अधिक हो गई है। अब मैं भी चलता हूँ।

कात्यायनीने सहसा कुछ कठोर और अभिमानपूर्ण स्वरमें कहा—आप जाइए और अपने ज्योतिषी, उपयुक्त वर और सब लोगोंको बुला लाइए। मुझे जो कुछ कहना है, वह मैं उन सब लोगोंके सामने ही कह दूँगी।

कामा०—फिर वही बात! तुम भी बड़ी विलक्षण लड़की हो! भला जरा मैं भी तो सुनूँ कि तुम्हें क्या कहना है?

कात्या०—मैं उन लोगोंसे कह दूँगी कि मेरा ब्याह हो गया है। मेरे पिताजी मरते समय मुझे जिसके हाथ समर्पित कर गए थे, वही अधर्म करके फिरसे मेरा ब्याह करना चाहते हैं।

कामाख्यानाथकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया और उन्हें सारा विश्व घूमता हुआ जान पड़ने लगा। उन्हें ऐसा जान पड़ने लगा कि कोई भारी भूकम्प आया है जिससे सारा संसार बेतरह हिल रहा है। जल और स्थलको घोर अन्धकारमें एकाकार करके पूर्णिमाका चन्द्रमा एक भारी मेघसे ढक गया। कामाख्यानाथ चकित होकर चुपचाप बैठे रहे। कात्यायनी भी उसी तरह गंगा किनारे जलसे बिलकुल सटी हुई खड़ी रही। दोनों इस प्रकार निस्तब्ध थे मानो वज्रपात हो गया हो। प्रकृति भी बिलकुल निर्वाक् और निस्पन्द हो रही थी। उसके वक्षसे निरन्तर उत्पन्न होनेवाला शब्द मानो सहसा बन्द हो गया था। जलसे भरी हुई जाह्नवीकी अविराम छल छल और कल कल ध्वनि मानो किसी माया-मन्त्रके प्रभावसे बिलकुल बन्द हो गई थी। सब चर और अचर मानो

कोई शब्द सुननेके लिए कान उठाए चुपचाप खड़े थे; परन्तु आकाश जल या स्थलमें कहीं कोई शब्द नहीं होता था। सदा चंचल रहनेवाली प्रकृति मानो सहसा विकल हो गई थी।

कात्यायनीने उस मृत नीरवताको शब्दमयी करते हुए धीरे धीरे कहा—आपको जो कुछ कहना था वह सब कह चुके न? अब मैं जा सकती हूँ?

अब मानो कामाख्यानाथको होश आया। उनके कण्ठसे धीरे धीरे स्वर निकला—तुम्हें यह बात किसने बतलाई? तुम्हारी यह बड़ी भारी भूल है, बिलकुल ही मिथ्या धारणा है।

कात्या०—मिथ्या नहीं है। मैं उनके मनका भाव बहुत अच्छी तरह जानती हूँ। आपकी जन्मपत्री देखकर उनके मनमें कुछ ऐसी ही धारणा हुई थी जिससे—

कामा०—इस विषयमें शुरूसे अन्ततक भूल ही भूल है। जन्मपत्री देखकर इस प्रकारकी धारणा करनेवाला एक परमात्माको छोड़कर और कोई दूसरा नहीं है। वे कभी ऐसा पागलपन—

कात्या०—इसे आप पागलपन मत कहें। हाँ, यह सम्भव है कि उनका यह विश्वास भ्रमपूर्ण हो। लेकिन मेरे तो वे विधाता ही थे। वे मेरे लिए जो विधान कर गए हैं, वही मुझे सिर आँखों ग्रहण करना पड़ेगा।

कामा०—लेकिन उन्होंने तो कभी एक बार भी यह बात मुँहसे नहीं कही। इसका कोई आभास भी उन्होंने—

कात्या०—दिया था। लेकिन उनकी वह बात मेरे सिवा और कोई समझ नहीं सका था। उन्होंने जिस उपायका जिक्र किया था, वह यही उपाय था।

कामा०—लेकिन यह तो कोई उपाय ही नहीं है। ऐसी बात उन्होंने कभी नहीं कही थी। उनके सरीखे धार्मिक व्यक्तिके द्वारा ऐसा होना कभी सम्भव नहीं है। तुमने झूठ ही—

कात्या०—उन्होंने वह बात अपनी इच्छासे नहीं कही थी। उनसे जहाँ तक हो सका था वहाँ तक उन्होंने उसे गुप्त ही रखा था। उन्होंने आपको और तरहसे समझा बुझाकर मेरे विवाहका प्रयत्न करनेसे रोकना ही चाहा था। परन्तु मरनेसे कुछ ही देर पहले बेहोशीमें उनके मनकी वह छिपी हुई इच्छा आप ही आप प्रकट हो गई थी। मैंने उसी समय समझ लिया था कि आप लोगोंमेंसे किसीने उनके उस समर्पणका अभिप्राय नहीं समझा था। मेरी भी कभी आपको यह बात समझानेकी इच्छा नहीं थी। लेकिन आज आपने मेरे परित्राणका कोई उपाय ही नहीं छोड़ा, इसलिए विवश होकर मुझे यह बात कहनी पड़ी।

कामा०—क्या उस समर्पणका यही अर्थ था? यह बिलकुल असम्भव है। इससे बढ़कर असम्भव और कोई बात हो ही नहीं सकती। भला ऐसा कभी हो सकता है?

कात्या०—आप इतना घबरा क्यों रहे हैं? पिताजीने तो आपसे कभी अधर्म करनेके लिए कहा नहीं। वे तो अपनी बात अपने मनमें ही गुप्त रखकर चले गए। उन्हें जो कुछ समझाना था वह मुझे ही समझा गए हैं। उस बातके साथ न तो आपका कोई सम्बन्ध ही है और न आपका कोई उदारदायित्व ही। आप निश्चिन्त रहें, यह बात और किसीको मालूम नहीं होगी। मैं आपको केवल यही समझा देती हूँ कि आप उनकी अविवाहित कन्याके विवाहके लिए यत्न करके अधर्म मत कीजिएगा। मेरे सम्बन्धमें आप यही समझ लीजिएगा कि मैं विवाहिता हूँ अथवा पिताजीकी आज्ञासे सदा कुमारी हूँ। मुझसे

इस प्रकारकी बातें कहना भी पाप है। मेरे सम्बन्धमें पिताजीने आपपर कोई भार नहीं रखा है और मैं भी जन्मभर आपपर किसी बातका भार नहीं डालूँगी। आपके धर्ममें किसी प्रकारका आघात नहीं पड़ेगा, इससे आप बिलकुल निश्चिन्त रहें। और साथ ही मुझे भी थोड़ीसी निश्चिन्तता दीजिए जिससे मुझे आगे कभी आपके द्वारा इस प्रकार विव्रत न होना पड़े। मैं आपको समझा देती हूँ कि मेरे लिए अब आप किसी प्रकारकी चेष्टा न कीजिएगा।

कामाख्यानाथ कुछ और कहना चाहते थे, पर उनके मुँहसे आवाज नहीं निकलती थी। बात उनके मुँहतक आकर रह गई थी। कात्यायनी सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर जाने लगी। चार पाँच सीढ़ियाँ चढ़कर उसने देखा कि पत्थरकी मूरतकी तरह कोई सामने खड़ा है। कात्यायनीने चकित होकर देखा कि वह रमा थी। अब तक कामाख्यानाथ और कात्यायनी दोनोंमेंसे एकको भी इस बातका पता नहीं था कि रमा वहाँ आकर खड़ी है और सब बातें सुन रही है।

इतने बड़े प्रतिष्ठित और प्रौढ व्यक्तिके सामने भी अब तक कात्यायनीने जिस लज्जाका अनुभव नहीं किया था, रमाकी उपस्थितिके कारण उसने उसी लज्जाके आघातका अनुभव किया। पहले तो वह खड़ी रहकर कुछ स्थिर हुई और फिर वस्त्रसे मुख और मस्तक अच्छी तरह ढककर सीढ़ियोंके एक ओरसे धीरे धीरे ऊपर चढ़ने लगी। रमा भी उसके पीछे पीछे चली। सीढ़ियोंके ऊपरवाले फर्शपर पहुँचकर रमाने धीरेसे कहा—जरा खड़ी रहो। पर कात्यायनीने मानो रमाकी बात सुनी ही नहीं और वह जल्दी जल्दी मन्दिरकी ओर बढ़ी। जिस समय वह अपनी माँके पास पहुँची उस समय उसका सारा शरीर काँप रहा

था। माताने अपनी कन्याके मुखकी ओर देखकर और उसके मस्तक-पर हाथ फेरकर पूछा—कात्यायनी, क्या हुआ? तुम्हारी तबीयत तो ठीक है न?

कात्या०—नहीं, चलो माँ घर चलें।

माता—घर चलोगी? अभी तो कीर्त्तन हो रहा है।

कात्या०—नहीं, मेरी तबीयत बहुत खराब है। मुझसे बैठा नहीं जायगा।

माता—तभी तुम्हारा सिर गरम है। जान पड़ता है कि तुम्हें बुखार आया है। रमा, जरा देखो कात्यायनीको बुखार आया है। अब हम लोग घर जायँगी।

रमा—बुखार आया है? जरा देखूँ तो।

ज्यों ही रमाने कात्यायनीका ललाट छूनेके लिए हाथ बढ़ाया, त्यों ही कात्यायनी जल्दीसे खिसककर अपनी माँके पीछे चली गई और बोली—नहीं, बुखार नहीं आया है, पर सरदी बहुत लग रही है। बैठा नहीं जाता। चलो, माँ चलें।

रमाने थोड़ी देर तक उसकी ओर देखकर कहा—अच्छा तो फिर जाओ। अन्दाजसे मालूम होता है कि पानी आना चाहता है। आज शायद कीर्त्तन न हो सकेगा। सभी लोगोंको घर जाना पड़ेगा।

कात्यायनी अपनी माँके कन्धेपर हाथ रखकर उसीके सहारे घर चली गई। रमा कुछ चिन्तित होकर एक बार गोविन्ददेवकी ओर और फिर कात्यायनीके जानेके मार्गकी ओर देखने लगी। वह भी मानो किंकर्तव्यविमूढ़ होकर चारों ओर रास्ता ढूँढ़ रही थी।

बाहरसे किसीने कहा—अरे देखो, कैसा बादल आ रहा है! बिजली भी खूब चमक रही है, जोरोंका पानी आना चाहता है!

रमाने जल्दीसे जंगलेके पास आकर देखा कि चारों ओर इतना घोर अन्धकार छाया हुआ है कि कोई कह ही नहीं सकता कि आज पूर्णिमाकी रात है। पृथ्वीने अपने आपको घोर अन्धकारसे चारों ओरसे ढक लिया था। चारों ओरसे बड़े बड़े बादल आकर आकाशमें छाए जाते थे। ऐसा जान पड़ता था कि वे अभी पृथ्वीको डुबाकर रसातल पहुँचा देंगे। विश्वको ध्वंस करनेमें समर्थ उन बादलोंको कोई अदृश्य हाथ मानो जोरसे कोड़ोंसे मार रहा था और वह उन्मत्त बादल असह्य पीड़ासे तीव्र गर्जन कर रहे थे। हू हू शब्द करती हुई प्रचंड वायु मानो प्रमत्त होकर पृथ्वीके शरीरसे लग रही थी और दो चार धक्कोंमें ही उसे उलट पुलट देनेके लिए जोर लगा रही थी।

रमा मन्दिरसे जल्दीसे बाहर निकलकर घाटकी ओर दौड़ी। पर बीचमें ही किसीने उसे रोककर कहा—हैं! ऐसे समयमें तुम घाटकी ओर कहाँ जा रही हो? पर रमाने उसकी बात नहीं सुनी। वह दौड़कर फर्शपर जा पहुँची और जोरसे पुकारने लगी—बाबूजी, बाबूजी, बाबूजी।

कामा०—अरे तुम ऐसे समयमें मन्दिरसे बाहर कैसे निकल आईं? चलो, मन्दिरमें चलो। भला मेरे लिए डर किस बातका?

इतना कहते कहते कामाख्यानाथने कन्याको अपने पास खींच लिया और मन्दिरकी ओर बढ़े। इतनेमें कई नौकर छाता और लालटेन लेकर उनके पीछे उपस्थित हो गए थे; पर उन लोगोंकी सहायताकी आवश्यकता नहीं पड़ी। कामाख्यानाथ उन लोगोंके पहुँचनेसे पहले ही मन्दिरमें पहुँच गए।

डरी हुई बालिका अपने पिताके पास खड़ी हुई काँप रही थी। उपस्थित आत्मीयोंमेंसे एकने उसे खींचकर अपने पास करना चाहा

था, पर वह और भी अपने पितासे सटकर खड़ी हो गई और बोली बाबूजी, इतना पानी कहाँसे आ गया? यह क्या हो गया?

कामा०—भला इसमें डरनेकी कौनसी बात है!

रमाने देखा कि कामाख्यानाथके मुखपर असाधारण गम्भीरता छाई हुई है।

उधर पानी बरसनेके कारण मन्दिरमें बड़ी गड़बड़ी मची हुई थी। जोरसे हवा चलनेके कारण सब झाड़ और फानूस आदि एक दूसरेसे टकराकर ठक ठक कर रहे थे और उनमेंसे कुछ झन झन शब्द करते हुए टूट भी गए थे। सब नौकर चाकर हाथमें लालटेनें और दूसरे दूसरे सामान लिए हुए इधरसे उधर दौड़ रहे थे। गाने बजानेवाले अपना अपना साज सामान जल्दी जल्दी समेट रहे थे। दर्शक और श्रोता लोग अपने सामने जिसका जूता पाते थे पहनकर घरकी ओर दौड़े चले जाते थे। कुछ लोग जूता पैरमें न पहनकर हाथमें ही लिए हुए चले जाते थे। पर बालक कुछ भी भयभीत नहीं थे। वे बहुत प्रसन्नतापूर्वक गाते जाते थे—"काल कलौटी उज्ज्वल धोती, काले मेघा पानी दे।" आदि आदि।

यह सोचा गया था कि अब कल सबेरे कीर्तन होगा, इसलिए गाने बजानेवालोंके लिए रात भर वहीं मन्दिरमें ठहरनेकी व्यवस्था कर दी गई। आगत लोगोंमेंसे जो लोग भागकर घर नहीं जा सके थे, उन्हें किसी तरह उनके घर पहुँचानेका बन्दोबस्त किया गया। इतना सब कुछ करके कामाख्यानाथ अपनी रिश्तेदार स्त्रियों और रमाको लेकर मकानकी ओर चले। रमाका वह लँगड़ा बालक भी उस समय वहीं मन्दिरके आँगनमें उपस्थित था। उसने रमासे कुछ प्रसाद माँग लिया था। वही

प्रसाद खाकर और दरीका एक कौना बिछाकर वह वहीं सो रहा। वहाँ उसके लिए संगी साथियोंका कोई अभाव नहीं था।

कई नौकर चाकर लालटेन लेकर आगे पीछे चल रहे थे। रमा अपने पिताकी बाँह पकड़े हुए डरती हुई धीरे धीरे चल रही थी। उस समय भी हवा बहुत जोरोंसे चल रही थी। रास्तेमें इधर उधर जो झोंपड़ियाँ आदि बनी हुई थीं, वे इस प्रकार हिल रही थीं कि मानो अभी जमीनपर गिर पड़ेंगी या उड़ जायँगी। थोड़ी देरमें कात्यायनीका मकान भी आ गया। उसे देखकर रमाने कहा—बाबूजी, इसी घरमें न कात्यायनी रहती है? अगर यह घर गिर पड़े तो?

कामाख्यानाथने रमाकी इस बातका कोई उत्तर न दिया। उन्मत्त झंझाके ताण्डव नृत्यमें वे अपनी लड़कीको सँभालते हुए बड़े कष्टसे आगे बढ़ रहे थे। ऐसा जान पड़ता था कि अन्धकारमयी प्रकृतिकी ओर देखकर वे यह सोच रहे थे कि इस प्रकृतिके कानोंमें भी कोई ऐसी ही असंगत बात पहुँची है जो इसकी प्रकृतिके विरुद्ध है और इसी लिए वह बहुत ही क्रुद्ध होकर पृथ्वीको नष्ट भ्रष्ट कर देना चाहती है। जब पिताने रमाकी बातका कोई उत्तर नहीं दिया तब उसने आप ही आप कहा—नहीं, यह उसके सोनेकी कोठरी नहीं है। ऐसे अन्धड़में तो इस तरहके लोगोंपर न जाने कितनी आपत्तियाँ आती होंगी। कौन किसकी खोज खबर लेता है?

कामाख्यानाथने उत्तर दिया—वही जो यह अन्धड़ चलाता है!

आठवाँ परिच्छेद ।

महेन्द्रने स्वयं अपनी इच्छासे कामाख्यानाथकी जमींदारीमें तनख्वाहपर नौकरी की थी सही; लेकिन फिर भी अभी तक यह निश्चय नहीं हुआ था कि वह कहाँ रहेगा और क्या काम करेगा। उसे नायबके सहकारीका पद मिल गया था और वह प्रत्येक गाँव तथा ताल्लुकेमें घूमता फिरता था। दीवानजी कहा करते थे कि इससे महेन्द्रकी जानकारी इतनी बढ़ गई है कि अगर यह सदरमें हमारा सहकारी होकर रहे और यहीं काम करे, तो बहुत अच्छी तरह सब काम चल सकता है। उन्हें आशा थी कि ऐसा समझदार और होशियार सहकारी पाकर मैं जमींदारीका सब काम और भी अच्छी तरह चला सकूँगा। और फिर महेन्द्र भी यथेष्ट उच्च पदपर रहेगा। कामाख्यानाथको भी इसमें किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं हो सकती थी। जब वे यह देखते थे कि महेन्द्र अर्थकरी शिक्षाकी ओर मन लगा रहा है, तब वे बहुत प्रसन्न होते थे और चाहते थे कि यह इसी विषयमें यथेष्ट उन्नति करे। पर महेन्द्र सदरमें रहनेके लिए किसी तरह राजी ही न होता था। उसके रुखसे यह नहीं माल्रम होता था कि पदवृद्धि या आर्थिक लाभकी ओर उसका कुछ भी ध्यान है। हाँ, काम सीखने और समझनेके लिए अवश्य उसका एकान्त आग्रह दिखाई देता था। इसी लिए वह सहकारी दीवान, नायब या गुमाश्ता आदि होनेके लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं करता था और इधर उधर चारों तरफ घूमता फिरता था। इससे जमींदारीके काममें अपेक्षाकृत कुछ अधिक सुभीता होता था, इस लिए दीवानके सन्तोषकी भी कोई सीमा नहीं थी और इसी लिए दीवानजी प्रायः लोगोंसे कहा भी करते थे कि अगर किसी

समय मैं न रहा, तो महेन्द्र मेरे स्थानकी बहुत अच्छी तरह पूर्त्ति कर लेगा और जमींदारीका सारा काम बहुत मजेमें सँभाल लेगा। पर महेन्द्रके इस तरह चारों ओर घूमते रहनेके कारण गाँवों और ताल्लुकोंके स्थानीय कर्मचारी बहुत अधिक असन्तुष्ट और दुखी रहा करते थे। सब लोग यह बात बहुत अच्छी तरह जानते थे कि महेन्द्र जमींदार बाबूके यहाँ बिलकुल घरके आदमियोंकी तरह रहता है और उनके साथ इसका बहुत आपसदारीका बरताव है। इस लिए सब लोगोंके मनमें सदा इस बातका डर बना रहता था कि कहीं कामकाजमें हमारी कोई गलती या असावधानी न पकड़ी जाय और उसके फलस्वरूप कहीं हमारी नौकरी न चली जाय। दुष्ट कर्मचारियोंको सदा इस बातका भी भय बना रहता था कि प्रजाको हम लोग जो कष्ट देते हैं और उनके साथ जो जबरदस्ती करते हैं कहीं उसका पता महेन्द्रको न लग जाय और हमपर कोई आफत न आ जाय। यद्यपि ऊपरसे सब लोग महेन्द्रके प्रति बहुत अधिक सम्मान प्रकट किया करते थे, तथापि उन लोगोंका भाव महेन्द्रके प्रति अनुकूल नहीं रहता था। परन्तु महेन्द्रका इन सब बातोंकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं था। वह बराबर अपने काममें ही लगा रहता था। जहाँ वह काम अधिक देखता था वहीं कुछ दिन ठहर जाता था और जहाँ उसे कोई काम नहीं दिखाई देता था वहाँसे उसे भागते देर न लगती थी। इधर प्रायः छः महीनेसे वह इसी प्रकार अपना समय बिता रहा था। इधर दो तीन दिनसे अचानक निरंजनने उसके पास आकर बड़ी गड़बड़ी मचा रखी थी। महेन्द्रने भी यह बात अच्छी तरह समझ ली थी कि निरंजन इस प्रकारके जीवनसे मेरा उद्धार करनेके लिए ही सहसा मेरे पास आ पहुँचा है। इसी लिए वह निरंजनको यह समझानेकी चेष्टा करता था कि इस प्रकार रहकर

ही मैं आगे चलकर विशेष उन्नति कर सकूँगा और यथेष्ट द्रव्य भी उपार्जित कर सकूँगा। परन्तु निरंजन उसकी ये सब बातें माननेके लिए तैयार नहीं होता था। वह कहता था, क्या केवल पद लिखकर तुम वह उन्नति नहीं कर सकते? तुम इन सब कामोंमें क्यों आ फँसे? क्या इस कामको छोड़कर तुम्हारी उन्नतिका और कोई मार्ग नहीं था?

महेन्द्रने धीरे धीरे उत्तर दिया—क्या यह मार्ग कुछ बुरा है? केवल काम करने और रुपए कमानेसे ही तो मतलब है न? जब मैं इस प्रकार काम करके धन कमा सकता हूँ और जब कि विशेषतः भविष्यमें इसमें अच्छी उन्नति होनेकी सम्भावना है, तो फिर इससे अच्छा और कौनसा मार्ग हो सकता है?

निरंजनने मानो कुछ अधीर होकर कहा—भाई महेन्द्र, धन कमानेकी बात तो रहने दो। संसारमें तुमपर कोई ऐसा बहुत बड़ा भारी भार नहीं है जिसके लिए तुम्हें इसी समय बहुत अधिक धन कमानेकी आवश्यकता हो। और फिर किसीको इस बातका विश्वास भी नहीं हो सकता कि केवल धनके लिए ही तुम इतना परिश्रम करते और कष्ट उठाते हो। और जो तुम उन्नतिकी बात कहते हो सो मैं समझता हूँ कि तुम जिस काममें लगते उसीमें यथेष्ट उन्नति कर सकते थे। इसलिए इस समय तो केवल इसी बातपर विचार करना चाहिए कि तुमने जो मार्ग ग्रहण किया है वह अच्छा है या बुरा। भला तुम्हीं बतलाओ कि ज्ञान उपार्जित करनेमें जो विशुद्ध आनन्द आता है, क्या उसकी अपेक्षा भी विशेष आनन्द इस तहसील और चलान, बाकी बकाया वसूल करने और अदा करने, सरकारी लगानकी किस्तें दाखिल करने और बही खाता तथा हिसाब किताब रखनेमें आ सकता है?

महेन्द्रने पहलेकी ही भाँति अनुत्तेजित स्वरमें कहा—निरंजन, यदि तुम आनन्दकी बात कहते हो तो इसका उत्तर यही है कि कामके साथ आनन्दका क्या सम्बन्ध है? काम तो जीवनकी सब चिन्ताओंको भुलानेके लिए किया जाता है। फिर उसमें आनन्द क्यों ढूँढ़ा जाय?

नि०—महेन्द्र बाबू, भला तुम भी कैसी बातें करते हो! काममें आनन्द है, इसी लिए काम संसारमें अभी तक टिका हुआ है। आनन्दके साथ कामका बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है।

महे०—पर मेरी समझमें तो यह बात नहीं आती। काम सदा कामके ही उद्देश्यसे किया जाता है। यह सम्भव है कि किसीको भाग्यसे कामके साथ ही साथ आनन्द भी मिल जाता हो; परन्तु कार्यके साथ आनन्दका कोई निर्दिष्ट और आवश्यक सम्बन्ध नहीं है। काम तो इस संसारका मार्ग है। इसी मार्गसे सब लोगोंको अपनी जीवनरूपी गाड़ी ले चलनी पड़ती है। अब इसमें दुःख या सुख मिलना केवल मनुष्यके भाग्यपर निर्भर करता है, स्वयं कार्यपर कुछ भी निर्भर नहीं करता।

नि०—नहीं, नहीं महेन्द्र बाबू, तुम भूल करते हो। कार्यपर मनुष्यकी केवल जीवन-यात्रा ही नहीं बल्कि उसका इहलोक और परलोक सभी कुछ निर्भर करता है। हमारे यहाँके मनस्वी लोग तो मनुष्यके इन कार्योंको जन्म जन्मान्तर तक घसीट ले गए हैं। क्या तुम 'नमस्तत् कर्मेभ्यः' वाली बात भूल गए?

महे०—नहीं, मैं यह बात भूला नहीं हूँ। पर साथ ही तुम्हें यह बात भी समझ रखनी चाहिए कि यदि तुम्हारी यह बात मान ली जाय कि कामका जन्म जन्मान्तरके साथ जो सम्बन्ध है वह लाख प्रयत्न करने पर भी मैं इस जन्ममें तोड़ नहीं सकता, और जिस परमात्माने

अव्यक्त कारण या अदृष्टके नामसे मेरा समस्त जीवन ग्रस्त कर रखा है, उसीके आदि अन्तहीन कर्मजालके सामने अपना यह व्यक्त जीवन समर्पित कर देने और जो कुछ वह दे केवल उसीको अपना प्राप्य अंश समझनेके सिवा इस संसारमें मेरे लिए और कोई बात चाहने कहने या सोचनेके योग्य नहीं रह जाती, तो यह बात मेरी समझमें नहीं आती और न उसके सम्बन्धमें मुझमें इतना अधिक विश्वास और आस्था ही है कि मैं इस तरहकी बातें सोचकर और उसी अदृष्ट या अव्यक्त शक्तिपर श्रद्धा भक्तिके साथ निर्भर रहकर हाथ बाँधे हुए चुपचाप बैठा रहूँ।

नि०—परन्तु यह तो सोचो महेन्द्र बाबू, मनुष्यकी इच्छाओंका कहीं कोई अन्त भी है। मनुष्यको यह जो अनेक प्रकारके पदार्थोंका अभाव जान पड़ता है वह मनुष्यके जन्मके साथ ही साथ उत्पन्न होता है और इसकी निवृत्ति मनुष्यके मरनेपर ही होती है। ऐसी दशामें जीवनमें जिसके हाथसे कभी निस्तार न हो, उसका जितना ही कम व्यवहार किया जाय उतना ही अच्छा है। अभावका बोध ठीक रबड़की थैलीके समान है। जिस समय मनुष्य जन्म लेता है उस समय उसके साथ ही साथ उसमें यह अभाव एक बहुत ही छोटेसे बीजके रूपमें वर्तमान रहता है। उसपर इच्छाकी जितनी ही हवा दी जाय, उतना ही वह रबड़की थैलीकी तरह फूलता और बढ़ता जाता है। धीरे धीरे उस अजगरके पेटमें मनुष्यके मनकी और सब वृत्तियाँ जाकर समा जाती हैं। इसी लिए मैं कहता हूँ कि मनुष्य अपने इस अभावसम्बन्धी ज्ञानको जितना ही घटा सके, उतना ही उसका अधिक कल्याण है।

महेन्द्र०—मैं यह बात मानता हूँ; परन्तु इस प्रकारका जो बोध मनुष्यके जीवनमें उत्पन्न होता है और जो और सब बातोंको बिलकुल

नगण्य कर देता है, वह बोध मनुष्यके अधिकारके बाहर होता है और उसपर उसका कोई जोर नहीं चल सकता। अब उस बोधको चाहे तुम वृत्ति कहो, चाहे स्वभाव कहो और चाहे प्रकृति कहो।

नि०—मैं यह मानता हूँ, कि उस बोधपर सहजमें मनुष्यका कोई जोर नहीं चलता; परन्तु फिर उसे जैसे तैसे अपने वशमें लाना ही पड़ता है। उसपर अपना जोर चलाना ही पड़ता है। एकान्त चेष्टावान् मनुष्यको परमात्माने एक ऐसी स्वाधीन और स्वतन्त्र शक्ति दी है जिसकी सहायतासे वह इस अदम्यका भी दमन कर सकता है।

महेन्द्रने जोरसे हँसते हुए कहा—जरा ठहरो निरंजन बाबू, ठहरो। इस तरह तर्क करते करते तो हम लोग पागल हो जायँगे। चेष्टा करनेसे जिसपर जोर चल सकता है उसे अदम्य नहीं कहा जा सकता। जो पदार्थ मनुष्यपर प्राणवायुकी भाँति अधिकार रखता हो, केवल उसीको अदम्य कह सकते हैं। तुम तो अभी और कुछ कहना चाहते हो; पर मैं अब तुम्हारी बातें नहीं सुनूँगा। और यदि तुम कुछ कहोगे तो मैं यहाँसे भाग जाऊँगा। अब इन सब बातोंको जाने दो। चलो चलकर कहीं घूम फिर आवें।

निरंजन कुछ दुखी होकर चुप हो गया। परन्तु साथ ही यह जानकर उसे आनन्द भी हुआ कि महेन्द्रके साथ पहले पहल परिचय होनेपर हम लोगोंमें परस्पर मित्रताका जो सम्बन्ध स्थापित हुआ था उसी सम्बन्धके नाते महेन्द्र ये सब बातें कह रहा है। निरंजनकी अपेक्षा महेन्द्र अवस्थामें कुछ बड़ा था, दोनोंका परिचय हुए भी अभी थोड़े ही दिन हुए थे और उनमें मित्रताका सम्बन्ध स्थापित हुए तो और भी थोड़े दिन हुए थे। निरंजन ये सब बातें बहुत अच्छी तरह जानता था। साथ ही वह यह भी जानता था कि इधर कुछ दिनोंसे वह

सम्बन्ध भी विच्छिन्न सा होता जा रहा है। परन्तु आजकी बात चीतसे उसे ऐसा जान पड़ा था कि हम लोगोंका वह विस्मृत सम्बन्ध महेन्द्रको स्मरण आ रहा है और इसी लिए उसे विशेष आनन्द हुआ था। महेन्द्र अवस्थामें निरंजनसे तीन चार बरस बड़ा था और दोनोंकी शिक्षा आदिमें भी विशेष अन्तर था। आधुनिक उन्नत शिक्षामें महेन्द्रकी अपेक्षा निरंजन ही बढ़ा चढ़ा था। परन्तु इस सुदर्शनकान्ति और अल्पभाषी युवकके चरित्रमें निरंजनको कोई ऐसी बात दिखलाई देती थी जो उसे और कहीं नहीं मिलती थी।

दोनों टहलते हुए गाँवके रास्तेसे चलने लगे। प्रातःकालके अरुण आलोककी शोभा पगडंडियों, घाटों, जंगलों और मैदानोंपर झलमल करती हुई पड़ रही थी। निरंजनकी मुग्ध आँखें जल स्थल और आकाशपर पड़ रही थीं। परन्तु जब वह आँखें महेन्द्रके मुखपर पड़ती थीं तब वह विस्मित हुए बिना नहीं रहता था। महेन्द्रकी दृष्टि केवल अपने चलनेके रास्तेपर ही पड़ रही थी। ऐसा जान पड़ता था कि वह दृष्टि केवल उस पथको ही देखना चाहती है, संसारके और किसी पदार्थके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है और न उसे अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिए और कोई वस्तु ही है। निरंजन बड़ी प्रसन्नतासे अनेक प्रकारकी बातें कहता हुआ चलता था। शरत्कालकी सबेरेकी हवा रह रहकर उसका मन एक संगीतकी ओर खींच ले जाती थी। केवल महेन्द्रका निस्तरङ्ग और निस्तब्ध अन्तरबाह्य ही निरंजनको एक गूढ़ चोट पहुँचाकर प्रबुद्ध रखता था। निरंजन अनेक प्रकारकी बातें कहता था; पर महेन्द्र केवल 'हाँ' या 'ना' कहकर ही वे सब बातें टालता चलता था। अभी थोड़ी देर पहले निरंजन यह आशा करके बहुत प्रसन्न हो रहा था कि हम लोगोंका मित्रताका सम्बन्ध फिरसे जागरित

हो रहा है; परन्तु अब उसे ऐसा जान पड़ने लगा कि उस सम्बन्धके फिरसे जागरित होनेकी कोई सम्भावना ही नहीं है। इधर कुछ दिनोंसे निरंजनके साथ महेन्द्र प्रायः वैसा ही व्यवहार रखने लगा था, जैसा कोई नौकर अपने स्वामीके साथ रखता है और इस प्रकार दोनोंके बीचमें एक प्रकारकी रुकावटसी खड़ी होने लगी थी। यद्यपि आज वह रुकावट कुछ अस्पष्टसी होने लगी थी; परन्तु फिर भी दोनोंके बीचमें एक परदेके रूपमें वर्तमान ही थी। निरंजन भी धीरे धीरे प्रकृतिके आकर्षणसे हटकर मनुष्यके आभ्यन्तरिक रहस्यजालमें निमग्न होने लगा। उसका प्रफुल्ल मन धीरे धीरे विषण्ण होने लगा।

परन्तु यह विषण्णता भी क्षणिक ही निकली। प्रकृतिके साथ जिन लोगोंका वास्तविक और हार्दिक सम्बन्ध होता है, वे मनमें हजार विप्लव उत्पन्न होनेपर भी वह सम्बन्ध तोड़ नहीं सकते। गाँवमें एक ओर कमलोंसे भरी हुई एक बहुत लम्बी चौड़ी झील थी जो बिलकुल नदीके समान जान पड़ती थी। उसके किनारे पहुँचते ही निरंजन मारे आनन्दके चिल्ला उठा—देखो महेन्द्र बाबू, ऋतुसंहारमें शरत्की शोभाका जो वर्णन है वह यहाँके लिए कितना फबता है—

स्वच्छप्रफुल्लकमलोत्पलभूषितानि
मन्दप्रभातपवनोद्गतवीचिमाला।

कैसी सुन्दर झील है! और यह भिन्नांजनकान्तिमनोज्ञनभः राजाके सदृश प्रतीत होता है—

क्वचिद्रजतशंखमृणालगौरैस्त्यक्ताम्बुभिर्लघुतया शतशः प्रयातैः।
संलक्ष्यते पवनवेगचलैः पयोदै राजेव चामरवरैरुपवीज्यमानः॥

केवल यही नहीं, इस झीलको भी हम एक रानी कह सकते हैं। इसमें भी काँसके चँवर और हंसोंके वैतालिक हैं। किसी बातकी कमी नहीं है।

और फिर चारों ओर अपक्क शालिधान्यका मखमली बिछौना भी बिछा हुआ है। भाई महेन्द्र, यह तो मानना ही पड़ेगा कि तुमने शरत् लक्ष्मीके ठीक पैरोंके नीचे ही डेरा लगाया है। जान पड़ता है कि इसीके लाल-चमें पड़कर शहरकी ओर जानेको तुम्हारा जी नहीं चाहता।

महेन्द्र केवल हँसा। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने फिर उसी उदास दृष्टिसे उस झीलकी ओर एक बार देखा; परन्तु उसके स्वच्छ जलकी नील कान्ति अथवा असंख्य खिले हुए लाल कमल उसकी उस दृष्टिको रंजित न कर सके। निरंजनने कुछ देर स्तब्ध नेत्रोंसे उसकी ओर देखते हुए अन्तमें कहा—तुम जिस रास्तेपर जा रहे हो, जान पड़ता है कि उस रास्तेके कारण ही तुम ये सब बातें बिलकुल भूल गए हो। जिस समय तुम्हारे साथ मेरा पहले पहल परिचय हुआ था, उस समय तुम कुछ और ही तरहके थे। संस्कृतका कोई ऐसा काव्य नहीं था जिसके दस पाँच अच्छे अच्छे श्लोक तुम्हें कंठस्थ न हों। क्या अब भी तुम्हें वे श्लोक याद हैं?

महे०—नहीं भाई, उन सबको भूलनेके लिए ही तो मैं अब काममें लगना चाहता हूँ।

नि०—परन्तु क्या तुम बतला सकते हो कि इस कार्यमें कुछ सुख या आनन्द भी है? मैं तो समझता हूँ कि यदि तुम किसी स्कूलमें पढ़ाईका काम करने लगते, तो भी उसमें इसकी अपेक्षा कहीं अधिक सुख मिलता।

महेन्द्र०—तुम फिर वही सुख और आनन्दकी बात ले आए। जो आदमी सुख न चाहता हो, उसके लिए सबसे अच्छा मार्ग यही है।

नि०—जब कि सुख ढूँढ़ना जीव मात्रका ही धर्म है, तब अवश्य ही तुम्हें भी सुखकी आकांक्षा होगी। मैं तो समझता हूँ कि जब तुम्हें

वह सुख नहीं मिला, तभी तुम संसारकी सब बातोंके लिए खड्गहस्त हो गए हो। लेकिन फिर भी तुम्हें अब एक बार यह बात अच्छी तरह सोच लेनी चाहिए कि—

महे०—बस बस, रहने दो। यह बात तो तुम पहले ही मान चुके हो कि सुख पानेकी इच्छा करना मनुष्य मात्रका धर्म है। जो बात मनुष्यको इस प्रकार धारण करके बैठी हो, उसपर मुझे विचार करनेके लिए क्यों कहते हो? इसके बाद तो और कुछ सोचने विचारनेकी जगह ही नहीं रह जाती। नीति शास्त्रकी दुहाई देकर मनुष्य चाहे कितनी ही बातें क्यों न कह जाय, पर अन्तमें उसे यह बात माननी ही पड़ेगी कि जीवका स्वाभाविक धर्म ही सबसे बढ़कर है।

निरंजनने धीरे धीरे उत्तर दिया—परन्तु मनुष्य उस स्वभावका भी दमन करके उसे स्ववशमें—अपने वशमें ला सकता है। यहीं आकर मनुष्यमें और अन्य जीवोंमें भेद पड़ता है।

महे०—किसके वशमें? इसको अपने वशमें कहना भूल है। स्व अर्थात् उसका आत्मा जो चाहता है, उसके बिलकुल विपरीत दिशामें, अर्थात् केवल मनुष्यके बनाए हुए कितने ही वचनोंके वशमें? निरंजन, मैं मनुष्यके इतने वशमें नहीं हूँ। यदि वशमें ही होना पड़े, तो मैं केवल उसीके वशमें होना चाहता हूँ जो मेरी सब बातें जानता और समझता है। नीतिशास्त्रमें कही हुई बातोंको जब तक मनुष्यका अन्तर स्वीकार न करे, तब तक मैं उनका कोई मूल्य ही नहीं समझता। लेकिन निरंजन, तुम इतने दुःखी क्यों हो रहे हो? मैं तो मजेमें ही हूँ। मैं जिस प्रकार जन्मसे ही दूसरेके आश्रयमें पला हूँ, घर-बार और धन-सम्पत्तिसे शून्य हूँ, आत्मीयों और स्वजनोंसे हीन हूँ, उसे देखते हुए क्या मैं सदा

सुखका जीवन बिता सकता था ? अब जब तक मैं किसी काममें न लगूँ, तब तक मेरी उन्नति कैसे हो सकती है ? यदि तुम यह समझते हो कि मैं पढ़ने लिखनेमें लगा रहकर ही सुखी हो सकता था, तो फिर यह बतलाओ कि धनसे कौन कहाँ तक मेरी सहायता करता ? यदि मनुष्य इस संसारमें आकर धन संचित न करे, तो उसका सारा जीवन ही व्यर्थ हो जाता है। काव्यका प्रेम मनुष्यके व्यावहारिक जीवनको बहुत ही अकर्मण्य और शक्तिहीन कर देता है। मान लिया कि किसी समय मेरा सारा जीवन काव्यगत और भावगत था; पर क्या सदा उसे उसी अवस्थामें रखनेसे काम चल सकता है ? यह बात भी जाने दो। इसमें एक और दोष है, जरा उसपर भी विचार करो। तुम ठहरे मेरे मालिकके लड़के। अब यदि तुम भावुकताके फेरमें पड़कर मेरे साथ इस प्रकार बातें करोगे, तो मुझे इस बातका भी ध्यान न रह जायगा कि तुम मेरे मालिकके लड़के हो।

महेन्द्रकी यह बात सुनकर निरंजनको बहुत अधिक दुःख हुआ। उसके मुँहसे बहुत दुःखित भावसे निकला—'महेन्द्रबाबू—' इसके आगे उससे और कुछ न कहा गया। महेन्द्रने स्नेहपूर्वक उसका हाथ पकड़ लिया और कुछ व्यथित स्वरमें कहा—भाई, मुझे क्षमा करो। यद्यपि तुम अवस्थामें मुझसे छोटे हो; परन्तु फिर भी अपने स्नेहके बल-पर और अपनी मित्रताके विचारसे मैं तुमसे हँसी मजाक कर लेता हूँ और उसी स्नेहके कारण विवश होकर मैं तुम्हें वह चीज देता हूँ जो संसारमें और किसीको नहीं दे सकता। सुनो, मैं तुमसे एक बात कहता हूँ। मेरे जीवनके साथ साधारण मनुष्योंके जीवनकी तुलना नहीं हो सकती। मैं अपनी इस दीनताकी बात और किसीसे नहीं कह सकता। आज तक मुझे संसारमें एक भी ऐसी चीज नहीं मिली जिसे मैं अपनी

कह या समझ सकूँ। यदि मैंने कभी कहीं कोई चीज अपनी समझ भी ली, तो अन्तमें मुझे अपनी भूल ही दिखाई दी। संसारमें कार्यके अतिरिक्त और कुछ भी सत्य नहीं हैं, इसी लिए मैंने कार्यको ही अपने जीवनका एक मात्र लक्ष्य रखा है। इसके लिए तुम व्यर्थ ही दुखी मत हो।

निरंजनने अपने मनमें अच्छी तरह समझ लिया कि किसी बड़े सांसारिक आघातने ही महेन्द्रके जीवनको ऐसे कठोर पथपर लगाया है। इसी लिए चाहे जैसे हो वह एक गण्यमान्य व्यक्ति बनना चाहता है। यद्यपि उसके कामोंसे कोई ऐसी बात नहीं जानी जाती थी, तो भी उसकी अन्तिम बातोंसे सरल हृदयवाले बीस वर्षके नवयुवक निरंजनने यही बात समझी। उसने समझ लिया कि पराए आश्रयमें रहने और दूसरोंकी दयाकी आशा करनेसे जो अपवाद होता है, उस अपवादको पूर्ण रूपसे मिटानेके लिए ही महेन्द्रने इस प्रकारका जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया है। ऐसी अवस्थामें पड़े हुए व्यक्तिके लिए यह बात बहुत ही स्वाभाविक भी है। इस बार पहले तो उसने यही सोचा था कि जैसे होगा मैं अपनी मित्रताके बलसे महेन्द्रको अपने साथ खींच ले जाऊँगा; परन्तु अब उसकी समझमें भली भाँति आ गया कि ऐसा करना उचित न होगा।

झीलकी अगाध नील जलराशिकी ओर देखकर निरंजनने कहा—वर्षा कालमें सैर करनेके लिए यह बहुत ही अच्छी जगह है। किसी मछुएकी नाव मँगवा ली जाय और चलो, चलकर थोड़ी दूर तक नदीमें सैर कर आवें।

महेन्द्रने चारों ओर देखकर कहा—मछुएकी नावपर चलोगे? नहीं, यह ठीक नहीं होगा। ठहरो, अगर हो सकता हो, तो मैं कोई और इन्तजाम करूँगा।

दोनोंने अच्छी तरह इधर उधर देखा। थोड़ी ही दूरपर एक बहुत बढ़िया बड़ी सी नाव बँधी थी। महेन्द्रने कहा—अगर यह नाव मिल जाय, तो बहुत अच्छा हो।

निरंजनने रोककर कहा—नहीं नहीं, इतनी बड़ी नाव लेकर क्या करेंगे? कोई छोटी डोंगी मिल जाय, तो बहुत अच्छा हो।

परन्तु महेन्द्रने उसकी बातपर ध्यान नहीं दिया और वह उसी नावकी ओर चल पड़ा। लाचार होकर निरंजनको भी उसके पीछे पीछे चलना पड़ा। नावके पास पहुँचकर महेन्द्रने मल्लाहको आवाज दी—माझी! ए माझी!

माझी नावकी गलहीपर बैठा हुआ तमाखू पी रहा था, इसलिए पहले तो उसने महेन्द्रके बुलानेपर कोई ध्यान नहीं दिया; पर जब कई बार आवाज पड़ी तब उसने कुछ विरक्त होकर उन लोगोंकी ओर देखा।

महे०—नाव किराएपर ले चलोगे?

माझीने बहुत ही गम्भीर स्वरमें कहा—नहीं।

महे०—अरे सबेरेसे बैठे तो खाली तमाकू ही पी रहे हो। जरा थोड़ी दूर चले चलो, कुछ मिल ही जायगा।

माझीने कोई उत्तर नहीं दिया। महेन्द्रको कुछ आशा हुई। उसने फिर कहा—ज्यादा दूर नहीं जाना पड़ेगा। हम लोग यों ही थोड़ी दूर तक घूमेंगे। इनामके लिए फिक्र मत करो। बोलो, चलोगे?

माझीने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया। वह दूसरी ओर मुँह करके तमाकू पीने लगा। निरंजनने महेन्द्रके हतप्रभ मुखकी ओर देखकर हँसते हँसते कहा—अब तो तुम्हारा नावका शौक पूरा हो गया

न ? अब आओ चलो, देखो वह सामने एक मल्लाह मछली पकड़नेके लिए नाव खोल रहा है। चलो, चेष्टा कर देखें, अगर वही दया कर दे, तो बड़ी अच्छी बात हो।

महेन्द्रको कुछ क्रोध आ रहा था। वह माझीको फिरसे समझाना चाहता था। परन्तु निरंजनने उसे रोक दिया। पास ही एक छोटी डोंगी बँधी थी, जिसपर दो मल्लाह बैठे हुए थे। वे इन लोगोंकी यह दुर्दशा देख रहे थे। उनमेंसे एक बोल उठा—बाबूजी, वह एक जमींदारकी नाव है। वह किराएपर नहीं जाती। आप देखते तो हैं कि वह मारे मिजाजके सीधी तरहसे बात भी नहीं करता।

महे०—जमींदारकी नाव है ? इसी गाँवके जमींदारकी या और किसी दूसरेकी ?

माझी—जी नहीं, इस गाँवके जमींदारकी नहीं है, किसी औरकी है।

निरं०—खैर उसे जाने दो। यह बतलाओ कि तुम हम लोगोंको थोड़ी दूर तक ले चल सकते हो ?

माझीने कुछ कुंठित स्वरमें उत्तर दिया—जी, ले क्यों नहीं चल सकते ? लेकिन नाव जरा छोटी है। चार आदमियोंका बोझ यह नहीं सँभाल सकेगी।

महेन्द्रने कहा—खैर तीन आदमियोंका बोझ तो सह लेगी न ? तुम खाली इन्हींको ले जाओ। जाओ निरंजन, थोड़ी दूरतक घूमकर चले आना। ज्यादा दूर मत जाना। मैं यहीं तुम्हारे आसरे ठहरता हूँ।

माझियोंको कुछ अप्रसन्न देखकर निरंजन जल्दीसे बोल उठा—वाह, भला यह भी कहीं हो सकता है। व्यर्थ इन लोगोंके कामका हर्ज होगा।

महे०—तुम भी कैसी लड़कपनकी बातें करते हो। आज यह लोग मछली नहीं पकड़ेंगे तो क्या हो जायगा? इनका जो नुकसान होगा वह आकर इन्हें दे दिया जायगा। तुम थोड़ी देरतक इधर उधर घूमकर अपना शौक तो पूरा कर लो।

नि०—तुम तो चलोगे ही नहीं। मेरी भी कुछ ऐसी बहुत अधिक इच्छा नहीं है। रहने दो, अब मैं नहीं जाऊँगा।

माझी इस समय तक यही समझ रहे थे कि ये लोग कोई ऐसे वैसे आदमी नहीं हैं। इसी लिए वे लोग बहुत आग्रह प्रकट करने लगे। उनकी व्यग्रता देखकर महेन्द्रने कहा—बेचारोंका इतनी देर तक यों ही हर्ज हुआ। ये अपने कामपर भी न जा सके।

नि०—इसकी क्या चिन्ता है। इन लोगोंका जो नुकसान हुआ है, वह इन्हें दे दिया जायगा।

लेकिन माझी लोग किसी तरह कुछ लेनेके लिए राजी न हुए। उनमेंसे एकने कहा—जी नहीं, भला यह भी कोई बात है। अगर आप लोग घूमने जाते तो हम लोग खुशीसे इनाम ले लेते। खाली इतनी देरतक बात करनेका भला हम क्या ले सकते हैं? हम लोग छोटे आदमी हैं, तो क्या हुआ, इतना तो समझते हैं।

उन लोगोंको लौटते हुए देखकर महेन्द्रने व्यस्त होकर निरंजनसे कहा—जाओ न, थोड़ी दूरतक घूम आओ। अधिक दूर न जाना। बेचारे यों ही फिरे जाते हैं।

निरंजन भी कुंठित हो रहा था, इसलिए निरंजनको कुछ और कहनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी। निरंजन अकेला डोंगीपर जा बैठा। महेन्द्रने कहा—जरा तुम लोग होशियार रहना।

माझी—जी नहीं सरकार, कुछ डरकी बात नहीं है। यह डोंगी तो जलजीव है—दिन रात पानीमें ही रहती है। और हम लोग भी पानीमें ही रहते हैं। हम लोग डूबना तो जानते ही नहीं, सदा तैरते ही रहते हैं। हमारी डोंगीकी भी यही बात है।

माझीके इस अभय वचनसे महेन्द्र और निरंजन दोनों हँसे पड़े। माझी लोग बड़ी प्रसन्नतासे अपने उस जलके जीवको झीलके अगाध जलकी ओर ले चले और धीरे धीरे वे दूर होते गए।

महेन्द्र वहीं चुपचाप खड़ा खड़ा शरत्के नीले आकाशमें चलते हुए छोटे छोटे सफेद बादलोंको देखता रहा। थोड़ी देरमें उसे पीछेसे मनुष्य-कण्ठ सुनाई दिया। उसने मुड़कर देखा कि पास ही कुछ आदमी आ रहे हैं। वे लोग महेन्द्रकी ओर ही आ रहे थे और उनके साथ भले घरकी दो तीन स्त्रियाँ भी थीं, इसलिए महेन्द्र वहाँसे हटकर पास ही आमके कुछ वृक्षोंकी ओटमें हो गया और वहीं श्याम-शष्पसे आच्छादित आसनपर बैठकर झीलकी ओर देखने लगा। निरंजन डोंगीपर बैठा हुआ क्रमशः दूर चला जा रहा था। महेन्द्रने समझ लिया कि जब निरंजनको लाचार होकर नावपर जाना ही पड़ा है, तब वह बिना अच्छी तरह अपना शौक पूरा किए न लौटेगा। इसलिए वह भी एक वृक्षके तनेपर सिर टेककर अलस भावसे बैठ गया और उसकी आँखें झपने लगीं।

इतनेमें कुछ वाद-विवाद होता हुआ सुनाई दिया, जो क्रमशः और अधिक स्पष्ट होता गया। महेन्द्र अपनी झपती हुई आँखें खोलनेका प्रयत्न करने लगा। परन्तु उसकी आँखें सहजमें नहीं खुलती थीं। इसलिए जब उसके प्रबुद्ध मनने और कोई उपाय न देखा, तब विवश

होकर कानपर ही प्रबल भावसे अधिकार करना आरम्भ किया। महेन्द्र सुनने लगा कि कोई पुरुष जोर जोरसे किसीसे कुछ कह रहा है और एक स्त्री कभी तो कुछ तीव्र स्वरसे और कभी 'किंकर्तव्यविमूढ़' होकर कोमल स्वरसे उसका प्रतिवाद कर रही है। बीच बीचमें और भी दो तीन आदमी दोनों ओरसे कुछ कहा सुनी कर रहे हैं। धीरे धीरे उस पुरुषका स्वर और भी उत्तेजित हो चला। उसने कहा—मैं आपके साथ इतना तर्क वितर्क नहीं कर सकता। अब आप साफ साफ यह बतलाइए कि आप अपनी लड़कीको साथ लेकर नावपर चढ़ेंगी या नहीं?

स्त्री कुछ जिद करती हुई कह रही थी—नहीं, मैंने तो परेशको यही कहकर भेजा था कि मैं स्वयं आऊँगी; कमलाको अपने साथ नहीं लाऊँगी। वह मेरी बुआके पास रहेगी।

पुरुष—मैं यह सब कुछ नहीं जानता। मुझसे उन्होंने जो कुछ कह दिया है, मैं वही करना चाहता हूँ।

स्त्री—जब मैं ही उसे नहीं ले जाऊँगी, तब उसे कौन ले जा सकता है? हरीकी माँ, तुम कमलाको घर ले जाओ।

पैरकी झाँझरके झुन झुन शब्दके साथ किसी बालिकाके मधुर कण्ठसे निकला—माँ, तुम जाकर नावपर बैठ जाओ। जब नाव दूर चली जायगी और दिखाई नहीं देगी, तब मैं घर चली जाऊँगी।

स्त्री—नहीं बेटी, तुम अभी चली जाओ। तुम्हारी दादी घरपर अकेली होंगी। मैं तो दो तीन दिनमें ही आ जाऊँगी, फिर क्या डर है? जाओ मेरी रानी बेटी, तुम घर चली जाओ।

उस स्त्रीके शंकासे काँपते हुए कंठस्वरने महेन्द्रकी आँखें खोल दीं। महेन्द्रने देखा कि सब लोग उसी बढ़िया नावके पास खड़े हुए हैं।

जलसे थोड़ी ही दूरपर बाल-चन्द्रमाके समान खिली हुई एक बालिका एक वयस्का स्त्रीकी कमर पकड़े हुए व्यग्रता और दीनतापूर्वक उसके मुखकी ओर देख रही है। वह वयस्का स्त्री भी सिर झुकाए हुए उसी बालिकाकी ओर देख रही है। वह एक हाथसे तो उसके छोटे छोटे बिखरे हुए बाल समेट रही है और दूसरे हाथसे उसका प्रातःकालके खिले हुए फूलके समान मुख पकड़कर अपने कलेजेके पास लगाए हुए है। महेन्द्रके कुतूहली नेत्र माता और कन्याकी इस बिदाईका दृश्य देखनेमें इतने मुग्ध हो गए कि वे स्थान, काल और पात्र आदिका विचार भूलकर स्तब्ध भावसे उन्हीं दोनोंकी ओर देखते रह गए। उसे इस बातका भी ध्यान न रह गया कि इस प्रकार छिपकर देखता हुआ मैं भले घरकी इन स्त्रियोंका अपमान कर रहा हूँ। ऐसा जान पड़ता था कि प्रचुर स्नेहधारासे पूर्ण प्रौढ़ा भादोंकी प्रकृति जननीके समान बड़े प्रेमसे बाला शरत् लक्ष्मीको अपने हरे अंचलके आसनपर स्थापित करके उसका ललाट चूमती हुई उससे बिदा हो रही है। महेन्द्र अपने मन-ही-मनमें इस दृश्यकी इसी प्रकार तुलना कर रहा था।

पुरुषने कठोर स्वरसे फिर कहा—चलिए चलिए, अब देर मत कीजिए। लड़कीको साथ लेकर नावपर चढ़िए।

कन्या चौंक पड़ी। माताने उसे खींचकर और भी अपने पास कर लिया और कहा—बेटी, तुम जाओ न, डर काहेका है? हरीकी माँ, तुम कमलाको साथ लेकर घर जाओ। बूआसे कह देना कि वह ध्यान रक्खें और तुम भी ध्यान रखना। कमलाको बूआके पास ले जाकर सौंप देना। इसकी जिद देखकर इसे अपने साथ यहाँ लाना ही ठीक नहीं हुआ। जरासी कठोर बात सुनते ही यह डर जाती है। जाओ, बेटी कमला, तुम घर जाओ।

एक स्त्रीने जो देखनेमें दासीके समान जान पड़ती थी आगे बढ़कर कहा—नहीं बेटी, डर काहेका है? आओ चलो, घर चलें। माँ भी वहाँसे होकर जल्दी ही चली आवेंगी।

लड़कीने लाचार होकर माताकी छातीपरसे सिर उठाया। आँसुओंसे भरे और छल छल करते हुए नेत्रोंसे माताके मुखकी ओर देखते हुए और माताके ढीले बाहु-बन्धनसे धीरे धीरे मुक्त होते हुए ज्यों ही वह आगे बढ़ना चाहती थी त्यों ही उस पुरुषने बहुत बिगड़कर कर्कश स्वरसे कहा—क्यों लड़क-खिलवाड़ कर रही हैं? मैं आपको सीधी तरहसे समझाकर कहता हूँ, हाथ जोड़कर कहता हूँ, व्यर्थ तर्क वितर्क न करें। लड़कीको साथ लेकर नावपर सवार हों। नहीं तो—

माताने कुपित नागिनकी तरह सिर उठाकर कहा—नहीं तो फिर तुम क्या करोगे? गोपीनाथ, तुम जानते हो कि मैं किसकी पुत्रवधू हूँ? तुम परेशके तनख्वाह पानेवाले नौकर हो और मैं उसकी मामी हूँ। तुम मुझे डराने आए हो?

गोपीनाथके बेहूदेपनपर महेन्द्रको भी कुछ क्रोध आया और वह यह जाननेके लिए उसकी ओर देखने लगा कि आखिर यह मामला क्या है। उसने देखा कि उस स्त्रीके क्रोधपूर्ण और तीव्र वाक्य सुनकर गोपीनाथ कुछ सहम गया, पर फिर भी उसने अपनी जिद नहीं छोड़ी। पहलेकी अपेक्षा कुछ नरम होकर वह बोला—जी, यह बात तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ। मैं कुछ आपको भय थोड़े ही दिखला रहा हूँ। मैं तो हाथ जोड़कर कह रहा हूँ और आप शायद यह बात नहीं जानती हैं कि परेश बाबू मेरे भी भाई होते हैं। क्या वह किसी मामूली नौकरको आपको बुलानेके लिए भेज सकते हैं? क्यों हाबूकी माँ, तुम

बहुत दिनोंसे उनके यहाँ हो, इसी लिये उन्होंने तुम्हें भेजा है। और मैं भी घरका ही आदमी हूँ, इसी लिए उन्होंने मुझे भेजा है। क्यों यही बात है कि नहीं ?

गोपीनाथने अपनी आत्मीयता जतलानेका जो प्रयत्न किया था, उस पर किसीने कुछ भी ध्यान न दिया और न उसकी हामी भरी। यह देखकर उसने फिर कहा—बहन, तुम जाओ मत, चलो नावपर बैठो। देखो तुम्हारी माँ बुला रही हैं, आओ, लौट आओ।

कन्या चलती चलती कुछ रुक गई और लौटना ही चाहती थी कि उसने देखा कि माता हाथसे संकेत करके उसे लौटनेसे मना कर रही है। इसलिए वह फिर घाटसे ऊपरकी ओर चलने लगी। यह देखकर गोपीनाथने फिर माताकी ओर देखते हुए कठोर स्वरसे कहा—अगर आप भला चाहती हों तो लड़कीको बुला लीजिए, नहीं तो—

उस स्त्रीने शान्त स्वरसे कहा—फिर तुम वही डर दिखलाते और धमकाते हो ? यह मेरा मायका है, मेरा अपना देश है, तुम्हारे ऐसा नौकर यहाँ क्या कर सकता है ?

गोपी०—तब फिर मुझे बिलकुल वही करना होगा जो दीवानजीने मुझसे कहा है। आप देखती हैं कि मेरे साथ कई आदमी हैं। मैं सीधी तरहसे कहता हूँ, हाथ जोड़कर कहता हूँ, लड़कीको साथ लेकर नावपर सवार होइए। लेकिन अगर आप मेरी बात नहीं मानेंगी तो फिर जैसे होगा मुझे हुकुमकी तामील करनी ही पड़ेगी।

स्त्री—तो क्या तुम जबरदस्ती हम लोगोंको ले जाओगे ? तुम जानते हो कि मेरी भी यहाँ कुछ हैसियत और इज्जत है। मेरे बाबूजीके यहाँ भी तुम्हारी तरह नौकर चाकर हैं। मैंने अपनी ही मूर्खतासे

अपनी ऐसी दुर्गति कराई है। पर अब मैं देखती हूँ कि तुम कैसे हम लोगोंको जबरदस्ती ले जाते हो।

वह स्त्री पीछे मुड़कर खड़ी हो गई और वृद्धाको सम्बोधन करके बोली—हाबूकी माँ, अगर मेरे ससुरजी अभी तक जीते हों तो उनसे जाकर मेरा प्रणाम कहो और उनसे कहो कि मैं अपने अभाग्यके कारण उनके चरणोंके दर्शन नहीं कर सकी। उन्होंने मुझे इतने दिनोंके बाद बुलाया भी, लेकिन मेरा ऐसा अभाग्य है कि उनकी अन्तिम अवस्थामें भी मैं उनके चरणोंकी धूल अपने माथेपर न लगा सकी।

उस वृद्धाने कुछ अस्पष्ट रूपसे न जाने क्या क्या बड़ बड़ की और अपने मस्तकपर हाथ रखा। स्त्रीने और किसी ओर नहीं देखा और सीधे अपनी कन्याके पास जाकर कहा—चलो बेटी, डर किस बातका है? चलो, घर चलें।

नावके दो तीन माझियों और बरकन्दाजकी तरहके एक आदमीको साथ लेकर गोपीनाथ लपकता हुआ जल्दीसे माता और कन्याके सामने जा खड़ा हुआ और गरजकर बोला—देखिए, मैं फिर कहता हूँ, आप इज्जतसे लौटकर चली चलिए और नावपर सवार हो जाइए और नहीं तो—

बालिका मारे आतंकके जोरसे अपनी माताके गलेसे लिपट गई जिससे माताका आगे बढ़ना रुक गया। दासी इतना अधिक डर गई थी कि वह चिल्ला भी न सकी और थर थर काँपने लगी। माताने भी भयभीत होकर कन्याको जोरसे पकड़कर गलेसे लगा लिया और एक बार अपने चारों ओर देखा। न तो वहाँ कोई आदमी ही दिखाई देता

था और न वृक्षोंकी ओटमें होनेके कारण वहाँसे बस्ती ही दिखाई देती थी। सामने झील और नदीमें कई नावें पाल उड़ाती हुई चली जाती थीं जो देखनेमें सफेद पक्षियोंके समान जान पड़ती थीं। माताने कहा—बेटी कमला, तो फिर डर किस बातका है। चलो, तुम्हारे भइयाके घर ही चलें।

कन्याने बहुत ही आर्त स्वरसे रोते हुए कहा—नहीं माँ, चलो घर चलें।

कन्याके पीले पड़े हुए और शंकित मुखपर धीरे धीरे हाथ फेरते हुए माताने कोमल स्वरसे कहा—नहीं बेटी, डरनेकी कोई बात नहीं है। भगवान् हम लोगोंकी रक्षा करेंगे। वहाँ तुम्हारे भइया हैं ही। चलो यहाँ इन छोटे आदमियोंसे बात चीत करनेसे कोई लाभ न होगा।

गोपीनाथने दाँत निकालकर हँसते हुए कहा—हाँ हाँ, ठीक है। चलिए चलिए। जल्दी कीजिए।

इतनेमें महेन्द्र भी वृक्षोंकी ओटसे निकलकर बाहर आ गया और कन्या तथा माताके सामने आकर बोला—आप लोग या तो जरा ठहर जायँ, या जैसे पहले मकान जा रही थीं वैसे ही चली जायँ। जब आप लोग नहीं जाना चाहती हैं, तब आप लोगोंकी इच्छाके विरुद्ध कोई आप लोगोंको नावपर नहीं चढ़ा सकता।

तीन चार आदमी जोरसे चिल्ला उठे—अरे तुम कौन होते हो? तुम कौन हो?

गोपीनाथने चिल्लाते हुए कठोर स्वरसे कहा—तुम कौन होते हो? क्या हम लोग इनको नावपर चढ़ाकर नहीं ले जा सकेंगे? बड़े आए कहींके लाट साहब। यह हुकुम कहीं और जाकर चलाना। भला चाहो तो जाओ, अपने चरखेमें तेल दो।

महे०—खबरदार, मुँह सँभालकर बातें करना। तुम भी जाकर यह डकैती कहीं और करना।

गोपीनाथ कुछ शंकित होकर रुक गया। उसने एक बार महेन्द्रकी ओर सिरसे पैर तक भली भाँति देखा। उसका विस्तृत ललाट, उदार मुखकान्ति, दीर्घ देह और विशाल अंग देखकर गोपीनाथको कुछ भय सा मालूम हुआ। इतनी देर तक स्त्रियोंपर वह जो वीरता प्रकट कर रहा था, अब उसकी वह वीरता बिलकुल संकुचित हो गई थी। उसने कुछ सहमते हुए कहा—आप तो भले आदमी जान पड़ते हैं। शायद आप इस घटनाके सम्बन्धमें पूरी पूरी बातें नहीं जानते। सुनिए—

महे०—जी नहीं, रहने दीजिए। आपको व्यर्थ कष्ट करनेकी आवश्यकता नहीं है। मैंने अब तक जो कुछ समझा है, वही यथेष्ट है। (वयस्का स्त्रीसे) माताजी, आप इस कन्याको लेकर आनन्दसे अपने घर चली जाइए। कोई आपको रोक नहीं सकेगा।

स्त्री—भइया तुम कौन हो ? इस समय मुझे इस भारी अपमानसे बचानेके लिए ही भगवानने तुम्हें यहाँ भेजा है।

महेन्द्रने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया,—जी, यह परिचयका समय नहीं है। इस समय आप घर चली जायँ।

गोपी—महाशय, आप चाहे जो हों, पर—

महे०—जी, यह तो आप देख ही रहे हैं कि मैं भी आप ही लोगोंकी तरह एक मामूली आदमी हूँ। आप अपने इस बरकन्दाज और माझियोंके जोरपर इन स्त्रियोंके साथ जो अत्याचार कर रहे थे, उसका दंड देनेके लिए मैं अकेला ही काफी हूँ। मुझे और कोई आदमी बुलानेकी जरूरत नहीं होगी।

गोपी०—लेकिन आप सब हाल नहीं जानते। तब बिना जाने आप ऐसी बातें क्यों कहते हैं? आप जानते हैं कि मैं एक जमींदारका आदमी हूँ। आप और आदमियोंको बुलानेकी बात फजूल कहते हैं। इस गाँवके जो नायब हैं, वे मेरे सम्बन्धी हैं। यह बात अच्छी तरह समझ रखिएगा, अगर मैं चाहूँ तो अभी यहीं दस आदमियोंको बुलवा सकता हूँ।

महे०—हूँ। शायद इसी भरोसे तुम दूसरे जमींदारके इलाकेमें दिन दहाड़े डाका डालने आए हो? अगर यही बात हो तो फिर तुम देर मत करो। मैं यहीं पेड़के नीचे बैठता हूँ। तुम अपने सम्बन्धी नायबको बुलवा भेजो। वह अपने आदमियोंको लेकर आवें। जाओ देर मत करो। (वयस्का स्त्रीसे) माताजी, अब आप क्यों व्यर्थ यहाँ खड़ी हैं? आप लोग जरा भी मत डरिए और मजेमें घर चली जाइए।

स्त्री—भइया, बिना तुम्हारा परिचय पाए मैं यहाँसे नहीं जा सकती। मैं इसी गाँवकी लड़की हूँ और यहाँके सब लोगोंको जानती हूँ। लेकिन तुम्हें मैंने आज तक कभी यहाँ नहीं देखा। तुम कौन हो, पहले यह मुझे बतला दो।

महे०—मेरे सम्बन्धमें परिचय देने योग्य कोई बात नहीं है। मैं एक मामूली आदमी हूँ।

स्त्री—जो हो, पर जब तक मैं जान न लूँगी तब तक मुझे सन्तोष न होगा।

महे०—अच्छी बात है, तो फिर मैं किसी समय आपसे मिल लूँगा। अब आप घर—

स्त्री—मैं श्रीउमाकान्त वन्द्योपाध्यायकी लड़की हूँ। तुम उन्हींका नाम लेकर पूछना। इस गाँवमें जिससे पूछोगे, वही तुम्हें मेरा घर

दिखला देगा। बेटा, मुझसे एक बड़ी भारी भूल हो गई थी जिसके कारण मुझे यह अपमान सहना पड़ा।

महे०—अब आप इस समय घर जायँ। मैं आपके मकानपर आकर सब बातें अच्छी तरह सुनूँगा।

कन्याका जी अब कुछ कुछ ठिकाने आ चला था। उसका हाथ पकड़कर वह स्त्री अपनी दासीके साथ वहाँसे चल पड़ी। गोपीनाथ और उसके सब साथी हक्के बक्के खड़े रह गये। उनकी ओर देखकर महेन्द्रने कहा—अब तुम लोग यहाँसे जाओगे या बड़े घर जानेका इरादा है?

गोपीनाथको डरते देखकर उसके सब साथी भी डर गए थे। गोपीनाथ सोच रहा था कि आज मैं अनजानमें एक ऐसे आदमीके सामने पड़ गया, जो इस गाँवके नायबसे भी नहीं डरता। इसलिए अब यहाँसे चुपचाप अपने इलाकेमें भाग चलना चाहिए, नहीं तो न जाने यहाँ कौनसी आफत आवे। इस आदमीमें इतनी शक्ति भी हो सकती है कि अनुचित रूपसे अत्याचार करनेके कारण यह मुझे जेल भी भेज सकता है। गोपीनाथने कुछ रुकते रुकते कहा—लेकिन आप यह तो अच्छी तरह समझ सकते हैं कि मालिककी आज्ञा माने बिना काम भी तो नहीं चल सकता।

महे०—हाँ, यह तो मैं अच्छी तरह समझता हूँ। अगर तुम अपना और अपने जमींदारका नाम और पता बतला दो, तो बड़ी कृपा हो।

गोपी०—जी, यह सब तो आपको उन्हींसे माळूम हो जायगा, मुझसे पूछकर क्या कीजिएगा? अब हम लोग भी यहाँ व्यर्थ समय नष्ट करना नहीं चाहते। इसीको ग्रहदशा कहते हैं। आए थे किसी और कामसे और यहाँ हो गया कुछ और ही। उन्होंने बड़े आदरसे मामीको

बुलानेके लिए भेजा था। लेकिन यहाँ औरतोंका मामला था, इसलिए एक नया ही बखेड़ा खड़ा हो गया। अब बाबूजी आप ही आवेंगे और हाथ पैर जोड़कर जिस तरह होगा मामीको मनाकर लड़कीसमेत अपने साथ ले जायँगे। भला, आपसके लोगोंका झगड़ा कहीं ज्यादा दिनोंतक चल सकता है ?

गोपीनाथकी इन चतुरतापूर्ण बातोंपर महेन्द्रको बहुत हँसी आई। तो भी जहाँतक हो सका उन्होंने गम्भीरताका अवलम्बन किया और चुपचाप उन लोगोंका रंग-ढंग देखते रहे। मार खाये हुए कुत्तेकी तरह गोपीनाथ अपने सब साथियोंके साथ धीरे धीरे जाकर नावपर सवार हो गया और नाव वहाँसे खुल गई। महेन्द्रको यह नहीं मालूम था कि वास्तवमें इसके अन्दर और कौन कौनसी बातें हैं। और फिर उस समय उसके साथ और कोई संगी साथी भी नहीं था, इसलिए उसने उन लोगोंके जानेमें किसी प्रकारकी बाधा देना उचित न समझा। अब वह स्थान बिलकुल निर्जन हो गया था और कोई ऐसा आदमी नहीं था जिससे वह बात चीत करता। इसलिए वह निरंजनके आसरे वहीं बैठ गया। थोड़ी देरमें उसे फिर नींद आने लगी और वह आँखें बन्द करके उसी हरी भरी भूमिपर सो गया।

नवाँ परिच्छेद।

दो तीन दिन बाद निरंजन अपने घर लौट जानेका उद्योग करने लगा। उसने सोचा था कि जब महेन्द्र मेरे साथ घर नहीं चल रहा है, तब वह कमसे कम मुझसे और दो चार दिन तक यहाँ ठहरनेके लिए अनुरोध करेगा। परन्तु महेन्द्रका उस प्रकारका कोई

भाव नहीं दिखाई दिया, इसलिए मन-ही-मन वह कुछ दुखी हुआ। लाचार होकर उसीको महेन्द्रसे पूछना पड़ा—क्यों भाई महेन्द्र, दुर्गा-पूजा तो आ गई। अब क्या तुम घर नहीं चलोगे?

महे०—घर? भला तुम्हीं बतलाओ कि मेरा घर ही कहाँ है?

महेन्द्रकी यह बात सुनकर निरंजनको बड़ा भारी आघात सा लगा और वह बिलकुल चुप हो रहा। थोड़ी देर बाद कुछ सोचकर उसने कहा—जिस घरमें तुम जन्मसे आज तक रहे हो, जिसमें रहकर इतने बड़े हुए हो, वही तुम्हारा घर है।

महेन्द्रने कोई उत्तर नहीं दिया, वह केवल हँसकर चुप हो रहा।

निरंजनने फिर कहा, लेकिन मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूँ। मैं जितनी बात देखता हूँ उतनी अवश्य कहता हूँ। तुमपर उन लोगोंका स्नेह नहीं है, ऐसा तो नहीं जान पड़ता।

महेन्द्रने कुछ गम्भीर होकर कहा,—स्नेह नहीं है, यह कौन कहता है? मेरे जैसे अनाथ दरिद्र बालकका जिन्होंने इतने दिनोंतक इस प्रकार पालन पोषण किया, उन्हें क्या कभी कोई स्नेहहीन कह सकता है?

नि०—बात यह है कि वे तुम्हें बिलकुल अपने लड़केकी ही दृष्टिसे ही देखती हैं, इसी लिए मुझे यह बात कहनी पड़ी। तो क्या इस साल भरके त्योहारपर भी तुम उनके पास नहीं जाओगे?

पहले तो महेन्द्रने दूसरी ओर मुँह फेर लिया और फिर थोड़ी देर बाद बहुत गम्भीरतापूर्वक कहा,—मैं जाऊँगा, लेकिन पूजाके बाद विजया दशमीके दिन जाऊँगा और माँको प्रणाम कर आऊँगा।

निरंजनने कुछ दुःखित भावसे उसकी ओर देखते हुए कहा—तुम पूजा भरके लिए अपने मित्रके मकानपर ही क्यों न चले चलो? क्या मित्रका मकान तुम्हारा मकान नहीं है?

महेन्द्रने दोनों हाथ अपने मस्तकपर रखकर कहा—निरंजन, तुम मुझे अपराधी मत बनाओ। वह मेरे आश्रयदाता प्रतिपालकका घर है। मेरे लिए वह देवमन्दिरके समान है।

नि०—बाबूजीके सम्बन्धमें तुम जो चाहो सो कह लो, मुझे उसमें कुछ भी आपत्ति नहीं है। लेकिन मुझे तुम क्यों अपना मित्र नहीं समझते हो महेन्द्रबाबू? मेरे साथ क्यों इस प्रकार परायोंका सा व्यवहार करते हो?

इतना कहते कहते निरंजनका स्वर कुछ भारी हो गया और कहीं महेन्द्र यह समझ न ले, इस लज्जासे वह चुपचाप दूसरी ओर देखने लगा।

क्रमशः महेन्द्रका आश्चर्य भी बढ़ता जाता था। वह सोचता था कि मेरे जैसे सामान्य मनुष्यपर इन लोगोंका इतना अधिक स्नेह क्यों है? भला क्या मैं निरंजनका मित्र बननेके योग्य हूँ? नवीन जीवनकी चपलताके समय जिस समय पहले पहल उसका निरंजनके साथ परिचय हुआ था, या उसके साथ बात चीत करनेके समय जब उसकी ओरसे सौहार्द्यकी सूचना मिली थी, क्या उस समय महेन्द्रने अपने भविष्यके सम्बन्धमें इतनी और इस प्रकारकी बातें सोची थीं? उस समय आशा थी। पर जबसे वह आशा संकुचित होने लगी थी तभीसे वह संसारके साथ अपने सामान्य स्नेहके लेन देनका व्यवसाय बन्द करने लग गया था। उसने अपने मनमें यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि अब मैं नाम मात्रके लिए भी संसारमें किसीका स्नेह ग्रहण न करूँगा। केवल यही नहीं बल्कि अब वह किसीका मित्रताका बन्धन भी ग्रहण करनेके लिए तैयार नहीं होता था। संसारके स्नेहपरसे उसका सारा ममत्व उठ चुका था। इसी लिए वह सोचता था कि निरंजन

अब यह क्या कर रहा है। क्या उसके लिए मित्रोंका अभाव है? निरंजनके जीवनमें और मेरे जीवनमें कौनसी ऐसी समानता है जिसके कारण भाग्य लक्ष्मीका यह वरपुत्र मुझ जैसे दरिद्र युवकके साथ मित्रता स्थापित करना चाहता है? मेरे जैसे अभागेपर उसका इतना अधिक स्नेह क्यों है? और फिर स्नेह? मेरे लिए तो अब उसका नाम भी उपहास ही है। यह कभी हो नहीं सकता। यह तो एक उदार अन्त:करणका अनुग्रह मात्र है। इन लोगोंका तो यह कायदा ही है कि जिसे ये लोग अभागा और दीन समझते हैं, उसीपर इस प्रकार अनुग्रह करते हैं और दयाके कारण विह्वल हो जाते हैं। और मैं तो इस बातके अनेक प्रमाण देख चुका हूँ।

महेन्द्रने धीरे धीरे उत्तर दिया—निरंजन, मेरा जीवन ऐसे ही विचित्र पथपर चल रहा है। मुझे संसारमें ईश्वरदत्त कोई अधिकार नहीं मिला, शायद इसी लिए मैं मनुष्योंकी दया और स्नेह भी न ग्रहण कर सका। जन्मसे ही जिनकी दया और स्नेहसे मेरा यह जीवन पुष्ट हुआ है, उनके साथ भी मैं ऐसी कृतघ्नता कर रहा हूँ। और जब कि तुम इस प्रकार अयाचित रूपसे मुझपर यह स्नेह दिखलाने आ रहे हो तो कौन कह सकता है कि मैं तुम्हारे साथ भी कितनी कृतघ्नताका व्यवहार करूँगा? इसी लिए मैं तुमसे कहता हूँ भैया, तुम मुझे स्नेह-बंधनमें बाँधनेका व्यर्थ प्रयत्न मत करो। उसे मैं भी सहन न कर सकूँगा और तुमको भी उससे कष्ट ही होगा। मुझे तो यह चीज सहती ही नहीं है।

निरंजन चुप हो गया। भला ऐसी बातोंके सामने वह कह ही क्या सकता था? उसे एक बार इस बातका ध्यान आया कि मित्रताकी याचना करनेपर मुझे जो यह उत्तर मिला है क्या वह मेरे लिए अपमान-

जनक नहीं है ? क्या महेन्द्रपर मुझे क्रोध करना उचित नहीं है ? उचित तो अवश्य है. पर निरंजनको स्वयं ही इस बातका आश्चर्य हो रहा था कि मैं महेन्द्रपर क्रोध क्यों नहीं कर रहा हूँ । इसके बाद जब वह घर जानेके लिए घोड़ेपर सवार हुआ और महेन्द्र उसके साथ चलकर गाँवके बाहरतक उसे बिदा करनेके लिए आया, तब निरंजनके मुँहसे सहसा निकल गया:—"महेन्द्र बाबू, तुम चाहे जो कुछ कह लो; परन्तु मैं तुम्हें सदा अपना मित्र ही मानूँगा और उसी प्रकार तुम-पर अपना अधिकार जतलाऊँगा। इससे चाहे तुम नाराज हो और चाहे खुश।"

इसके उपरान्त निरंजनने उत्तरकी प्रतीक्षा नहीं की और अपना घोड़ा बढ़ा दिया। कुछ दूर जानेके बाद उसने पीछे मुड़कर देखा कि महेन्द्र उसी स्थानपर चुपचाप खड़ा मेरी ओर देख रहा है। वह सोचने लगा कि क्या महेन्द्र सचमुच ही इतना हृदयहीन और बर्बर है कि वह आन्तरिक सौहार्दका सम्मान नहीं कर सकता ? जब वह महेन्द्रसे अपनी अन्तिम बात कहकर घोड़ेपर चला था, उस समय उसने देखा था कि महेन्द्रकी आँखोंमें आँसू भर आए हैं और वह मेरी ओर टक लगाए देख रहा है। क्या किसी बर्बरके लिए यह बात कभी सम्भव है ? और अब तो वह मेरे रास्तेकी ही ओर दृष्टि गड़ाए चुपचाप जहाँका तहाँ खड़ा है और इतनी दूरसे भी उसका सर्वाङ्ग मानो स्पष्ट रूपसे प्रकट कर रहा है कि वह अवश्य ही बहुत व्यथित है और संसारने उसके साथ बहुत ही अविचारपूर्ण व्यवहार किया है। रास्ते भर निरंजन इसी प्रकारकी बातें सोचता रहा।

जब निरंजन आँखोंकी ओट हो गया तब भी महेन्द्र कुछ समय तक अन्यमनस्क होकर उसीके रास्तेकी ओर टक लगाए देखता रहा।

थोड़ी देर बाद वह मानो कुछ होशमें आया और उसने एक बहुत गहरी साँस ली और तब वह गाँवकी ओर चला । मिट्टीके बने हुए कई छोटे छोटे मकान पार करके वह ईंटोंके परकोटेसे घिरे हुए किसी अच्छे गृहस्थके एकमंजिले सुन्दर मकानके पाससे होकर जा रहा था कि किसीने उसे देखकर आश्चर्यपूर्वक कुछ अव्यक्त और अस्पष्ट शब्द किया । महेन्द्रने भी विस्मित होकर उस ओर देखा कि उस दर-वाजेपर वही स्त्री खड़ी है जिसे उसने उस दिन गोपीनाथके हाथसे छुड़ाया था । महेन्द्र वहाँ ठिठककर खड़ा हो गया । उसे रुकते देखकर उस स्त्रीने भी आगे बढ़कर कहा—अरे भइया, तुम हो ? मैं तो समझती थी कि अब तुम मुझे कभी दिखाई ही न पड़ोगे ।

महेन्द्रको याद आया कि उस दिन मैंने इस बातका भरोसा दिया था कि मैं शीघ्र ही तुम्हारे मकानका पता लगाकर तुमसे मिलूँगा और तुम्हारी बातें सुनूँगा; पर इधर कई दिनोंसे उसे उस बातका स्मरण होना तो दूर रहा, वह उस घटनाको ही प्रायः भूल गया था । अब सामने देखकर उसे सब बातें स्मरण हो आईं और उसने कुछ लज्जित होकर कहा—जी हाँ, मुझसे भूल हो गई । मैंने सोचा था कि मैं आपके मकानका पता लगाकर आपसे भेट करूँगा; लेकिन फिर मैं कुछ भूल सा गया था । माँ—

स्त्री—नहीं भइया, उसके लिए तुम्हें लज्जित होनेकी अवश्यकता नहीं । तुम मुझे फिर दिखाई पड़ गए यही मेरे लिए बहुत है । हम लोग तो तुमको मनुष्य ही नहीं समझती, देवता समझती हैं ।

महेन्द्रने और भी अधिक लज्जित होकर कहा—मुझसे बहुत बड़ी भूल हो गई ।

स्त्री—नहीं नहीं, कोई बात नहीं है। तो अब क्या तुम एक बार हमारे घरपर अपने चरण—

महेन्द्रने कुछ घबराकर बीचमें ही रोककर कहा—भला आप ऐसी बात क्यों कहती हैं? मैं तो आपके लड़केके समान हूँ। तिस पर मुझसे एक अपराध भी हो गया है। इतना कहते कहते महेन्द्रने झुककर उस स्त्रीके चरण छुए।

वह स्त्री कुछ पीछे हट गई और अपने कपालपर दोनों हाथ रखकर बोली—भइया, मैं तो कह रही हूँ कि हम लोग तुम्हें मनुष्यका लड़का समझ ही नहीं सकती हैं, परन्तु अब देखती हूँ कि तुम ब्राह्मणके लड़के हो। और अब जब तुमने मुझे प्रणाम किया है तब मैं तुम्हारी माँके ही समान हूँ, यह बात भी स्वीकार कर लेती हूँ। अब तो मैं अगर न भी बुलाऊँ, तो भी तुम्हें मेरे घर आना चाहिए।

महेन्द्र 'चलिए' कहकर उस स्त्रीके पीछे पीछे चला और मकानके अन्दर जा पहुँचा।

अन्दर पहुँचते ही उस स्त्रीने आवाज दी—कमला, आ, देख कौन आए हैं? आँगनमें दो तीन दास दासियाँ काममें लगी हुई थीं और एक वृद्धा उन लोगोंके कामका निरीक्षण कर रही थी। कमलाकी माँकी बात सुनकर उन सबने भी सिर उठाया। उसके साथमें एक सुन्दर अपरिचित युवकको देखकर उन सबको कुछ आश्चर्य हुआ। उनमेंसे एक दासी कुछ व्यस्त होकर बोल उठी—अरे इन्हें तुम कहाँ पा गई! हम लोगोंने तो कभी यह भी नहीं सोचा था कि ये कभी इस मकानमें भी दिखाई देंगे। मैं तो जब कभी बाहर बाजारमें या घाटपर जाती थी, तो इन्हींको ढूँढ़ा करती थी और सोचती थी कि क्या ये

इसी गाँवमें हैं ? मैं तो कहती थी कि अगर ये इस गाँवमें होते, तो क्या बिना हमारे घर आए रहते ? बहूजी, तुम्हें ये कहाँ मिल गए ? इतना कहकर वह दासी आगे बढ़ी और गोबरसे भरे हुए हाथोंसे उसने दो तीन बार सिर झुकाकर महेन्द्रको प्रणाम किया। महेन्द्रने भी उसे पहचान लिया। उस दिन घाटपर यही दासी इन लोगोंके साथ थी। दासीकी इतनी ही बातोंसे और सब लोगोंको भी महेन्द्रका परिचय मिल गया और उनके मुखों तथा आँखोंमें विस्मय और आनन्दका जो भाव प्रकट हो रहा था वह महेन्द्रने अच्छी तरह समझ लिया। वह वृद्धा स्त्री भी बोल उठी,—अरे ये तुम्हें कहाँ मिल गए ? कहाँ दिखाइ पड़ गए ? देखो न सब सूरत शकल बिलकुल देवताओंकी सी है। आओ बेटा, आओ आज हम लोगोंके लिए बड़े भाग्यका दिन है।

इतना कहकर उस वृद्धाने महेन्द्रकी यथेष्ट अभ्यर्थना की, जिससे महेन्द्र और भी अधिक लज्जित हुआ। इन लोगोंकी इतनी अधिक भक्ति देखकर वह मन ही मन बहुत घबरा रहा था। कमलाकी माने उसका वह भाव समझ लिया और हँसते हुए कहा—बूआजी, अब ये हमारे लड़के हो गए हैं। मैं शिवजीके मन्दिरसे दर्शन करके आ रही थी। ज्यों ही मैंने दरवाजेपर पैर रखा त्यों ही क्या देखती हूँ कि ये उधरसे आ रहे हैं। देखते ही मैंने पुकारा। (महेन्द्रसे) क्यों भइया, तुम्हारा नाम क्या है ?

महे०—महेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय।

स्त्री—तुम हमारी बूआको प्रणाम करो। ये तुम्हारी दादी हुई।

महेन्द्रने ज्यों ही उस वृद्धा स्त्रीके पैरोंपर सिर रखा, त्यों ही उसने

भी दोनों हाथ सिरपर रखते हुए कहा—अरे अरे अरे, यह क्या करते हो ?

महेन्द्रने कुछ सप्रतिभ होकर कहा—आप तो इनसे पहले ही सुन चुकी हैं कि आप मेरी दादी होती हैं, तो फिर मेरे प्रणाम करनेमें दोष ही क्या है ?

वृद्धा—बेटा, यह तो ठीक है। तुम जो ये सब बातें कह रहे हो, यह तुम्हारी बड़ाई ही है। इस अभागीका ऐसा भाग्य कहाँ, जो इसे तुम्हारे जैसा लड़का मिले। अगर ऐसा ही होता तो आज इसकी यह दुर्दशा कैसी होती। इसका ऐसा भाग्य कहाँ ?

लेकिन चारों ओर देखनेपर महेन्द्रको यही जान पड़ा कि यह एक अच्छे सम्पन्न गृहस्थका घर है और इसकी स्वामिनी एक दिव्य-दर्शन, सौम्य और शान्त विधवा है। उसकी दुर्दशाका कोई कारण उसकी समझमें न आया। उसने अच्छी तरह समझ लिया कि उस दिन जमींदारके उस उद्धत कर्मचारीको इसने जो अपना नौकर बतलाया था वह बिलकुल ठीक था। उस विस्तृत आँगनमें एक ओर धानके बड़े बड़े कई ढेर लगे थे, गौशालामें अच्छी अच्छी गौएँ और बछड़े बँधे थे और दूसरी ओर पक्की ईंटोंका अच्छा बड़ा मकान बना था। इन सब बातोंसे यही जान पड़ता था कि यह इस गाँवके एक अच्छे और सम्पन्न गृहस्थकी लड़की है।

महेन्द्रके कुतूहलपूर्ण नेत्रोंकी ओर देखकर बूआजीका उत्साह और भी बढ़ गया। उसकी जो अवस्था थी उस अवस्थाके आदमियोंको एक ऐसे आदमीकी बहुत जरूरत रहा करती है, जो मन लगाकर उनकी बातें सुना करे और विशेषतः ऐसी अवस्थामें जब कि वह नवागत उन लोगोंकी अवस्थासे अनभिज्ञ हो, फिर तो कहना ही क्या है ! अब

बूआजी अपनी कहानी कह चलीं,—भइया, यहाँ तो वही बात है कि अपने राज्यमें आप ही चोर । अरे कोई ऐसी वैसी बात थी । बिलकुल राजा थे राजा । जिस तरह हमारे भइयाकी यह एक लड़की महामाया थी, वैसा ही अपने बापका एक ही लड़का और वह भी राजकुमार जैसा वर इसको मिला था । और नहीं तो क्या ? भला दुनियामें कौन ऐसा होगा जो नौगाँवके जमींदारका नाम न जानता हो ? न जाने कितने हाथी और कितनी जमींदारी थी । लेकिन सब नष्ट हो गया । भाग्य फूट गया । अगर एक लड़का भी हुआ होता तो आज यह नौबत न आती । कोई पचीस वर्षकी उम्रमें यह एक लड़की कमला हुई और इसने पैदा होते ही बापको खा लिया । इसके ससुरने न जाने किस युगमें एक ब्याह किया था जिससे एक लड़की पैदा हुई थी और वह लड़की भी न जाने कब मर मरा गई थी । उसी लड़कीके पेटसे कहीं एक लड़का हुआ था । लड़कीके दुःखमें उस समय बुड्ढेकी अक्ल ठिकाने नहीं थी । बस उस लड़केने अपने नानाको हाथमें कर लिया । यह जो मेरी लड़की पहले सब कुछ थी, उसीको उसने ससुरकी आँखका काँटा बना दिया । कहाँ तो राम राजा होनेको थे और कहाँ उनको मिल गया बनवास ! जब इसका भानजा इसको बहुत दुख देने लगा, तब यह साल भरकी बच्ची कमलाको गोदमें लेकर अपने बापके घर चली आई । हाय उस दिन हमारे भइयाका दिन किस तरहसे बीता है ! अरे अभी यह कै दिनकी बात है ? अभी दस या बहुत हुए होंगे तो ग्यारह बरस हुए होंगे । अपने दामादके दुखके कारण हमारे भइया पाँच बरस भी न जी सके ।

अभी वह बुढ़िया और भी न जाने कितनी बातें कहती, पर कमलाकी माँने देखा कि अगर इसे यहीं न रोक दिया जायगा तो यह बातें करती करती सिर खा जायगी । इसलिए उसने बीचमें रोककर

कहा,—बूआ ! कमला कहाँ है ? वह कहाँ चली गई ? अभी तक आई नहीं ?

बूआ—अरे वह जायगी कहाँ ? मैं क्या उसे कभी अपनी आँखोंके ओट होने देती हूँ ? अभी तो वह ठाकुरजीवाले घरमें बैठी पूजाकी तैयारी कर रही थी। रामायण लेकर किसी कौनेमें बैठी होगी। बापने तुम्हें भी तो यही सब सिखाया था और लड़कपनसे तुम यही सब किया करती थीं। अब अपनी लड़कीको भी तुमने यही सिखा दिया है। मेरी समझमें आजतक यह आया ही नहीं कि लड़कियोंको ये सब सास्तर पढ़ानेसे क्या लाभ होता है।

अब उस दासीसे न रहा गया और वह भी इन बातोंमें सम्मिलित हुई। वह बोली—बूआजी भी किसी तरह खुश नहीं होतीं। अरे तुम्हीं न उस लड़कीसे कितनी पोथियाँ सुनती हो, कितनी कितनी पूजा प्रतिष्ठा करती हो और तुम्हीं ऐसी बातें करती हो। जरासी लड़की ऐसी ऐसी पोथी सुनाती है कि हम लोग अवाक् रह जाती हैं। और आज तुम्हीं लगीं उसकी निन्दा करने !

बूआ—अरे रहने भी दे। आखिर तो लड़की ही है। आज अगर उसकी जगह कोई लड़का होता तो उसकी माँकी यह दुर्दशा क्यों होती ? अगर खाली पोथी पत्रा पढ़नेसे ही सारा दुख दूर हो जाता तो—

कमलाकी माताने स्वयं ही आगे बढ़कर कहा—आओ भइया, चलो अन्दर चलकर बैठें। भला, तुम कब तक इस तरह खड़े रहोगे ? यहाँ आँगनमें धूप भी बहुत तेज है। चलो, अन्दर दालानमें चलो।

आँगन पार करके दोनों अन्दरकी ओर बढ़े। कमलाकी माँने फिर पुकारा—कमला ! अरी ओ कमला !

किसी कोठरीके कौनेसे किसीने धीरेसे कहा—हूँ ।

कमलाकी माँने कहा—आ, जल्दी बाहर आ। देख कौन आया है?

उस दिन जिस लड़कीको महेन्द्रने घाटपर देखा था वही फिर झांझरका झुन झुन शब्द करती हुई बाहर निकल आई और महेन्द्रको देखकर अवाक् होकर खड़ी हो गई । उसकी माताने कहा—देख क्या रही है? प्रणाम कर । आजसे ये तेरे भइया हुए ।

कमलाने महेन्द्रके पैरोंपर झुककर उसे प्रणाम किया । ज्यों ही वह उठकर खड़ी हुई त्यों ही उसकी माताने कहा—अन्दरसे आसन लाकर दालानमें बिछा दे ।

महेन्द्रने रोककर कहा—क्या माताएँ इस तरह पुत्रोंके लिए आसन बिछानेके लिए कहा करती हैं ?

महेन्द्रके हृदयपर अबतक उसकी निजकी बात मानों कोमलसा आघात कर रही थी । वह इन लोगोंका अच्छी तरह परिचय प्राप्त करना चाहता था और यह जानना चाहता था कि उस दिन घाटपर जो घटना हुई थी उसका क्या अर्थ था, इसी कुतूहलके कारण उसने अबतक अपने हृदयके उस आघातको जोर नहीं पकड़ने दिया था। लेकिन अब बार बार यह 'पुत्र' और 'माता' शब्दोंके उच्चारणने सहसा उसके हृदयपर मानों एक हथौड़ेकी चोट मार दी । वह सोचने लगा कि मैं अपनी उस स्नेहमयी माँके रहते हुए भी एक अपरिचित स्त्रीको माँ बना रहा हूँ और स्वयं उसका पुत्र बन रहा हूँ ! क्या मेरे लिए यही शब्द उच्चारण करनेके लिए रह गये हैं ? क्या मुझे संसारमें और भी कहीं यह सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए ? मेरी माँ तो वही हैं। लेकिन जब उसी माँको मैं माँ कहकर पुकारने नहीं पाता हूँ, लड़केकी तरह उसके पास नहीं रहने पाता हूँ, तब फिर मैं उसी नामका फिरसे

क्यों व्यवहार करता हूँ ? नहीं, नहीं, केवल भलमनसतके कारण या सज्जनताके विचारसे भी मैं संसारमें किसीको माँ कहकर नहीं पुकार सकता। किसीको माँ बनानेका विचार भी नहीं कर सकता और न किसीका लड़का ही बन सकता हूँ। अब मैं इन लोगोंके साथ अधिक घनिष्ठताका सम्बन्ध नहीं स्थापित करूँगा और इनसे दो चार बातें करके ही यहाँसे चला जाऊँगा।

जिस समय महेन्द्र सिर झुकाए हुए खड़ा था और अपने हृदयके इस विद्रोहको सज्जनताकी रक्षाके विचारसे यथासाध्य उपयुक्त आवरणसे ढकनेका प्रयत्न कर रहा था, उसी समय कमलाने एक आसन लाकर दालानमें बिछा दिया। जब कमलाकी माँने महेन्द्रको अन्यमनस्क भावसे बाहर ही खड़े देखा, तब उसकी पहली बातके उत्तरस्वरूप उसने शान्त भावसे कहा—जब तुम दया करके आप ही मेरे लड़के बन गए हो, तब मुझे भी तुम्हारे साथ इस तरह बातें करनेका साहस हो रहा है। और नहीं तो तुम्हारे जैसे लड़केकी माँ बनने योग्य मेरा भाग्य कहाँ है ? न तो अभी तुम्हीं जानते हो कि मैं कौन हूँ और न मैं ही जानती हूँ कि तुम कौन हो। लेकिन हाँ, अबतक तुमने अपने स्वभावका जो परिचय दिया है, उसीके कारण मैंने तुम्हें अपने घरमें बुलाकर तुम्हें आसनपर बैठाया है और इसके लिए मैं अपने आपको धन्य समझती हूँ। उस दिन तुमने उस सर्वनाशसे मेरी जो रक्षा की है, उसके विचारसे तो मैं यही बहुत बड़ी बात समझती हूँ कि आज मैंने तुम्हें फिर देख पाया है। उसके सिवा तुम और जो कुछ कह रहे हो या कर रहे हो, उससे तुम्हारे उसी महत्त्वका ही परिचय मिलता है। भला मेरे जैसी अभागिनीको कभी तुम्हारे जैसेको लड़का कहनेका साहस हो सकता है ? आओ, इस आसनपर बैठो। मैं इसीको अपना परम सौभाग्य समझूँगी।

उस स्त्रीकी ये सब बातें सुनकर महेन्द्र अपने मनकी उस उद्धतताके कारण मन ही मन बहुत लज्जित हुआ। उसने सोचा कि यह भद्र परिवार मुझे अपना उपकारी और अपने आपको उपकृत समझकर ही मेरे प्रति इस प्रकारकी सुजनता प्रकट कर रहा है। ये लोग जो यह आत्मीयता प्रकट कर रहे हैं, सो मेरे हार्दिक माता-पुत्र सम्बन्धपर डाका डालनेके लिए नहीं कर रहे हैं। संसारमें जो लोग उपकारके बदलेमें कृतज्ञता नहीं प्रकट करते, उनका नाम संसारके खातेमें कृतघ्नोंमें लिखा जाता है। यह स्त्री स्नेह प्रकट करनेमें कोई ज्यादती नहीं कर रही है। यह एक अपरिचित युवकको केवल एक बार देखकर अतिशय स्नेहाभिनय करनेकी अशिष्टता नहीं कर रही है। स्वयं मैंने ही पहले कहा था कि आप मेरी माताके समान हैं, इसी लिए भलमनसतके विचारसे यह बीच बीचमें उस सम्बन्धका उल्लेख कर रही हैं। लेकिन उपकार करनेवालेका लोग साधारणतः जितना आदर सत्कार करते हैं, उसकी अपेक्षा ये लोग मेरा कुछ अधिक आदर कर रही हैं। महेन्द्र सोचने लगा कि यह मुझसे अवस्थामें भी अधिक हैं और सम्पन्न तथा प्रतिष्ठित भी हैं, इसलिए इनसे अपना इतना अधिक आदर सत्कार कराना मेरे लिए ठीक नहीं है। जब कि संयोगवश इनके साथ परिचय हो गया है, तब अगर मैं इन्हें माँ कहकर सम्बोधन न करूँ, तो और क्या कहकर सम्बोधन करूँ? मान लिया कि मेरे हृदयमें मातृ-सम्बन्धकी एक व्यथा छिपी हुई है; लेकिन संसारमें अपनेसे बड़ी स्त्रियोंको सम्बोधन करनेका यही तो एक सार्वभौमिक शब्द है। अब इस शब्दका व्यवहार किए बिना इन लोगोंके साथ काम भी तो नहीं चल सकता और फिर सौजन्यकी भी तो किसी तरह रक्षा नहीं हो सकती। महेन्द्र लज्जित होकर आसनके एक कोनेपर बैठ गया और बोला—यदि आप इस तरहकी

बातें करेंगी, तो फिर मैं ज्यादा देर तक न बैठ सकूँगा। जो काम लोग सदा किया करते हैं, उससे ज्यादा और कौनसा ऐसा काम हो गया है, जो आप बार बार उसीका जिक्र करती हैं?

स्त्री—सब लोग क्या किया करते हैं? उस दिन जिन लोगोंने मेरा इतना अधिक अपमान किया था वे भी तो आदमी ही थे! मेरी इतनी बड़ी उमर हुई; लेकिन जैसे दो तरहके आदमी मैंने उस दिन देखे वैसे और कभी नहीं देखे। एक तरफ तो मैंने ऐसे आदमी देखे जो कि मेरा सर्वस्व लेकर भी तृप्त नहीं हुए और फिर भी मेरा सर्वनाश करना चाहते हैं और एक तरफ ऐसे आदमीको देखा जिससे मेरी कभीकी जान पहचान भी नहीं थी, जिसको मैं कभी जानती बूझती भी नहीं थी, फिर भी जिसने आकर उस सर्वनाशसे मेरी रक्षा की और मुझे बचाया।

इतना कहते कहते उस स्त्रीकी आँखोंमें आँसू भर आए। महेन्द्रका अन्तःकरण विचलित हो गया। वह बोला—वह बात जाने दीजिए। आदमियोंमें पिशाच भी होते हैं और आदमी भी। वह जिक्र छोड़िए और यह बतलाइए कि उस दिन आप मुझसे और क्या क्या कहना चाहती थीं?

स्त्री—बेटा, मैं तो यही जानना चाहती थी कि तुम कौन हो। मैं अपने अभाग्यका रोना रोकर तुम्हारे जैसे लड़केको अधिक दुखी नहीं करना चाहती। तुमने उस दिन हम लोगोंको उस विपत्तिसे—

महेन्द्रने उसे बीचमें ही रोककर कहा—मैं कोई ऐसा आदमी नहीं हूँ जिसका परिचय प्राप्त करनेके लिए आप इतनी उत्कंठित हो रही हैं। मैं तो इस गाँवके जमींदारका एक साधारण कर्मचारी हूँ। इस महालमें काम देखता फिरता हूँ।

स्त्री—बेटा, इसे तो परिचय नहीं कहते। मैं यह जानना चाहती हूँ कि तुम किस गाँवके रहनेवाले हो और किसके लड़के हो।

महे०—मैं जमींदारके गाँवमें ही रहता हूँ और मेरा कोई ऐसा परिचय नहीं है जो मैं आपको दे सकूँ। मैं जन्मसे ही दूसरोंके अन्नसे पला हूँ, दूसरोंका घर ही मेरा घर है। मेरे होश सँभालनेसे पहले ही मेरे पिताका देहान्त हो गया था।

स्त्री—तो क्यों बेटा तुम्हारी माँ भी नहीं हैं?

महे०—जी हाँ, मेरी माँ भी नहीं हैं।

महेन्द्रके मुखकी अस्वाभाविक विवर्णता देखकर कमलाकी माँने वह प्रसंग छोड़ दिया और पूछा, क्या तुम अभी हालमें ही यहाँ आए हो?

महे०—हाँ, यही कोई एक महीना हुआ होगा और अब मैं जल्दी ही यहाँसे चला भी जाऊँगा।

स्त्री—क्या तुम बराबर इसी तरह चारों तरफ घूमा करते हो?

महे०—जी हाँ। लेकिन अब आप पहले अपनी बात बतलाइए। मैं यह जानना चाहता हूँ कि उस दिन वे लोग क्यों जबरदस्ती और आपकी इच्छाके विरुद्ध आपको और आपकी लड़कीको अपने साथ ले जाना चाहते थे? शायद आपको यही एक लड़की है?

स्त्री—हाँ बेटा। और एक इसी लड़कीके कारण ही जैसे तैसे हो सका दस बरस तक मैं निश्चिन्त भी थी। मेरे रहनेके कारण जिन लोगोंके स्वार्थमें बाधा पड़ती थी, उन लोगोंने मेरे जीवित ससुर और मृत पतिकी चौकठ मुझसे छुड़ा दी थी और तबसे अब तक उन्होंने मुझे फिर कभी नहीं सताया था। पर अब मैं सुनती हूँ कि मेरे ससुरजी बहुत बीमार हैं और उनके बचनेकी कोई आशा नहीं है। इसी लिए वे लोग अब फिर नए सिरेसे मुझे सताना और तंग करना चाहते हैं।

महेन्द्रने उत्सुकतापूर्वक पूछा—क्यों ? आपकी बूआके मुँहसे मैंने आपके सम्बन्धमें अब तक जो बातें सुनी हैं, उनसे मुझे आपके जीवनके सम्बन्धकी बहुतसी बातोंका पता चल गया है। लेकिन मैं इतना और जानना चाहता हूँ कि आपकी ननदके लड़के आपको क्यों सताते हैं? जब परेश बाबूने इतने दिनोंसे अपने दादाको हाथमें कर रखा है, तब तो अवश्य ही सब सम्पत्ति भी उन्होंने अपने नाम लिखा पढ़ा ली होगी। बिना इसके तो वे कुछ पा ही नहीं सकते, क्योंकि उनकी माका उस सम्पत्तिपर कोई हक नहीं पहुँचता है। कमलाके पिता जब अपने पिताके रहते ही मर गए, तब कमलाको तो कुछ मिलेगा ही नहीं। हाँ यह अवश्य है कि यदि आप मुकदमा चलावें, तो आपको खाने पहननेके लिए और कमलाके ब्याहके लिए कुछ न कुछ मिल सकता है। लेकिन मैं समझता हूँ कि उसकी आपको कोई जरूरत ही नहीं है।

कमलाकी माँने महेन्द्रकी बातका कोई उत्तर नहीं दिया और कमलाकी ओर देखकर कहा—कमला, जरा तुम जाकर अच्छी तरह जल-पानका सामान तो सजा लाओ।

महेन्द्रने रोकना चाहा, परन्तु उस स्त्रीने महेन्द्रकी ओर इस प्रकार देखा कि जिससे महेन्द्रने समझ लिया कि वे जान बूझकर ही कमलाको वहाँसे टाल देना चाहती हैं। इसलिए फिर महेन्द्रने कुछ नहीं कहा। माताने अपनी कन्याके मस्तकपर हाथ फेरते हुए और उसके खुले हुए गीले बालोंको स्पर्श करते हुए कहा—यहाँकी मिठाई तो अच्छी होती नहीं, फिर तुम अपने भइयाको क्या खिलाओगी? खाली फल खिलाओगी? इससे अच्छा तो यही है, जाकर देखो कि गौ

दुही गई है या नहीं। अगर दुही गई हो, तो अपनी दादीसे थोड़ा ताजा छेना और हलुआ बनवा लाओ।

कमलाने उत्साहपूर्वक अपनी माताकी गोदमें सिर छिपाते हुए कहा—मैंने तो उस दिन अकेले ही छेना बनाया था। आज भी मैं ही बना दूँगी।

स्त्री—नहीं बेटी, तुम अकेली चूल्हेके पास मत जाना। कहीं कुछ हो जाय, तो और भी आफत हो। बूआजीको बुला लेना।

महेन्द्रने कहा—तुम छेना और हलुआ रहने दो, खाली फल ही बना लाओ। लेकिन देखना, कहीं फलके साथ अपना हाथ भी मत काट लेना। अच्छी तरह बना लाओ, तब मैं समझूँगा कि तुम बड़ी रानी बेटी हो।

कमलाने सहज कोमल स्वरसे कहा—मैं हलुआ भी बना लेती हूँ और फल भी बना लेती हूँ। मेरा हाथ जलता भी नहीं और कटता भी नहीं। दिखाऊँ आपको?

महे०—अच्छा यह तो देखा जायगा, पर यह तो बतलाओ कि तुम क्या क्या पढ़ सकती हो और मुझे कब सुनाओगी? मैंने सुना है कि तुम किताबें बहुत अच्छी तरह पढ़ती हो। तुम्हें रामायण पढ़ना आता है?

कमलाने दीवारकी ओर मुँह करके हँसते हुए कोमल स्वरसे उत्तर दिया—हाँ, आता है।

माताने कहा—पूरा महाभारत तो अभी तक इसने नहीं पढ़ा है, पर रामायण बहुत कुछ याद है। अच्छा बेटी, अब तुम जाओ, देर मत करो। जल्दीसे सब चीजें बनाकर ले आओ।

जब कमला चली गई तब महेन्द्रने पूछा—क्या आप बिना जलपान कराए मुझे नहीं जाने देंगी ?

स्त्री—यह भी तुम्हारी दया है। क्या तुम मेरे घर आकर भी बिना मुँह मीठा किए चले जाओगे ?

महे०—खैर कुछ खा ही लूँगा। हाँ, तो परेश बाबू आपको इस तरह क्यों—

स्त्री—हाँ, वही बतलानेके लिए तो मैंने लड़कीको यहाँसे टाल दिया है। यह बेचारी बड़ी डरपोक है। जब कभी कहीं जरासी भी डर जाती है, तब रातको सोई सोई डरकर उठ बैठती है और बड़बड़ाने लगती है। उस समय इसका मुँह भी बिलकुल सूख जाता है।

महे०—यह तो मैंने उसी दिन देख लिया था। वहाँ घाटपर भी तो वह मारे डरके बेहोश हुई जाती थी। आपकी लड़की देखनेमें भी कमलाकी ही तरह है और उसका स्वभाव भी फूलके समान कोमल है।

माताने ठंढी साँस लेते हुए कहा—लेकिन बेटा, भाग्य तो अच्छा नहीं है। यह ऐसी बुरी घड़ीमें पैदा हुई थी कि इसके जनमते ही साल भरके अन्दर सब कुछ जाता रहा। यह किसकी लड़की थी और किसकी नतनी; पर आज वह सब बातें सपना हो गई। लेकिन फिर भी दस बरस तक मुझे किसी बातका कष्ट नहीं हुआ और न इसको कभी किसी बातका दुख होने पाया। जब इसे बाप-दादाकी गोद ही नसीब नहीं हुई, तो फिर तुच्छ धन सम्पत्तिके लिए किस बातका दुख किया जाय ? लेकिन अब मुझे फिर डर लगने लगा है। मैं सोचती हूँ कि अभी न जाने और क्या क्या भाग्यमें बदा है।

महे०—इसके ऊपर उन लोगोंके क्रोधका कोई कारण तो नहीं होना चाहिए। फिर वे लोग ऐसा क्यों कर रहे हैं ?

स्त्री—उन लोगोंने कहला भेजा था कि ससुरजी मुझे और कमलाको देखना चाहते हैं। मैं भी इसी लिए उसे लेकर जानेको तैयार हुई थी। लेकिन उन लोगोंके साथ वह जो बुढ़िया मजदूरनी आई थी और जिसे तुमने भी उस दिन वहाँ देखा था, उसने अकेलेमें मुझसे एक ऐसी बात कह दी कि जिसे सुनकर मुझे अपने साथ कमलाको ले जानेका साहस नहीं हुआ। उसी बुढ़ियाने कमलाके बापको पाला पोसा और बड़ा किया था। उसीने रोते रोते मुझे बहुत मना किया—इतना कहते कहते कमलाकी माँकी आँखोंमें आँसू भर आए, जिन्हें उसने बहुत कठिनतासे रोका और महेन्द्रके कुछ और पास खिसककर धीरेसे फिर कहना आरम्भ किया—मैंने सुना है कि मेरे ससुरजी अब अपने स्वर्गगत लड़के और पोतीका नाम ले लेकर बहुत रोते हैं और उन्होंने परेशके साथ साथ कमलाके नाम भी अपनी आधी सम्पत्ति वसीयतनामेमें लिख दी है। अब परेश उनको किसी तरह सँभाल नहीं सकते हैं। बहुतसे आदमियोंके सामने यह वसीयतनामा लिखा गया है!

महेन्द्र चौंककर बोल उठा—हैं! तब तो बड़ा भारी अनर्थ हो सकता है। वे लोग लड़कीको ले जाकर इसकी हत्या तक कर सकते हैं।

स्त्री—हाँ, यह भी हो सकता है। लेकिन उन्होंने जो पत्र लिखा था उसके भावसे और उस बुढ़ियाने मुझसे जो कुछ कहा था इससे मुझे एक और भी सन्देह होता है।

महे०—और क्या हो सकता है? लड़कीके प्राण ले लेना ही तो उनके लिए सबसे अधिक निरापद है।

कमलाकी माँ अन्दर ही अन्दर एक बार सिहिर उठी और बड़ी कठिनतासे अपने उमड़े हुए आँसुओंको रोककर बोली—अरे बेटा, उन

लोगोंके हाथमें एक उपाय और भी है जिससे वे लड़कीको मार डालनेकी अपेक्षा और भी भयंकर काम कर सकते हैं और उसमें उनके मार्गके सब कंटक भी आपसे आप दूर हो जाते हैं। मेरे ससुरका कुल बहुत उच्च है। वे मुख्य कुलीन हैं। उनकी लड़की छोटे कुलमें नहीं जा सकती। यद्यपि मैं चाहती तो यह मर्यादा तोड़ सकती थी, लेकिन मेरे पिताजी भी इस मर्यादाको तोड़नेके लिए बार बार मना कर गये हैं। इसी लिए कमला बारह बरसकी हो गई और अभी तक इसका ब्याह नहीं हो सका। अगर मैं समान कुलके पात्रकी इतने दिनों तक प्रतीक्षा न करती और किसी छोटे कुलमें ही कमलाका ब्याह कर देती, तो आज मुझे इस आपत्तिमें न पड़ना पड़ता।

महे०—तो क्या वे लोग कमलाके ब्याहके सम्बन्धमें कुछ नया प्रपंच रचना चाहते हैं? शायद जबरदस्ती और कहीं ब्याह करना चाहते होंगे?

स्त्री—वे लोग अन्दर ही अन्दर कौनसा निष्ठुर परामर्श कर रहे हैं, इसका कोई अन्दाज नहीं लगाया जा सकता। परेशने लिखा है कि कुलकी मर्यादा भंग करके तुमने जो अबतक कमलाका ब्याह किसी छोटे कुलमें नहीं किया, इससे हम और बाबूजी बहुत ही सन्तुष्ट हैं। बाबूजीने यह संकल्प कर लिया है कि तुम्हारे लड़कीका ब्याह किसी उपयुक्त वरके साथ कर देंगे और उसमें बहुत अधिक दान दहेज भी देंगे। आप लड़कीको लेकर तुरन्त चली आइए। लेकिन मेरे ससुरजीने जो वसीयत की है, उसका इस पत्रमें कोई जिक्र नहीं है और न उनके आदमियोंने ही उसके बारेमें कुछ कहा है। शायद वे लोग सोचते हैं कि खाली दान दहेजके लोभमें पड़कर ही मैं लड़कीको वहाँ ले दौड़ूँगी। मैं यहाँसे चल तो जरूर पड़ी थी; पर खाली ससुरजीके अन्तिम दर्शन करनेके लिए। मैं यह भी चाहती थी कि एक बार वे कमलाको देख

लें और कमला भी उन्हें देख ले। लेकिन मेरे अभाग्यके कारण वह भी न हो सका। न जाने इस भाग्यमें और क्या क्या लिखा है।

महे०—ब्याहकी बात अवश्य ही छल है। जब एक बार लड़की उनके यहाँ पहुँच जायगी, तब फिर वे जो चाहेंगे सो करेंगे।

स्त्री—बुढ़ियासे मालूम हुआ—उसने छिपकर सुना है कि वे लोग सलाह कर रहे थे कि लड़कीको मार डालनेमें बहुत बखेड़ा होगा। यह कहते कहते महामाया देवीकी आँखोंमें आँसू भर आए और वह रुककर आँसू पोंछने लगी। थोड़ी देर बाद उसने फिर कहना आरम्भ किया—परेश भी कुलमें मेरे ससुरकी बराबरीका है, इसी लिए ससुरजीने उसके बापके साथ अपनी कन्याका ब्याह किया था। बहुत ढूँढ़नेपर उनको अपनी बराबरीका वह कुल मिला था और नहीं तो इस तरफ उनकी बराबरीका और कोई घर नहीं है। इसी लिए उन लोगोंने शायद यह परामर्श किया है कि समान घरमें ब्याह करनेकी बात बनाकर और ससुरजीकी आज्ञाके बलपर परेशके साथ ही कमलाका—

इससे आगे महामायासे कुछ कहा नहीं गया। महेन्द्रने बहुत ही चकित होकर कहा—हैं! परेश तो कमलाकी बूआका लड़का है। ये दोनों तो भाई-बहन हुए। मान लिया कि परेशकी माँ कमलाके पिताकी सगी बहन नहीं थी, सौतेली बहन थी। पर इससे क्या? थे तो दोनों भाई बहन ही। फिर यह ब्याह कैसे हो सकता है?

महा०—क्या तुमने यह नहीं सुना कि कुलीन लोग अपनी कुलीनताके फेरमें पड़कर अक्सर इस तरहके अवैध ब्याह कर दिया करते हैं। इसमें होता यह है कि पति और पत्नीका सम्बन्ध नहीं माना जाता, एक दूसरेके पास नहीं जा सकता! बस इस तरहसे कुलीनताकी रक्षा की जाती है! दोनों जन्मभर अलग अलग रहते हैं, नामके लिए ब्याह हो

जाता है। इसी कुल-कुंडकी आगमें मेरी कमलाकी आहुति देनेके लिए उन राक्षसोंने यह सारा फरफन्द रचा है! इससे उन्हें कमलाकी हत्या भी नहीं करनी पड़ेगी और उसकी सारी सम्पत्ति भी अनायास ही उनके हाथ आ जायगी।

महेन्द्रके आश्चर्यका कोई ठिकाना न रहा। कैसी भयंकर बात है! मैं तो समझता था कि वे लोग इसे मार ही डालेंगे। लेकिन नहीं, अब मालूम होता है कि इससे उन्हें कोई लाभ नहीं हो सकता—ऐसा करनेसे तो बल्कि कमलाके हिस्सेकी आधी सम्पत्तिके प्राप्त करनेमें भी झंझट खड़ी हो सकती है। इससे अधिक सुभीता तो इसीमें है कि ब्याह कर लिया जाय और फिर चाहे तो उसे मार डाला जाय।

महा०—हाँ, हो सकता है कि आगे चलकर वे वैसा करें; पर अभी तो उन्होंने यही जाल रचा है। उस दिन तुमने हम लोगोंकी रक्षा तो कर दी; पर अभी हमारे सिरसे विपत्ति दूर नहीं हुई है। मेरे मायकेकी जमींदारीका काम धन्धा देखनेके लिए एक आदमी हैं, जो इसी गाँवके रहनेवाले हैं। वह आज कह रहे थे कि इस गाँवके नायब—जो कि गोपीनाथके रिश्तेदार हैं—यह पता लगा रहे हैं कि मेरे पिताकी कितनी सम्पत्ति है और हमारे नौकर चाकर तथा हलवाहे आदि कितने हैं। हमारा एक असामी है। वह कहता था कि नायबका आदमी खेतमें मुझसे पूछ रहा था कि रातको हम लोग घरमें कहाँ सोते हैं और कितने आदमी रहते हैं।

महेन्द्र उछलकर अपने आसन परसे उठ खड़ा हुआ और बोला— क्या सचमुच यहाँ तक बात पहुँच गई है? इतना बड़ा षड्यन्त्र रचा जा रहा है? खैर जो हो, पर आप अपने मनमें यह दृढ़ निश्चय कर लें कि अब उनकी एक भी चाल नहीं चलेगी। जब तक मैं यहाँ हूँ

तबतक आप लोगोंके लिए डरकी कोई बात नहीं है। भला देखूँ तो सही, वे लोग क्या करते हैं!

कमलाकी माँने क्षणभर तक निर्निमेष दृष्टिसे महेन्द्रकी ओर देखकर कहा—बेटा, तुम तो अकेले हो, तुम हमारी इतनी बड़ी विपत्ति कैसे दूर कर सकोगे? तुमने जो यह हम लोगोंके साथ इतनी सहानभूति दिखलाई है, मैं इसीको बहुत समझती हूँ। मुझे तो कोई ऐसा भी आदमी नहीं दिखाई देता, जिससे मैं अपने मनकी ये दुःखकी बातें कह सकूँ। बूआजी बूढ़ी ठहरीं। उन्होंने अब तक जो कुछ सुना है उसीके कारण वह हर दम रोतीं झीखतीं और बेचन रहती हैं। अगर उन्हें ये सब बातें भी मालूम होतीं, तो वे गाँवके बच्चे बच्चेको सुना डालतीं और उससे शायद हम लोगोंकी विपत्ति और भी बढ़ जाती। अगर कहीं मेरी लड़की ये बातें सुन ले, तो वह भी यों ही मारे चिन्ताके रो रोकर मर जाय। आज तुमसे जो मैंने ये सब बातें कह दी हैं, इनसे मेरा जी बहुत कुछ हलका हो गया है। लेकिन मेरे लिए इतना ही बहुत है। देखो बेटा, कहीं ऐसा न हो कि तुम जाओ तो हम लोगोंका भला करने और उलटे अपने सिर कोई भारी आफत बुला लो।

महे०—भला मुझपर क्या आफत आ सकती है? आप मेरे लिए कुछ भी चिन्ता न करें। यह ठीक है कि इस गाँवमें मैं अकेला हूँ, लेकिन यदि न्यायका पक्ष लेकर एक आदमी भी हिम्मत करके उठ खड़ा हो, तो दूसरे पक्षके हजार आदमी भी उससे डरते हैं। और फिर इसके सिवा यहाँका नायब भी मुझसे डरता है। मैं यहाँके जमींदारका निजी निरीक्षक हूँ। जब उसे यह बात मालूम होगी कि मैं इस बीचमें पड़ा हूँ, तो शायद वह इस झगड़ेमें पड़ेगा ही नहीं।

महा०—लेकिन बेटा, तुम तो कहते हो कि तुम जल्दी ही यहाँसे चले जाओगे। तब तुम जितने दिन भी यहाँ रहोगे, उतने ही दिन हमारे लिए अच्छा है। इसके बाद ईश्वर जो कुछ करेगा, वह देखा जायगा।

महे०—मुझे कोई यहाँसे चले जानेके लिए बाध्य नहीं करता है—मैं स्वयं ही अपनी इच्छासे इधर उधर घूमा करता हूँ। आप खूब निश्चिन्त होकर रहिए। जब तक आप भली भाँति निर्भय न हो जायँगी, तबतक मैं इस गाँवसे नहीं जाऊँगा।

महामाया देवी कुछ देर तक स्तब्ध होकर भूमिकी ओर देखती रहीं। फिर अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे महेन्द्रकी ओर देखकर बोलीं—क्या सचमुच ही कोई देवता मेरी कमलाका दुःख देखकर आज मुझे अभय दान देने आए हैं! क्या इसी लिए उस दिन इस प्रकार—

महे०—चुप हो जाइए, कमला आ रही है। आओ तो कमला, देखूँ तुमने कैसा छेना बनाया है। हाथ तो नहीं जला न? फल बनानेमें कहीं हाथ तो नहीं कटा?

कमलाने महेन्द्रके सामने पानीका गिलास और जल-पानकी रिकाबी रखकर कहा—देखिए, मेरा हाथ देख लीजिए, कहीं कुछ भी नहीं हुआ है। दादीजीको तो मैंने आज बुलाया ही नहीं।

महे०—ऐसी बात। अच्छा तो जरा खाकर भी देखूँ कि तुमने कैसा छेना पकाया है।

कमला चट बोल उठी—छेना पकाया नहीं जाता, काटा जाता है।

महे०—काटा जाता है? किस चीजसे? दाँतीसे या दावसे?

महेन्द्रके इस परिहासके कारण कमला बहुत लज्जित हुई और उससे कुछ कहा न गया। उसने अपनी माँकी पीठके पास जाकर मुँह छिपा

लिया। माताने स्नेहपूर्वक कहा—बेटा, उसने अपनी उमरमें कभी भाईका स्नेह नहीं पाया और न इस तरहकी बातें सुनी हैं, इसी लिए उसे लज्जा आ रही है। अच्छा, लो अब थोड़ासा खा लो।

महे०—थोड़ासा क्यों, सभी खाऊँगा। और अगर कोई चीज खराब होगी तो कमलाकी शिकायत करूँगा। कमला, तुम मुँह क्यों छिपाती हो? अभी तुमने सुना तो कि मैं तुम्हारा भाई हूँ। बतलाओ तो हलुएमें कितना नमक और मिर्च डाली जाती है?

कमलाने खूब जोरसे हँसकर दोनों हाथोंसे अपना मुँह छिपा लिया। फूलके समान सरल और सुन्दर लड़कीकी ओर देखकर महेन्द्रने सोचा—हाय! इसीपर संसारका इतना बड़ा अत्याचार है! इसीके पक्षीके समान प्राण लेनेके लिए इतने षड्यन्त्र रचे जा रहे हैं! क्या ये सब बातें सुनकर मनुष्य निश्चेष्ट रह सकता है! चाहे जैसे हो, मैं इस विपत्तिसे इसकी रक्षा अवश्य करूँगा।

दसवाँ परिच्छेद।

जब कोई चीज सीधे रास्तेपर बहुत तेजीके साथ बढ़ती जाती है और सामनेसे उसे कोई बाधक आघात लगता है, तो वह जितने वेगसे पहले सामनेकी ओर चलती रहती है उतने ही वेगसे वह विपरीत दिशाकी ओर लौटने लगती है। इस समय ठीक वही दशा कामाख्यानाथकी हो रही थी। कात्यायनीकी चिन्ताके कारण अब तक वे जिस दिशामें जा रहे थे, उतने ही जोरसे अब ठीक उसकी विपरीत दिशामें जाने लगे थे। वह इतने दिनों तक अदृष्टके साथ युद्ध

करनेके लिए पौरुषका धर्म धारण करके बड़ी दृढ़ताके साथ प्रस्तुत हो रहे थे; परन्तु अब वे उस तुरन्त सोकर उठे हुए बाघके हाथका थप्पड़ खाकर सहसा पीछेकी ओर लौट पड़े थे। पहले तो वह कात्यायनीके लिए जगह जगह सुपात्र ढूँढ़ा करते थे; पर अब उनकी वे सारी चेष्टाएँ बिलकुल बन्द हो गई थीं। उन्हें कई पात्रोंका समाचार मिला था, पर अब उनका कोई प्रयोजन ही नहीं रह गया था। कई ज्योतिषियोंको इस बातकी आशा होने लगी थी अब जमींदारके यहाँ हमारी अच्छी गोटी जम जायगी। उनमेंसे कुछ तो पोथी पत्रा बाँधकर बैठे हुए जमींदारके आमन्त्रणपत्रकी प्रतीक्षा भी कर रहे थे; पर सहसा उनकी वह आशा आकाश-कुसुममें परिवर्तित हो गई। जमींदारने उनके यहाँ कहला भेजा कि आप लोगोंका ज्योतिष-शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान अमोघ है और आप लोगोंकी गणना बहुत ठीक है; परन्तु अब इस विषयमें आप लोगोंको कष्ट करनेकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि जिस समस्याकी मीमांसाके लिए आप लोगोंको इतना अधिक कष्ट दिया गया था, उसका निराकरण हो चुका है। लाचार होकर बड़े बड़े ज्योतिषार्णव और ज्योतिषशास्त्र-दिग्गज लोग एक एक चुटकी सुँघनी सूँघकर ही शान्त हो रहे।

शारदीय महोत्सव बहुत समीप आ गया था। कामाख्यानाथके यहाँ बहुत धूम धामसे शारदीय पूजा हुआ करती थी। छठसे दो तीन दिन पहले निरंजन जब अपने गाँवके सब प्रतिष्ठित और मुख्य आदमियोंको निमन्त्रण देकर अपने पिताके पास गया तब उसने देखा कि वे बहुत ध्यान-पूर्वक कोई हिसाब देख रहे हैं। पुत्रको अपने पास देखकर उन्होंने सिर उठाकर कहा—कौन, निरंजन?

नि०—जी हाँ बाबूजी।

का०—क्या कोई काम है?

नि०—जी हाँ, महेन्द्र बाबू अभी तक घर क्यों नहीं आए ?

का०—महेन्द्र ? क्या वह अभी तक घर नहीं आया ? मुझे तो इधर उसकी कोई खबर नहीं मिली। यह भी पता नहीं कि वह कहाँ है। अच्छा दीवानसे पूछूँगा।

नि०—पता तो मुझे मालूम है। इधर कई महीनोंसे वह सैदपुरमें हैं। मैं ज्योतिरत्नके यहाँ गया था। उनकी स्त्री आज बहुत रोकर महेन्द्रका हाल पूछ रही थीं।

कामाख्यानाथने कुछ घबराकर कहा—अच्छा मैं अभी पता लगाता हूँ।

नि०—वह यह भी कहती थीं कि आप भी इधर बहुत दिनोंसे दिखाई नहीं दिए। रमा भी कई दिनसे उनके यहाँ नहीं गई। वह कहती थीं कि इस संसारमें हम अनाथोंके एक आप ही सहायक थे—

इससे आगे निरंजनसे कुछ कहा नहीं गया। अपने पुत्रकी करुणापूर्ण आकृति देखकर कामाख्यानाथ बहुत दुःखी हुए। उन्हें याद आया कि सचमुच उस रोज झूलनवाली रातके बादसे आज तक मैंने उनकी कुछ खोज खबर ही नहीं ली। उन लोगोंके नामसे ही उनके मनमें एक प्रकारकी आशंका उत्पन्न हुई थी। बन्धु-बान्धवहीन असहायोंके ऊपरसे होकर भाग्य-देवताका रथ स्वच्छन्द रूपसे चला जा रहा था और वे लोग चुपचाप उस रथके नीचे पिस रहे थे। उनकी वह दशा देखकर ही वे उसमें बाधा देने गए थे। लेकिन उसके बाद उस रथके पहियोंके अचिन्त्यरूपसे टेढ़ा होकर रुक जानेके लक्षण देखकर और उससे डरकर वे दूर भाग आए थे। उन्होंने समझा था कि पौरुषका पथ छोड़कर यहाँ कायरताका ही आचरण करना चाहिए। वे दुर्दशासे उस दुःखी परिवारकी रक्षा करने अवश्य गए थे; पर वे यह नहीं चाहते थे कि मैं

स्वयं ही उपहासास्पद रूपसे उस रथके पहियोंके नीचे पिस जाऊँ। परन्तु काल ही सब प्रकारके भयोंका निवारण करनेवाला और सब प्रकारकी शान्ति तथा सान्त्वना देनेवाला है। इस बीचमें जो समय बीता था उसमें नामके लिए भी कामाख्यानाथको उन लोगोंका स्मरण नहीं आया था और न उन्होंने मुँहसे उनका नाम ही निकाला था। उनके मनमें पहले जो बहुत बड़ी आशंका उत्पन्न हुई थी, वह अब कम हो गई थी। इसी लिए आज इतने दिनोंके बाद अपने पुत्रके मुँहसे उन लोगोंका नाम सुनकर और उसका परदुःखार्द्र और विचलित कंठस्वर सुनकर ज्योतिरत्नके परिवारके प्रति उनकी वह सहानुभूति फ़िरसे जागरित हो गई थी, जो इधर बीचमें बिलकुल नष्ट सी हो गई थी। उन्होंने कहा—यह बड़ा भारी अन्याय हो गया। मैं महेन्द्रको कहला भेजता हूँ कि वह तुरन्त आ जाय। थोड़ी देर तक कुछ सोच-नेके उपरान्त कामाख्यानाथने फिर कहा—शायद उन लोगोंको रुपए पैसेका भी कुछ कष्ट हो। लेकिन उनकी सम्पत्तिकी तो बहुत अच्छी तरह व्यवस्था कर दी गई है। कष्ट होनेकी तो कोई बात नहीं है।

नि०—मैं भी पहले यही समझता था कि उनको कुछ आर्थिक सहायता देनी चाहिए। पर उन्होंने एक ऐसी बात कह दी जिससे वह विचार रुक गया। उन्होंने स्वयं ही कहा कि कात्यायनीके पिता यह नहीं चाहते थे कि हम लोगोंका भार किसी दूसरेको उठाना चाहिए। इसी लिए वे जो कुछ थोड़ा बहुत छोड़ गए हैं, वही हम तीनों आद-मियोंके लिए बहुत है। मुझे दुःख इसी बातका है कि महेन्द्र मुझे इस तरह दुखी करता है और मेरे पास नहीं आता। तुम भी और तुम्हारे पिताजी भी कात्यायनीके पितापर अपने ही पिताके समान श्रद्धा और भक्ति रखते थे और वे भी तुम लोगोंको पुत्रके समान ही देखते थे।

इसी लिए रह रहकर मुझे तुम लोगोंको देखनेकी इच्छा हुआ करती है।

जब दीवान आए तब कामाख्यानाथने उनसे महेन्द्रका हाल चाल पूछा। उन्होंने उत्तर दिया—मैंने सुना है कि अब महेन्द्रकी इच्छा सोदपुरमें ही रहनेकी है।

कामाख्यानाथने कुछ भौंह सिकोड़कर पूछा—क्यों?

दीवान—वह जहाँ अधिक काम देखता है, किसी प्रकारकी अव्य-वस्था देखता है, या यह समझता है कि प्रजाके साथ किसी तरहका अन्याय या अत्याचार हो रहा है, वहीं महीने दो महीने रह जाता है और उसकी ठीक व्यवस्था करता है। इसी लिए मैं भी उससे कभी कोई कारण नहीं पूछता। और उसके सभी काम तो इसी तरह स्वाधीन-तापूर्वक चलते हैं।

का०—खैर जो हो। तुम उसे कहला भेजो कि तुम्हारी माँकी आज्ञा है कि तुम बहुत जल्दी घर चले आओ।

दी०—जो आज्ञा।

का०—और यह लो तुम्हारा सब हिसाब मैंने देख लिया।

इतना कहकर कामाख्यानाथ वहाँसे उठे और अन्तःपुरकी ओर चल दिये। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने पुकारा—रमा!

थोड़ी ही देरमें रमा आकर अपने पिताके सामने खड़ी हो गई। कामाख्यानाथने उससे पूछा—तुम ज्योतिरत्न महाशयके घरके लोगोंकी कुछ खबर जानती हो?

रमाने कुछ उद्विग्न होकर पूछा—क्यों उन लोगोंको क्या हुआ है?

का०—नहीं, हुआ तो कुछ भी नहीं है। पर क्या अब तुम उन लोगोंके यहाँ नहीं जाया करतीं?

रमाने चुपचाप सिर झुका लिया और उसका उद्विग्न मुख देखते देखते पीला पड़ गया।

का०—तुमने उनकी कुछ खोज खबर भी नहीं ली?

रमाने क्षीण स्वरसे उत्तर दिया—नहीं।

का०—क्यों?

रमा फिर चुप हो रही, उसने कोई उत्तर न दिया। कामाख्यानाथ कुछ विस्मित भावसे कन्याकी ओर देखते रहे और फिर सहसा चौंककर पूछने लगे—रमा, तुम इतनी दुबली क्यों हो गई हो? क्या तुम्हारी तबीयत कुछ खराब है?

जब रमाने फिर भी कोई उत्तर न दिया और उसका मुख उत्तरोत्तर विवर्ण होता गया, तब कामाख्यानाथको और भी चिन्ता हुई और उन्होंने उसके और भी पास जाकर और उसके मस्तकपर हाथ रखकर कहा—रमा!

रमा—हाँ बाबूजी।

का०—क्या तुम्हारी तबीयत कुछ खराब है?

रमा—जी नहीं, तबीयत तो ठीक है।

का०—तो फिर तुम्हें क्या हुआ है? तुम ऐसी क्यों हो रही हो?

कन्यासे इस प्रकार प्रश्न करनेके साथ ही साथ वे अपने मनमें सोचने लगे—यह क्या, आज तक मेरा ध्यान कहाँ चला गया था जो मैंने अब तक यह भी न देखा कि रमा इतनी रोगी हो गई है! इसके बाद उन्हें धीरे धीरे स्मरण आया कि इधर कुछ दिनोंसे रमा मेरे पास बैठकर और टक लगाकर मेरी ओर देखा करती थी। यह भी जान पड़ता था कि वह कुछ कहना चाहती है। लेकिन मैं इतना अन्यम-

नस्क था कि इस चिन्तित और दुःखी कन्यासे मैंने एक बार भी उसके मनकी बात न पूछी। जान पड़ता है कि शायद इसी लिए अभिमानके कारण रमा आज पूछनेपर भी वह बात नहीं कह रही है। कामाख्यानाथ स्वयं ही अपने मनमें लज्जित और दुःखी हो रहे थे, इसलिए वे रमासे और कोई प्रश्न न कर सके। वे केवल सन्तप्त हृदयसे अपनी कन्याके सिरपर हाथ फेरने लगे।

पिताके कुछ देर तक इस प्रकार स्नेह और आदर करनेके उपरान्त रमा एकाएक रोने लगी। उसे रोते देखकर कामाख्यानाथका चित्त बहुत ही व्याकुल हुआ। उन्होंने कहा—रमा मुझे बतलाओ कि क्या हुआ है? तुम क्यों रो रही हो? मैंने क्या किया है? इतना कहते कहते कामाख्यानाथका गला भर आया। रमाने दोनों हाथोंसे अपने पिताको पकड़ लिया और उनसे लिपटकर वह और भी जोरसे रोने लगी। उत्तरमें उससे कुछ बोला नहीं गया।

थोड़ी देर बाद रमा अपने आँसू पोंछकर कुछ स्थिर हुई। तब फिर कामाख्यानाथने म्लान मुखसे कन्याकी ओर देखते हुए कहा—रमा, अब तो बतलाओ कि क्या हुआ है?

रमाने क्षीण स्वरसे कहा—बाबूजी, कुछ कहा नहीं जाता।

का०—क्यों बेटी, कहा क्यों नहीं जाता? बिना मुझसे कहे काम कैसे चलेगा?

रमा—आज मुझसे कुछ कहा नहीं जाता। मुझे डर लगता है। और—

का०—क्या तुम्हें मुझसे कुछ कहनेमें भी डर लगता है?

रमा—नहीं बाबूजी, डर नहीं लगता। मुझसे कुछ कहा नहीं जाता। कहनेमें बहुत कष्ट होता है।

का०—कष्ट किस बातका ? तुम मुझसे कोई बात मत छिपाओ। जो हो, वह साफ़ साफ कह दो।

रमा—अब मुझसे कात्यायनीके घर जाया नहीं जाता।

का०—क्यों, जाया क्यों नहीं जाता ? मैंने तो तुम्हें मना नहीं किया।

रमा—जी नहीं, आपने तो मना नहीं किया। लेकिन मुझे ही न जाने क्यों वहाँ जानेमें कुछ कष्ट और लज्जा होती है।

का०—तुम्हें किस बातकी लज्जा होती है और किससे होती है ?

रमा—मुझे कात्यायनीके सामने जानेमें लज्जा होती है। उसके सामने मुँह करते हुए मुझे कष्ट होता है।

कामाख्यानाथ सहसा चौंक पड़े। वे सोचने लगे—यह क्या ! रमाने आज यह बात कैसे कही ? वह इस बीचमें कात्यायनीका नाम क्यों लाई ! उसे कात्यायनीके सामने मुँह दिखाते हुए लज्जा आती है, उसकी इस बातका क्या अर्थ है ! क्या इसे भी वे सब बातें मालूम हो गई हैं ! छीः, वह कौन ऐसा निर्लज्ज और पाषाणहृदय है जिसने वे सब बातें इस मातृहीना बालिकाको सुनाकर इसे इतना कष्ट पहुँचाया है ! क्या रमाकी इतनी चंचलता और मन ही मन इतने दुःखी होनेका यही कारण है ? इसीलिए वह मुझसे इतना डरती है ? जान पड़ता है कि इस बालिकाको मन ही मन इस बातकी चिन्ता होने लगी है कि पिताजी इस वृद्धावस्थामें न जाने क्या करेंगे ! परमेश्वरने यह क्या अनर्थ किया !

जिस समय कामाख्यानाथ इस प्रकार चिन्ता सागरमें डूब रहे थे, उसी समय रमाने रुँधे हुए गलेसे कहा—आज एक महीनेसे अधिक हुआ मैं उनके घर नहीं गई। उन्हें इधर कभी बुलवाया भी नहीं था, इसी लिए वे लोग कभी मन्दिरमें भी नहीं आईं। उनके घर जानेको

मेरा बहुत जी चाहता है; लेकिन फिर भी मुझसे जाया नहीं जाता। मुझे बड़ी लज्जा होती है कि वे लोग अपने मनमें क्या सोचती होंगी।

धीरे धीरे कामाख्यानाथकी समझमें रमाकी बातें आने लगीं। वे सोचने लगे कि मैं जिस बातका सन्देह करता था वह बात नहीं है। इसे वे सब बातें नहीं मालूम हैं। रमाको न तो उस बातका कोई भय है और न मुझपर किसी प्रकारका सन्देह ही है। उसकी इन सब बातोंका कुछ और ही मतलब है। उस समय उन्होंने कुछ स्वस्थ होकर कहा—रमा, तुम साफ साफ बतलाओ कि उनके यहाँ जानेमें तुम्हें लज्जा क्यों जान पड़ती है?

रमा—बाबूजी, मैं यही सोचती हूँ कि जब वे लोग हमारे इतने अपने हैं, तब भी फिर वे इस प्रकार परायोंकी तरह हमसे दूर क्यों रहें?

अब कामाख्यानाथने अपने मनमें सोचा कि मेरी ममताकी आधार और दूसरोंके दुःखसे कातर होनेवाली कन्याके अनुरोधकी यह सूचना मात्र है। इसे दिन रात इसी बातकी चिन्ता लगी रहती है कि कात्यायनीके पिता नहीं हैं। उन्होंने निश्चिन्तताकी एक साँस लेकर कहा—रमा, मैंने तो कभी तुमको यह सिखलाया ही नहीं कि तुम कभी किसीको पराया समझो या किसीसे भेदभाव रखो। जब इस गाँवके सभी लोग तुम्हारे अपने हैं, तो फिर वही तुम्हारे लिए पराए क्यों होने लगे! इस संसारमें कोई किसीका पराया नहीं है, सब अपने ही हैं। जब कि सभी लोगोंको समान रूपसे सुख दुःख शोक और अभाव आदि हुआ करते हैं, तब फिर कौन किसका पराया हो सकता है? जीव आपसमें चाहे एक दूसरेसे कितनी ही दूरीपर क्यों न रहें, पर वे कभी पराए नहीं हो सकते। समस्त संसारमें एक बहुत बड़ी आत्मा व्याप्त है और वही सबमें टुकड़े टुकड़े होकर भरी है। इस प्रकार जब सभी एक हैं, तब

फिर कौन किसके लिए पराया हो सकता है? केवल दूर रहनेसे ही कभी कोई पराया नहीं हो सकता। हम उसका अस्तित्व न मालूम कर सकें फिर भी वह हमारे लिए पराया नहीं हो सकता।

कन्याके साथ बातें करते करते कामाख्यानाथका मन धीरे धीरे चिन्ताके अतल गह्वरसे निकलकर मुक्त आकाशमें ऊपरकी ओर उड़ा जाता था। पहले उनके मनमें जो आशंका उठी थी, वह भी अब क्रमशः दूर हो रही थी। रमा भी अपने पिताकी इस प्रकारकी बातें सुनकर पहले तो कुछ देर तक स्तब्ध रही और फिर बोली—बाबूजी, यदि यही बात है, तो फिर कोई कोई अधिक अपने क्यों जान पड़ते हैं?

का०—जिन लोगोंके साथ हम सदा रहते हैं, जिन्हें जानते पहचानते हैं और जिनके साक्षात् सम्बन्धके कारण हमारे मनमें स्नेह, प्रेम, श्रद्धा, भक्ति या मायाका उद्रेक होता है, वही लोग अधिक अपने जान पड़ते हैं।

रमा—उन लोगोंको भी तो हम लोग सबसे अधिक अपने जान पड़ते हैं।

का०—इसका कारण यही है कि वे लोग भी स्नेह प्रेम श्रद्धा आदिका विशेष अनुभव करते हैं। इसी लिए तुम भी इतने अधिक अपने आदमियोंके रहते हुए भी उन लोगोंसे अधिक प्रेम करती हो।

पिताकी ओर देखते देखते रमा सरल शिशुकी भाँति सहसा बोल उठी—बाबूजी, मेरी तो यह इच्छा होती है कि सदा ही उन लोगोंके पास रहा करूँ।

कामाख्यानाथने कुछ रुककर कहा—लेकिन रमा, यह कैसे हो सकता है? अपने मनकी इच्छाके सामने संसारके व्यावहारिक नियमोंकी

अवहेलना उचित नहीं है। तुम भी उनके पास उस प्रकार नहीं रह सकती हो और वे लोग भी अपना घर बार छोड़कर सदा तुम्हारे पास नहीं रह सकती हैं।

रमा—वे लोग क्यों नहीं रह सकतीं? यदि आप चाहें तो वे अवश्य रह सकती हैं।

का०—रमा, तुम इस प्रकार जोर देकर ऐसी अनुचित बात करनेके लिए क्यों कह रही हो? छी:, कभी इस प्रकार इच्छाके वशमें नहीं होना चाहिए। जब तक वे लोग बिलकुल पास न रहें, तब तक क्या उनके साथ प्रेम नहीं किया जा सकता? भगवानके प्रति जो लोग इतनी अधिक भक्ति करते हैं, उनकी पूजा करते हैं, उनसे प्रेम करते हैं, तो क्या उसे वे साक्षात् रूपमें अपने पास पाते हैं?

रमा—लेकिन आप ही तो कहा करते थे कि उन्हें अपने पास लाकर पूजा करनेके लिए ही विग्रह-मूर्तिकी सृष्टि हुई है। और—

रमा कुछ और भी कहना चाहती थी, पर लज्जाके कारण रुक गई। कामाख्यानाथने हँसते हुए कन्याके प्रश्नके उत्तरमें कहा—रमा, अब तो तुमने मुझे हरा दिया! तुम ठीक कहती हो। बिना किसीको पास लाए उसके प्रति भक्ति, श्रद्धा, पूजा या प्रेम कुछ भी नहीं किया जा सकता। लेकिन बेटी, केवल ऊपरसे ही किसीको अपने पास लानेसे कुछ भी नहीं हो सकता। उसे अपने हृदयमें अपने पास लाना पड़ता है। सेवा पूजा और प्रेमके द्वारा उसे अपने अन्तरमें प्रत्यक्ष करनेके लिए ही लोग विग्रहकी आराधना करते हैं। वही मुख्य है और सब गौण हैं। समझ गई न रमा?

इस प्रकार उच्च तत्त्वोंकी आलोचना करते करते कामाख्यानाथ बहुत ही प्रसन्न हो रहे थे। उन्होंने फिर कहा—अब यह बतलाओ कि तुम

क्या चाहती हो ? अब मुझे क्या करना चाहिए ? तुम्हारा यही मतलब है न कि जब तुम्हारा जी चाहे तब तुम उनके पास जा सको ?

रमा अब और कुछ न कह सकी—उसकी बोलनेकी इच्छा भी न होती थी। उसकी केवल यही इच्छा होती थी कि इस समय पिताजीसे जो प्रसंग छिड़ा है उसीके सम्बन्धमें उनसे कुछ और बातें सुनूँ। वह अपने पिताकी इस प्रकारकी बातोंके साथ ही तुरन्तके खिले हुए फूलके समान अपने जीवनकी मधुगन्ध या सौन्दर्य देव-चरणोंमें ही उत्सर्ग करके निर्माल्य ग्रहण स्वरूप उसे फिर संसारके सुख दुःखके साथ मिला रही थी! अपने पिताकी इसी प्रकारकी बातें सुननेके कारण ही वह गोविन्द-देवकी मूर्तिको चैतन्यमय समझने लगी थी। लेकिन उसका सारा आनन्द वह अकेली नहीं भोग सकती थी, इसी लिए समस्त संसारमें उसे वितरण करनेके लिए वह सदा व्यग्र रहा करती थी।

इतनेमें ही निरंजन वहाँ आ पहुँचा और पिता पुत्रीके इस प्रसंगमें बाधा देकर बोला—बाबूजी, अब रमा क्या कहती है? अब यह और क्या चाहती है?

कामाख्यानाथने हँसते हुए उत्तर दिया—यही तो अभी तक मेरी समझमें नहीं आया। तभीसे रोना और दुःखका स्रोत चल रहा है; लेकिन असल बातका अभी तक पता ही नहीं चल सका है।

उस सलज्जा बालिकाकी ओर स्नेहपूर्वक देखते हुए निरंजनने कहा—यह तो मैं पहलेसे ही जानता था कि असल बातका आपको पता नहीं लगेगा। यह आपके साथ इसी तरह शरारत करती है, आपको चिन्तित करके अस्थिर कर देती है और अन्तमें धीरेसे वह बात मेरे कानमें कह देती है। क्यों रमा, इस समय बाबूजीसे वह बात कहोगी या मुझसे ही कहोगी?

रमाने और भी अधिक लज्जित होकर तुरन्त उत्तर दिया—हाँ, मैं तुम्हींसे कहूँगी, बाबूजीसे नहीं कहूँगी ।

का०—अच्छा तो फिर मैं अब स्नान करने जाता हूँ ।

रमा—जी हाँ, आप जाइए । भइया तुम अभी जरा यहीं बैठो ।

निरंजन प्रसन्नतापूर्वक वहीं बैठ गया । कामाख्यानाथ भी यह सोच-कर निश्चिन्त भावसे स्नान करनेके लिए चले गए कि निरंजन अब रमाको यह बात अच्छी तरह समझा देगा कि उसका जो यह आग्रह है वह असंगत है । और यदि इसके सिवा कोई दूसरी बात होगी, कोई और ऐसा अनुरोध होगा जैसा कि सदा हुआ करता है, तो वह भी मुझे निरंजनसे मालूम हो जायगा ।

स्नान और पूजा आदि समाप्त करके जब कामाख्यानाथ भोजन करने बैठे, तब उन्होंने देखा कि न तो वहाँ रमा ही है और न निरंजन ही । जब उन्होंने विस्मित होकर एक दासीको उन लोगोंकी खबर लानेके लिए भेजा तो उन्हें पता लगा कि निरंजन अभी स्नान करने गया है ।

कामाख्यानाथसे उसी दासीने कहा—क्या वह अभी स्नान करने गया है ? इतनी देर तक क्या करता था ? रमा कहाँ है ?

दासी—वह ठाकुरजीवाली कोठरीमें गई हैं ।

का०—तो क्या अभी उसने भी पूजा नहीं की ?

कामाख्यानाथको और भी अधिक विस्मय हुआ और वे बैठे बैठे अपने पुत्रकी प्रतीक्षा करने लगे । जल्दा जल्दी स्नान करके निरंजन भी घबराया हुआ वहाँ आ पहुँचा और आसनपर बैठता हुआ बोला—आपने भोजन नहीं किया ? रसोई ठँढी हो गई ।

कामाख्यानाथने उसकी इस बातकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया

और कहा—तुम्हारे शरीरमें बहुतसा पानी लगा हुआ है। जाकर अच्छी तरह पोंछ आओ।

धोतीके पल्लेसे शरीरका जल पोंछते हुए निरंजनने कहा—यों ही जरासा था। पोंछ लिया। अब नहीं है।

भोजन करते समय कामाख्यानाथने कहा—तुम लोगोंको इतनी देर क्यों हुई ? क्या तबसे अब तक तुम लोग बातें ही कर रहे थे ?

खाते खाते निरंजनने अस्पष्ट रूपसे कहा—जी हाँ।

नि०—तुम्हें कुछ माल्डम हुआ कि रमाका इतना अनुरोध किस बातके लिए है ?

नि०—हूँ !

जब निरंजनने और कुछ नहीं कहा, तब फिर उन्होंने पूछा—अब तो वह शान्त हो गई है न ?

निरंजन केवल भोजनको इधर उधर कर रहा था। वह अपने पिताकी बातोंका कोई स्पष्ट उत्तर नहीं देता था और खानेमें भी उसका मन ठीक तरहसे नहीं लगता था। इसलिए कामाख्यानाथने उद्विग्न होकर कहा—क्या हुआ है, बतलाते क्यों नहीं ? देखो, मुझसे कोई बात मत छिपाना।

नि०—जी नहीं, कोई ऐसी बात नहीं है। अभी रहने दीजिए, फिर सुन लीजिएगा।

कामाख्यानाथने देखा कि निरंजन अभी कुछ कहना नहीं चाहता, इसलिए उन्होंने भी और कुछ नहीं पूछा। भोजन करके कामाख्यानाथ पलंगपर जा बैठे और थोड़ी देर बाद लेट गए। नौकरने तमाकू भरकर ला दिया। निरंजन भी उसी समय वहाँसे निकलकर कहीं चला गया।

इतनेमें रमा वहाँ आ पहुँची और दोनों हाथोंसे पिताके पैर पकड़कर और उनपर सिर रखकर बैठ गई। पिताको और भी अधिक आश्चर्य हुआ। वे बोले—हैं! यह क्या? रमा यह क्या कर रही है? धीरे धीरे उन्होंने रमाको उठानेकी चेष्टा की, लेकिन वह उठी नहीं और उसने उनके दोनों पैरोंमें अपना मुँह छिपा लिया। कामाख्यानाथने लाचार होकर पुकारा—निरंजन? निरंजन? तुरन्त ही निरंजन भी वहाँ आ पहुँचा। उसे देखकर कामाख्यानाथने कहा—देखो, रमा क्या कर रही है। इसे उठाओ। यह ऐसा क्यों कर रही है?

निरंजन चुपचाप सिर झुकाए खड़ा रहा।

का०—रमा, बतलाओ क्या बात है! तुम ऐसा क्यों कर रही हो? देखो, मुझे व्यर्थ दुःखी मत करो।

रमा—पहले आप कह दीजिए कि मैं जो कुछ कहूँगी वह आप करेंगे।

का०—अरे पगली, भला ऐसी कौनसी बात है जो तेरे कहनेपर भी मैं न मानूँगा। व्यर्थ मुझे कष्ट मत दे।

रमा—जी नहीं, पहले आप यह कह दीजिए कि मैं जो कुछ कहूँगी वह आप करेंगे। मेरे सिरपर हाथ रखकर कहिए। भइया, तुम भी जरा पास आ जाओ। भइयाके शरीरपर हाथ रखकर कहिए।

मारे विस्मयके कामाख्यानाथ अवाक् हो रहे थे और रमाका व्यवहार ऐसा था कि वे स्थिर भी नहीं हो सकते थे। वे बोले—पहले यह तो बतलाओ कि तुम्हें क्या चाहिए? तुम्हारा मतलब क्या है?

रमा—पहले आप मेरे सिरपर हाथ रखें, तब मैं कहूँगी और तभी पैर भी छोड़ूँगी।

निरंजनकी ओर देखकर कामाख्यानाथने कहा—बेटा, यह क्या बात है ?

नि०—जी, कोई ऐसी बात नहीं है। आप स्वीकार करनेमें इतना क्यों डरते हैं ? हम लोग आपकी सन्तान होकर क्या आपसे कोई अनुचित प्रतिज्ञा करावेंगे ?

का०—यह तो ठीक है, पर इसके लिए शपथकी क्या अवश्यकता है ? जब मैं कह ही रहा हूँ कि जो कुछ तुम लोग माँगोगे वहीं मैं दूँगा, तो क्या यह शपथके बराबर नहीं हुआ ? बतलाओ रमा, क्या चाहती हो ? कहता तो हूँ कि जो तुम माँगोगी वही दूँगा। पैर छोड़ो, उठो।

रमा—आप कात्यायनीको मेरे पास ला दीजिए।

कामाख्यानाथ बिलकुल स्तब्ध हो गए। फिर थोड़ी देर बाद बोले, अभी तक तुम्हें उसी बातका ध्यान बना हुआ है। इसी लिए तुमने इतनी आफ़त मचा रखी है। मैंने तो कई बार ज्योतिरत्नजीकी स्त्रीसे अनुरोध किया कि आप लोग चलकर मेरे ही मकानमें रहें; लेकिन उन्होंने माना ही नहीं। अब तुम्हें यह भी तो सोचना चाहिए कि उन लोगोंको जबरदस्ती अपने घर लाना कितना अन्याय—

रमा—इसमें जबरदस्ती और अन्याय काहेका ? जो हमारी माँ होंगी, वह हमारे घरमें न रहेंगी तो और कहाँ रहेंगी ?

का०—क्या कहा ?—तुम्हारी क्या होंगी ?

रमाने पिताके पैरोंमें और भी मुँह छिपाकर कहा—हमारी माँ होंगी। आप उन्हें हमारी माँ बनाकर हमारे घरमें ला दीजिए।

कामाख्यानाथ फिर कुछ देरतक स्तब्ध रहे। अन्तमें निरंजनकी ओर देखकर बोले—तुम लोगोंने यह क्या षड्यन्त्र रचा है ?

नि०—षड्यन्त्र तो कुछ भी नहीं है। हम लोग तो आपसे धर्म-संगत भिक्षा ही माँग रहे हैं।

का०—मालूम हुआ कि तुम भी इसमें शामिल हो! तुम्हें तो उचित था कि तुम पहलेसे ही रमाको रोक देते जिसमें वह मेरे सामने ऐसी असंगत बात कहती ही नहीं।

नि०—बाबूजी रमाका यह असंगत प्रलाप नहीं है। यह बिलकुल धर्मसंगत बात कह रही है। यदि आप इसकी बात नहीं मानेंगे, तो अन्याय करेंगे। यदि हम लोग आपके लड़के बाले होकर आपको ऐसे आवश्यक कर्तव्यके पालनके लिए बाध्य न करेंगे, तो हम लोगोंका ही बड़ा भारी अन्याय होगा।

का०—अन्याय कैसा, क्या तुम लोग पागल हो गए हो?

नि०—अन्याय नहीं तो और क्या है? उनके पिता हम लोगोंके पिताको सम्प्रदान कर गए हैं। अब आप यदि उसके अनुसार उन्हें हमारी माँ बनाकर घरमें न लावेंगे, तो यह केवल अन्याय ही नहीं होगा बल्कि बड़ा भारी पाप भी होगा।

का०—यह तुमसे किसने कहा? कौन कहता है कि वे मुझे अपनी कन्या सम्प्रदान कर गए हैं? मैं देखता हूँ कि कुछ लड़कियोंने मिलकर तुम्हारी भी बुद्धि भ्रष्ट कर दी है।

नि०—जी नहीं, यह बुद्धि भ्रष्ट होनेकी बात नहीं है। ज्योतिरत्न-जीकी मृत्युके समय मैं भी वहीं उपस्थित था। रमाके मुँहसे आज वह बात सुनकर मुझे भी याद आ गया कि उनकी कन्याने जो कुछ स्थिर किया है वह लड़कपन नहीं है, बल्कि बिलकुल ठीक और समझदा-रीकी बात है। पिताके दानसे ही कन्याका विवाह होता है।

का०—क्या इसीको दान कहते हैं? दान ऐसा ही होता है? वह तो केवल—

नि०—जी नहीं, वे वास्तवमें अपनी कन्या सम्प्रदान कर गए हैं।

का०—तो क्या तुम लोग यह कहना चाहते हो कि बाल बुद्धि ही इतनी अभ्रान्त होती है?

नि०—मैंने मान लिया कि वह अभी बालिका हैं, लेकिन फिर भी इस विषयमें उनकी बुद्धि अभ्रान्त है। वह अपने पिताकी मनोगत इच्छा भली भाँति जानती हैं। और आप जैसी बालबुद्धि समझते हैं उनकी वैसी बालबुद्धि नहीं है।

का०—उसमें चाहे कितनी ही अधिक बुद्धि क्यों न हो, पर फिर भी सत्रह अठारह वर्षकी बालिका और पचास वर्षके वृद्ध पुरुषकी बुद्धिमें कुछ अन्तर होता ही है। लेकिन तुम लोग यह बात भी भूले जा रहे हो।

नि०—आप पचास बरसके कब हो गए? अभी पचास तक पहुँचनेमें आपको बहुत देर है। और इसी वयसमें ही वे सन्तानकी माँ हैं। जो हमारी माँ हैं, उन्हें आप हम लोगोंके सामने बालिका नहीं कह सकते।

का०—निरंजन तुम लोगोंका यह बहुत बड़ा अन्याय हो रहा है। उठो रमा, पैर छोड़ो।

रमाने और भी अधिक जोरसे पैर पकड़ लिए और अपना मुँह उनमें अधिक छिपा लिया। निरंजन कहने लगा—आप ही जबरदस्ती ऐसे गुरुतर विषयमें अवहेला कर रहे हैं। लेकिन अब हम लोग आपको ऐसी अवहेला नहीं करने देंगे।

का०—यह कैसी लड़कपनकी बातें कर रहे हो। मैंने मान लिया कि ज्योतिरत्नजीकी यही इच्छा थी; लेकिन इससे मुझे क्या? यदि वे मेरे अनजानमें और मेरी इच्छा न रहते हुए अपने मनमें ही कन्या सम्प्रदान कर गए हों, तो इससे मुझपर कोई धर्मसंगत उत्तरदायित्व नहीं आता।

नि०—मरते समय वृद्ध ब्राह्मण और कोई उपाय न देखकर अपनी कन्या सम्प्रदान कर गया है और आप उसे विवाह करके घरमें नहीं ला रहे हैं, यह क्या कोई धर्मसंगत काम है? और वह ब्राह्मणकन्या आपको अपना स्वामी समझकर भी सदा कुमारी रहकर अनाथोंकी भाँति अपना जीवन व्यतीत करेगी—यदि हम लोग उसे अपने घरमें न लावेंगे तो क्या अपराधी न होंगे? न तो हम लोग इतना बड़ा पाप करेंगे और न आपको करने देंगे।

का०—तो क्या तुम लोग यही कहना चाहते हो कि इस वृद्धावस्थामें विवाह करना मेरे लिए बड़ा धर्मसंगत कार्य होगा? धर्मके अनुसार तो इस समय मुझे वानप्रस्थ आश्रममें जाना चाहिए और तुम लोग मेरी सन्तान होकर जबरदस्ती मुझसे इतना बड़ा अधर्म कराना चाहते हो? रमामें अभी बहुत लड़कपन है, अभी तक उसे संसारकी किसी बातका कोई ज्ञान नहीं हुआ है। किसी बालककी बुद्धिसे निकली हुई कोई बात सुनकर बालक सहजमें ही उससे सहमत हो जाते हैं। लेकिन निरंजन, तुम्हें क्या हो गया है? यद्यपि वयसमें तुम भी अभी बालक हो, तथापि विद्या बुद्धिमें तुम्हें कोई बालक नहीं कह सकता। क्या तुम भी मेरी ओरसे अथवा अपनी ही ओरसे इस बातके गुरुत्वपर विचार नहीं कर सकते हो? तुम क्योंकर बिना समझे बूझे रमाकी हाँमें हाँ मिला रहे हो?

नि०—बाबूजी, आपहीसे शिक्षा पाकर हम लोग इतने बड़े हुए हैं। हम लोग आपके बाल बच्चे ठहरे। वयस या बुद्धिमें चाहे हम लोग बालक ही क्यों न हों; लेकिन फिर भी बचपनसे ही हम लोगोंको न्याय और अन्यायमें भेद करनेकी शिक्षा मिली है। यदि आप हम लोगोंके लिए यह अधर्मका कार्य करेंगे; तो हम लोग कभी ऐसा कार्य न करने देंगे। इसी लिए हम लोग इतना जोर दे रहे हैं और इतनी जिद कर रहे हैं। भला आप ही बतलाइए कि और भी कभी पहले हम लोगोंने आपके साथ इस तरह बातें की हैं, आपके साथ इस तरह तर्क वितर्क किया है? आज केवल—

इतना कहते कहते निरंजनकी आँखोंमें आँसू आ गए और उसका गला भर आया। कामाख्यानाथने धीरेसे कहा—नहीं, कभी नहीं।

नि०—आज हम लोग केवल अधर्म होता हुआ देखकर ही आपसे इतनी बातें कह रहे हैं और उपदेश देनेकी तरह तर्क वितर्क कर रहे हैं।

का०—भला तुम लोगोंकी बातोंको मैं कभी तर्क वितर्क समझ सकता हूँ? यह तो तुम लोगोंका अनुरोध मात्र है। लेकिन आजका तुम्हारा यह अनुरोध भी वैसा ही है, जैसा तुम लोग बहुत लड़कपनमें किया करते थे।

नि०—खैर, आप ऐसा ही समझ लीजिए! लेकिन हम लोगोंको यह स्मरण नहीं आता कि आपने हमारे किसी अनुरोधकी रक्षा न की हो। आज भी आपको हम लोगोंका यह अनुरोध मानना ही पड़ेगा।

का०—लेकिन निरंजन, जरा यह तो सोचो कि अब तुम पहलेकी तरह बच्चे नहीं हो। यदि तुम अपने वृद्ध पितासे इस प्रकारका पाप

कराओगे, तो तुम्हें भी अवश्य पाप होगा। तुम यह तो जानते ही हो कि कहा है—" पंचाशोर्द्धे वनं व्रजेत्।"

नि०—लेकिन बाबूजी, यह तो बतलाइए कि क्या आप दो चार दस बरस बाद भी रमाको और मुझे छोड़कर वन जा सकेंगे? क्या हम लोग आपको जाने देंगे? जब ऐसा हो नहीं सकता और आपको हम लोगोंके लिए गृहस्थाश्रममें ही रहना पड़ेगा, तो फिर हम लोग आपको ऐसा अधर्म क्यों करने देंगे? शास्त्र चाहे जो कुछ कहता हो, पर हम लोग संसारी जीव ठहरे। हम लोगोंके लिए यह अधर्म ही है।

रमा अबतक चुप थी। अब वह बोली—अब कह दीजिए कि जो कुछ हम लोग कहेंगे, वह आप करेंगे।

कामाख्यानाथ और भी अस्थिर होकर कन्याका सिर पकड़कर उसे उठाने लगे और कहने लगे—उठो रमा, उठो।

रमा०—पहले कह दीजिए, तब उठूँगी।

का०—निरंजन रमाको उठाओ। बस करो, बहुत हो गया।

नि०—मैं उसे उठाता तो हूँ, पर आपको यह काम अवश्य करना होगा। आप ही बतलाइए कि इसमें अधर्म किस बातका होगा? क्या हम लोग अपना कोई स्वार्थ सिद्ध करनेके लिए यह काम करने जा रहे हैं? जिस प्रकारके अनेक काम आप सदा ही करते रहते हैं, उसी तरहका काम इसे भी क्यों नहीं समझते? एक महत् पुरुषकी अन्तिम इच्छाका पालन करनेके लिए, एक सधवा ब्राह्मण कन्याका अन्याययुक्त कुमारीत्व और उसकी जन्म भरकी असहाय अवस्था दूर करनेके लिए ही तो हम लोग यह काम करना चाहते हैं। आप वनमें जाकर इससे बढ़कर और कौनसा अच्छा काम करेंगे? यहाँ रहकर आप जो कुछ

करते हैं, क्या उससे भी बड़ा और कोई काम संसारमें है? दया माया, दूसरोंका उपकार—

कामाख्यानाथने कोमल स्वरसे कहा—है निरंजन, इससे भी बड़ा और काम है। परमात्माने मनुष्यकी दया और परोपकार करनेकी शक्ति बहुत ही परिमित कर रखी है। अपने इस विशाल राज्यमें वही अकेला राजा है। जबतक उसकी दया न हो, तबतक कौन किसका अभाव दूर कर सकता है!—ये सब वृत्तियाँ देकर उस परमात्माने मनुष्यकी आत्माका केवल उत्कर्ष भर बढ़ा दिया है। लेकिन इसके सिवाय भी, इससे बढ़कर भी मनुष्यके लिए और कुछ है और वह है मनुष्यकी चरम और परम उत्कर्षता।

नि०—हो सकता है, लेकिन हम लोगोंके लिए तो यही सबसे बड़ा धर्म है और जिस उत्कर्षकी बात आप सोच रहे हैं उसमें भला कौन बाधा दे सकता है? वह उत्कर्ष भी मनुष्य दया, धर्म आदि वृत्तियोंके साथ इस संसारमें ही प्राप्त करता है। इस संसारमें ये सब चीजें पास ही पास रहती हैं। इनमेंसे कोई बात किसी दूसरी बातके लिए बाधक नहीं होती, बल्कि परस्पर एक दूसरीकी सहायक होती है। लेकिन ये सब बातें तो आपकी ही बतलाई हुई हैं। आज लाचार होकर वही सब बातें मैं आपसे कह रहा हूँ!

पुत्रकी इस प्रकारकी संकोचपूर्ण बातें पुत्रवत्सल पितासे नहीं सही गई। वे व्यस्त होकर बोले—निरंजन, आखिर लड़के ही तो बड़े होकर बाप होते हैं, लड़कोंका यह अधिकार है!

नि०—जी नहीं, आप ऐसी बातें न कहें! इसे आप हम लोगोंका केवल अनुरोध ही समझें। हम लोग जो कुछ कह रहे हैं, वह सब अनुरोध ही अनुरोध है।

का०—क्यों निरंजन, तुम यह भी नहीं समझते कि इसमें कितनी लोकनिन्दा होगी?

नि०—लोकनिन्दा कभी अधर्मसे बढ़कर नहीं हो सकती। और फिर लोगोंमें सुयश प्राप्त करनेका प्रयत्न करना भी तो एक स्वार्थ ही है। हम लोगोंको वह स्वार्थबुद्धि छोड़कर ही यह कार्य करना होगा।

का०—सुनो, मैं किसी उपयुक्त ब्राह्मण पात्रके साथ उसका विवाह करनेका प्रयत्न करता हूँ—

नि०—जी, आप यह कैसी बातें कह रहे हैं? वे हमारी माँ हैं। क्या हम लोगोंके द्वारा कभी ऐसी चेष्टा हो सकती है?

का०—तुम लोगोंको कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। तुम लोग चुपचाप बैठो। मैं सब प्रबन्ध कर दूँगा।

नि०—आप क्यों व्यर्थ इतना कष्ट करेंगे? वे और किसी घरमें क्यों जाने लगीं और फिर हम ही लोग उन्हें और कहीं क्यों जाने देंगे? आप व्यर्थ उन्हें और अधिक दुखी मत कीजिएगा। मैंने रमासे अच्छी तरह सुन लिया है कि हम लोगोंकी स्वर्गीया माताकी तरह ही उनमें भी धर्मज्ञान और स्वभावकी दृढ़ता तथा प्रौढ़ता है। बस सौकी सीधी एक बात यह है कि उन्हें हम लोग अपने घरमें लावेंगे। उठो रमा, पैर छोड़ो। हम लोग जैसा कहेंगे बाबूजी वैसा ही करेंगे, उसके विपरीत कर ही नहीं सकते। यदि ये नहीं मानेंगे तो फिर हम लोग अपने प्राण—

अब रमा अपने पिताके चरणोंकी धूल अपने मस्तकपर लगाकर उठ खड़ी हुई। कामाख्यानाथ चुपचाप बैठे रहे। रमा और निरंजन भी दोनों उनके सामने बहुत देर तक वैसे ही खड़े रहे। उन्होंने देखा कि

पिताजीके मुँहसे बात ही नहीं निकलती है। रमाने कातर भावसे अपने भाईकी ओर देखा। ऐसा जान पड़ता था कि अपने पिताकी वह अवस्था देखकर उसे कष्ट हो रहा था। निरंजनने इशारेसे रमाको वहाँसे चले जानेके लिए कहा और पितासे कहा—अब आप आरामसे सोएँ। आपकी सन्तान होकर जब हम लोग स्वार्थबुद्धि छोड़ सकते हैं, तो क्या आप धर्मरक्षाके लिए थोड़ीसी लोकनिन्दा सहन नहीं कर सकते? अवश्य कर सकते हैं। हम लोगोंके लिए इस काममें धर्म ही होगा, अधर्म नहीं हो सकता। अब आप निश्चिन्त होकर सोएँ।

ग्यारहवाँ परिच्छेद।

कात्यायनी घरका सब काम काज समाप्त करके अपने छोटेसे आँगनके कोनेमें वहीं बैठी थी, जहाँ पहले उसके पिताजी बैठा करते थे। उस समय सन्ध्या बीत चुकी थी और बहुत कुछ रात हो आई थी। सप्तमीकी अर्द्धस्फुट चाँदनी धीरे धीरे खिसक रही थी और चन्द्रमा पश्चिमकी ओर ढल रहा था। जमींदारके यहाँकी आरती बहुत देर पहले समाप्त हो चुकी थी। अब तक गाँवके रास्तेसे लोग विचित्र प्रकारके शब्द करते हुए दर्शन करके लौट रहे थे; पर अब उनकी आवाज भी नहीं सुनाई देती थी। कात्यायनी भी चुपचाप बैठी हुई थी। उसके सिरके ऊपर काले आकाशमें असंख्य तारे शृंखला-रहित भावसे इधर उधर फैले हुए थे। कहीं कहीं असंख्य अगण्य छोटे छोटे नक्षत्रपुञ्ज उस विशाल कृष्ण पटपर उपेक्षित भावसे एकत्र हो रहे थे और कहीं कहीं बड़े बड़े तारे बड़े बड़े मणि-खंडोंके समान

चमक रहे थे। पृथ्वीकी भाँति आकाशके राज्यमें भी वही विशृंखलता और वही विषमता देखनेमें आती थी। कात्यायनीको अपने पितासे मालूम हो चुका था कि इन ग्रह नक्षत्रोंमेंसे एक भी ऐसा नहीं है जो अपना नियम या मार्ग छोड़कर चलता हो; पर फिर भी उनमें इतनी विशृंखलता दिखाई देती थी। उनमेंसे अनेक तारोंको वह पहचानती थी और उनके उदय गति तथा अस्त आदिके सम्बन्धमें अनेक बातें जानती थी। परन्तु आज उसे उनमें कुछ भी शृंखला या नियम नहीं दिखाई देता था। आज वह नभोराज्यके इन छोटे बड़े तारोंका मिलान इस पृथ्वीके मनुष्योंके साथ कर रही थी। वे तारे भी मनुष्योंके ही समान जान पड़ते थे। उनमेंसे कोई छोटा था, तो कोई बड़ा। कोई सुख सौभाग्यकी ज्योतिसे झिलमिला रहा था और कोई इतना अधिक नगण्य और म्रियमाण जान पड़ता था कि लक्ष्यमें ही नहीं आता था। मनुष्योंके जन्म और मृत्युकी ही भाँति उनका उदय और अस्त होता है। लेकिन इसके उपरान्त क्या होता है? वे तारे तो फिर लौट लौट कर आ जाया करते हैं! उनकी गति बहुत ही सुस्पष्ट है! लेकिन मनुष्यका जीवन? उसका उद्देश्य, उसकी गति या उसका परिणाम कुछ भी जाना नहीं जा सकता। क्या वह भी इस ग्रह-नक्षत्रमय ब्रह्माण्डके साथ साथ सुसंगत भावसे एक निर्दिष्ट पथकी ओर ही जा रहा है? वह किस ओर जा रहा है और उसका कौनसा मार्ग है? इस गतिशील प्रकाण्ड जगत्का पर्यवेक्षण करके तो मनुष्यने उसके सम्बन्धमें बहुतसी बातें जान ली हैं; लेकिन इस क्षुद्रातिक्षुद्र मनुष्यके जन्म और मृत्यु, गति और स्थितिके सम्बन्धमें क्या आज तक किसीको वैसा कुछ मालूम हो सका है? शास्त्रोंमें जो कुछ कहा गया है वह तो मनुष्यके चिन्तारूपी समुद्रमें केवल एक द्वीपकी कल्पना करना है! क्या उससे कभी सब सन्देहोंका

निराकरण हो सकता है? नहीं, कभी नहीं हो सकता। इस समुद्रका कोई किनारा ही नहीं है और उससे मनुष्यके चित्तको कभी पूरा आश्वासन नहीं मिल सकता।

साथ ही साथ उसे रमाकी बात भी याद आई। वह किशोर जीवन भी तो इसी समुद्रमें तैर रहा है; लेकिन उसने इसका किनारा कैसे पा लिया? और फिर वह तो बहुतसे प्राणियोंके दुःख और शोकमें सम्मिलित हो रही है, बहुतसी अनुभूतियोंमें अंश ले रही है। लेकिन कात्यायनीके लिए तो वह बात नहीं थी। वह स्वयं थी, उसकी माता थी और महेन्द्र था। उसके लिए तो बस यही तीन प्राणी थे। और रमाके मनमें न जाने ऐसे कितने आदमी हैं। कात्यायनीका सम्बन्ध इन्हीं तीन आदमियोंके भविष्यसे है। और फिर तीन भी क्यों, माता अब कितने दिनकी मेहमान है? केवल स्वयं कात्यायनी है और महेन्द्र है। केवल इन्हीं दोनों प्राणियोंके जीवनके विचारसे भी वह इस समुद्रका कूल नहीं देख रही है। और रमाके सामने उसके द्वारपर न जाने कितने जीवोंका उत्ताल समुद्र लहरें मार रहा है। रमा सदा उनमेंकी सैंकड़ों तरंगें अपनी गोदमें लेती है और अपने कैशोर जीवनको सहस्रों संघातोंसे पूर्ण धारामें मिला देती है। वह अवश्य ही किसी कूलका सन्धान पाकर ही इस प्रकार शान्त, सहिष्णु और करुणपूर्ण मन्दाकिनीकी तरह बही चली जाती है। रमाने उस दिन बहुत ठीक कहा था कि मनुष्यका स्नेह, प्रेम, दया, धर्म अथवा समाज इनमेंसे किसी न किसीके बन्धनमें पड़ना बहुत ही आवश्यक है। जो लोग किसी बन्धनमें नहीं पड़ते, उन लोगोंका जीवन इसी तरह अशान्त समुद्रकी भाँति दिन रात संसारके तटपर टकरा टकराकर हाहाकार मचाता रहता है।

कात्यायनीने स्वयं अपने जीवनको भी तो एक बन्धनमें बाँध रखा है। अपने जीवन-देवताकी इच्छाके साथ साथ उसने भी तो अपना जीवन उसी क़ैदमें डाल दिया है। तो फिर वह इतनी अशान्त और बेचैन क्यों रहती है ? उसे किस बातकी इतनी चिन्ता है! स्वयं अपने जीवनमें तो उसके लिए कोई ऐसी बात थी ही नहीं, जिसके लिए उसे इतनी चिन्ता करनी पड़ती।

सचमुच वह बात नहीं थी। लेकिन एक और जीवनकी अस्पष्ट छाया अनजानमें उसके जीवनपर आ पड़ती है और वही रह रहकर मानो उसे मार्गसे भटका दिया करती है। वह सोचती है कि यदि महेन्द्रको मेरी माता इतने दिनोंतक इस प्रकार उद्भ्रान्त न करती, आज वह यदि भाईकी भाँति ही उसे एक नवीन संसारमें प्रविष्ट करा देती, तो क्या आज मेरा समय इसी तरह केवल मृत पिताकी स्मृति और उनके कठोर आदेश मात्रके बलसे दबा हुआ बीतता ? कात्यायनीने अपनी इस अठराह वर्षकी अवस्था तक तो महेन्द्रके सम्बन्धमें कोई चिन्ता नहीं की थी; किन्तु अब वैसा क्यों नहीं होता ? जब वह निश्चिन्त होकर किसी बातपर विचार करने बैठती है, तभी सहसा चौंक पड़ती है और उसे ऐसा जान पड़ता है कि वह अन्दर ही अन्दर किसी अथाह समुद्रमें बही जा रही है। उस समुद्रमें उसे उसी तरहकी ऊँची ऊँची तरंगें उठती हुई दिखाई देती हैं, उसी तरह जोरकी हवा चलनेका शब्द सुनाई देता है, उसी तरह भटके हुए लोगोंकी सी अशान्ति जान पड़ती है। यह सब क्यों होता है ? जब वह तत्त्वकी जिज्ञासा करनेके विचारसे उस समुद्रमें गोता लगाती है, उस समय उसे वहाँ क्या दिखाई देता है ?

जब कात्यायनीने अन्यमनस्क होकर सामनेकी ओर देखा, तो चन्द्रमाकी क्षीण चाँदनीमें महेन्द्र खड़ा हुआ दिखलाई दिया, जो टक

लगाए उसीके मुँहकी ओर देख रहा था। वह एक दमसे चौंक उठीं और बोली—महेन्द्र।

महे०—हाँ, मैं हूँ। कात्यायनी क्या तुम डर गई?

का०—नहीं, डरी नहीं। मुझे पता नहीं लगा कि तुम कब आए, इसी लिए चौंक पड़ी थी। माँ तुम्हारा आसरा देखती देखती अन्तमें थककर सो गई हैं। तुम्हारा काम निपट गया?

महे०—हाँ, आजका तो निपट गया। क्या तुम लोग मेरा आसरा देखती थीं? मेरा तो न आना ही संभव था।

का०—यह तो हम लोगोंको मालूम था। लेकिन फिर भी माँ समझती थीं कि शायद तुम आ जाओ, इसी लिए वह तुम्हारे वास्ते भोजन लेकर बहुत देर तक बैठी थीं।

महे०—तो चलो, फिर परोस दो। इतना कहकर महेन्द्रने एक गहरी साँस ले ली।

कात्यायनीने उसकी ओर देखकर कहा—जरा ठहर जाओ। ठंढे हो लो। तुम बहुत थके हुए जान पड़ते हो।

महे०—नहीं, कोई ऐसी थकावट नहीं है। मैं सोचता था कि इधर बहुत दिनोंसे—बहुत दिनोंसे माँके हाथका भोजन नहीं मिला।

कात्यायनीने आँखें नीची कर लीं। महेन्द्रकी अन्तिम बात और उसका स्वर सुन कर उसकी आँखोंमें सहसा जल भर आया। लेकिन फिर भी उसे दबानेकी चेष्टा करते हुए उसने कहा—चलो, भोजन कर लो।

महे०—ठहरो, जरा सुस्ता लूँ।

इतना कहकर महेन्द्र जमीनपर ही कात्यायनीसे थोड़ी दूरपर एक लकड़ीसे पीढ़ेपर पीठ टेककर जमीनपर ही बैठ गया।

कात्यायनीने कोमल स्वरसे कहा—जमीनपर क्यों बैठ गए? पीढ़े-पर बैठो।

महे०—रहने दो, यहीं मजेमें हूँ। आज कितने दिनोंपर मैं यहाँ आया हूँ? क्यों कात्यायनी, चार महीने तो हो गए होंगे?

का०—हाँ, चार महीने क्यों नहीं हुए। तुम आजकल कहाँ रहते हो?

महे०—सोदपुरमें। इतने दिनों तक निर्दिष्ट रूपसे कहीं एक जगह नहीं रहता था; लेकिन अब वहाँ एक काम आ गया है, इसी लिए अब मैं सोचता हूँ कि वहीं रहा करूँ।

का०—क्यों, काम तो तुम्हें बहुत दिनोंसे मिला हुआ है।

महेन्द्रने कुछ हँसकर कहा—नहीं कात्यायनी, वह सब तो यों ही व्यर्थके काम थे। लेकिन अबकी मुझे सचमुच एक काम मिल गया है।

का०—चलो, अच्छा ही हुआ। तुम बैठो, मैं माँको जगा दूँ।

महे०—नहीं, दिन भरके उपवासके उपरान्त इस समय वह शिथिल होकर पड़ी हैं। उन्हें मत जगाओ। क्या आज तुम जमींदार बाबूके यहाँ ठाकुरजीके दर्शन करने नहीं गईं?

का०—सबेरे तो गई थी, पर माँके उपवासके कारण इस समय नहीं गई।

महे०—लेकिन मैंने तो तुम्हें सबेरे भी नहीं देखा था। खाली माँको देखा था।

का०—वह पूजाकी समाप्ति तक वहाँ ठहरी थी, पर मैं उनसे पहले ही चली आई थी।

महे०—क्यों, चली क्यों आई थीं? क्या तुम यह समझती थी कि वहाँसे तुम्हारे चले आनेकी ही जरूरत है?

महेन्द्रका सहसा बदला हुआ और रूखा स्वर सुनकर कात्यायनीको कुछ आश्चर्य हुआ। उसने कहा—जरूरत क्यों न थी? क्या घरमें कोई काम नहीं रहता? लेकिन तुम यह बात क्यों पूछ रहे हो?

महे०—इसका एक कारण है। और मैं यह भी जानता हूँ कि यह जो तुमने कामका नाम लिया सो खाली बहाना था।

कात्यायनीने कुछ क्रुद्ध होकर कहा—मान लिया कि बहाना ही था, तो इससे क्या हुआ? घर छोड़कर बाहर कहीं ज्यादा देर तक मेरा मन नहीं लगता।

महे०—लेकिन घनिष्ठता बढ़ानेमें तो तुमने आज तक कोई कमी नहीं की। पर अबकी बार मैं तुम्हारे भाव और व्यवहारमें बहुत अन्तर देख रहा हूँ।

महेन्द्रके इस अकारण वाद-विवादपर कात्यायनीने कुछ और भी बिगड़कर कहा—महेन्द्र, क्या तुम यह बात भूल गए कि उनके साथ इतनी घनिष्ठता बढ़नेका मूल कारण क्या है?

महे०—लेकिन वे यह तो कभी नहीं कह गए थे कि केवल इसी कारण तुम इतनी घनिष्ठता बढ़ा लेना।

का०—तुम साफ साफ बतलाओ कि तुम्हारे कहनेका मतलब क्या है। कैसी घनिष्ठता और कौन बढ़ाता है?

महे०—आज कामाख्याबाबूकी लड़की रमाने माँसे जो कुछ कहा है, वह तुमने सुना है?

का०—नहीं, मैंने तो कुछ भी नहीं सुना।

कात्यायनी सहसा बहुत विचलित और अप्रस्तुत हो गई। उसने देखा कि महेन्द्र तीव्र दृष्टिसे मेरी ओर देख रहा है। कात्यायनीकी

आँखें आपसे आप नीची हो गईं। उसने कहा—माँने तो मुझसे कुछ भी नहीं कहा।

महे०—वह चाहे कहें और चाहे न कहें, पर तुम्हारे भावसे ही जान पड़ता है कि तुम उस विषयमें कुछ न कुछ अवश्य जानती हो।

का०—मुझे साफ साफ बतलाओ कि क्या बात है! क्या मेरी बात-पर तुम्हें विश्वास नहीं होता?

महे०—हो सकता है कि तुम्हें वह बात न मालूम हो! अब तुम मेरी स्वामिनी होगी, मेरे प्रभुकी पत्नी होगी!

कात्यायनी पहले तो कुछ देर तक चुप रही, फिर रोषपूर्वक बोली—जान पड़ता है कि तुम मुझसे हँसी करना चाहते हो?

महे०—मैं हँसी करता हूँ! माँसे पूछो कि मैं सच कहता हूँ या झूठ?

का०—चलो, मैं अभी पूछती हूँ।

इतना कहकर कात्यायनी उठ खड़ी हुई।

महेन्द्रने उसे बीचमें ही रोककर कहा—सुनो कात्यायनी, मैंने समझ लिया है। मैंने यह भी सुना है कि रमा बार बार मना कर रही थी कि तुमसे यह बात न कही जाय। लेकिन फिर भी क्या वे लोग बिना तुम्हारी स्वीकृतिके ही यह काम करना चाहते हैं? आश्चर्य है!

का०—किसने कहा कि वे यह काम करना चाहते हैं? मैं इस बातपर कभी विश्वास नहीं कर सकती!

महे०—नहीं कात्यायनी, मैं जो कुछ कहता हूँ वह बिलकुल सच है और उनकी लड़की और लड़का दोनों मिलकर इस बातका उद्योग कर रहे हैं। लेकिन मैं तो यही सोच सोचकर अवाक् हुआ जाता हूँ कि कामाख्याबाबू इतने बड़े और वयस्क होकर भी—

का०—महेन्द्र, तुम यह बात निश्चित समझ रक्खो कि ऐसा कदापि नहीं हो सकता। यह उनकी लड़कीका ही पागलपन है।

महे०—कात्यायनी तुम नाराज मत होना। क्या मैं सचमुच कोई नहीं हूँ? मैंने मान लिया कि पिताजी कामाख्या बाबूपर ही तुम्हारा सब भार छोड़ गए हैं; लेकिन क्या उन्हें मुझसे एक बात भी पूछनेकी जरूरत नहीं मालूम हुई?

का०—तुम क्यों व्यर्थ नाराज हो रहे हो? मैं तो समझती हूँ कि वे इस विषयमें कुछ भी नहीं जानते! मैं सब समझ गई। यह सारा बखेड़ा रमाका ही—

महे०—कात्यायनी, तुम कैसी असम्भव बातें कह रही हो? क्या बिना पिताकी इच्छाके ही लड़के लड़कियाँ इस तरहकी बातें कह सकते हैं?

का०—मुझे तो ऐसा ही जान पड़ता है कि वे लोग ऐसी बातें कह सकते हैं। मुझे तो पहलेसे ही इस बातका भय—इतना कहते कहते कात्यायनी सहसा रुक गई।

महेन्द्रने उसकी ओर देखकर कहा—अच्छा तो यही बतलाओ कि इसका क्या कारण है? तुम्हें पहले किस बातका भय हुआ था? क्यों उन लोगोंका इतना अधिक साहस बढ़ गया? तुम जानती हो, मुझे यह बात पूछनेका अधिकार है। तुम चाहे मानो या न मानो, चाहे कोई यह बात स्वीकार करे या न करे, पर धर्मतः मैं ही तुम्हारा अभिभावक—

का०—क्या यह भी कोई ऐसी बात है कि जब तुम कहोगे तभी कोई मानेगा?

महे०—तो फिर तुम्हीं बतलाओ कि किस अधिकारसे वे लोग ऐसी असंगत बातें कहते हैं?

का०—महेन्द्र, तुम क्यों व्यर्थ इतना नाराज हो रहे हो? सुनो, मैं तुम्हें सब बातें बतलाती हूँ। जब तुम यहाँसे चले गए थे, तब कामाख्या बाबू मुझे एक दिन समझानेके लिए आए थे। यह तो तुम जानते ही हो कि वे मेरे ब्याहके लिए बहुत अधिक प्रयत्न कर रहे थे। इसी लिए मुझे उनसे साफ साफ कह देना पड़ा कि मेर पिताजीकी आज्ञा है, मैं जन्मभर कुमारी ही रहूँगी। आपके ये सब प्रयत्न बिलकुल व्यर्थ हैं।

महे०—बहुत ठीक। इसी लिए वे तुमसे स्वयं अपना विवाह करनेके लिए इतने आतुर हो गए! शायद तुम्हारे कहनेका यही मतलब उन्होंने समझा?

का०—उन्होंने नहीं समझा। उस दिन उनकी लड़की पीछे खड़ी खड़ी सब बातें सुन रही थी। पर मुझे नहीं मालूम था कि वह भी सब बातें सुन रही है।

महे०—लेकिन उनकी लड़कीने ही तुम्हारी इन बातोंका यह अर्थ कैसे लगाया, यह मेरी समझमें नहीं आता। तुम सब बातें साफ साफ नहीं कह रही हो।

कात्यायनी चुप रही। थोड़ी देर तक उसकी ओर देखते रहनेके उपरान्त महेन्द्रने कहा—सच कहनेमें आज तुम्हें इतना भय लग रहा है?

कात्यायनीने सिर ऊपर उठाया और महेन्द्रकी ओर एकटक देखते हुए कहा—यह बात तुम अच्छी तरह जानते हो कि सच कहनेमें

मुझे कभी भय नहीं लगता। भयकी बात नहीं है; परन्तु सब बातें कहनेकी मेरी इच्छा नहीं है। इसलिए कि सब बातें जाननेकी तुम्हारे लिए कोई आवश्यकता नहीं है।

महे०—इसी लिए न कि जिसके जाननेकी आवश्यकता थी उसे तुमने सब बातें बतला दी हैं। क्या सचमुच तुम्हें जमींदारकी घरवाली बननेका शौक हुआ है? यह तो बहुत अच्छी बात है। लेकिन फिर तुम मुझसे इतना छिपाती क्यों हो?

कात्यायनीका क्रोध बहुत बढ़ गया और वह मुँह फेरकर कोठरीकी ओर चल दी। महेन्द्र झपटकर आगे बढ़ा और उसका मार्ग रोककर खड़ा हो गया। हाथ जोड़कर बोला—कात्यायनी, तुम मुझे क्षमा करो। मैंने अन्यायपूर्वक तुम्हारा अपमान किया है, इसके लिए तुम मुझे क्षमा करो। मैं दिन भर यह भाव अपने मनमें दबाए हुए था। उनके सामने उनके नौकरकी भाँति रहनेके कारण मेरा मन बहुत विकृत हो गया था, इसी लिए मैंने तुमसे ऐसी लगती हुई बातें कह दीं। कात्यायनी, तुम नहीं जानती हो और न समझ ही सकती हो। तुम चाहे सच कहो और चाहे झूठ, लेकिन यह तो सोचो कि यह बात कितनी लगती हुई है!

कात्यायनी कुछ देर तक बिलकुल चुप रही और तब बोली—लेकिन आज तो मुझे यही जान पड़ता है कि यदि यह बात सच होती, तो तुम्हारे लिए अच्छा होता महेन्द्र।

महे०—अच्छा होता? तो क्या इसी लिए मैं पागलोंकी तरह चारों ओर मारा मारा फिर रहा हूँ? क्या इसी लिए—नहीं, कात्यायनी, तुम किसीकी मत होना। तुम इस समय जिस तरह हो, उसी तरह रहो।

का०—महेन्द्र, तुम जानते हो कि जब शरीरमें किसी स्थानपर कोई दुष्ट घाव हो जाता है, तो उसके लिए अस्त्र-चिकित्सा करनेकी आवश्यकता होती है। उसकी यही व्यवस्था है, नहीं तो अच्छे होनेकी आशा नहीं रहती। कष्ट होनेपर भी वह पीड़ा सहनेकी विशेष आवश्यकता होती है।

महे०—यह तो मैं जानता हूँ। पर तुम यह बात क्यों कह रही हो? मैं नहीं जानता कि तुम क्या करोगी! अच्छा रहने दो कात्यायनी, मुझे भय लगता है।

का०—सुनो, उस दिन मैंने कामाख्याबाबूसे यही कहा था कि मेरा विवाह हो गया है। पिताजी मुझे सम्प्रदान कर गए हैं। अब मेरा दूसरा विवाह नहीं हो सकता।

महे०—इसका क्या मतलब? वे किसे दान कर गए हैं? कहाँ तुम्हारा विवाह हुआ?

का०—महेन्द्र तुमने भी तो सुना था। मेरे भाग्यविधाता—मेरे जीवनदेवताने अन्तिम समय जो आज्ञा दी थी, वह तुम्हें भी तो याद होगी! अपनी कन्याको अन्तिम समय उन्होंने किसे समर्पित किया था?

कुछ देर तक चुप रहनेके उपरान्त महेन्द्र सहसा बोल उठा—तो क्या उससे तुमने कामाख्या बाबूका मतलब समझा है? ओह, तब तो फिर और कुछ कहनेकी जगह ही बाकी नहीं रह गई—

का०—मैं चाहे जो कुछ समझा करूँ, पर यह तो तुम जानते ही हो कि उससे न तो उनकी कोई हानि ही है और न कोई लाभ ही।

महे०—क्या उनपर तुम्हारा इतना ही अधिक विश्वास है? मैं समझता हूँ कि अबकी बार तुम्हारा वह विश्वास दूर हो जायगा।

यदि तुमने पिताजीकी उन बातोंका यही मतलब समझा हो और उन्हें भी वैसा ही समझती हो, तो फिर तुम्हें अधिक समय तक इस प्रकार नहीं रहना पड़ेगा। ओह ! मैं समझ गया, इसी लिए कामाख्या बाबूकी लड़की और लड़के अपने वृद्ध पिताका विवाह करनेके लिए इतने आतुर हो रहे हैं। यह सब उन्हीं लोगोंकी कारसाज़ी है।

का०—महेन्द्र, मैं तुम्हें मना किए देती हूँ, तुम आगे कभी उनके सम्बन्धमें मेरे सामने इस प्रकारकी बातें न करना। यह ठीक है कि मैं जन्मभर कुमारीका भाँति ही रहूँगी; पर साथ ही यह भी याद रखो कि उनके साथ मेरा विवाह हो गया है।

महे०—यदि यही बात है, तो फिर तुम क्यों कुमारी रहने लगीं ? और अब तो तुम यह भी देख लोगी कि वे ही तुम्हें कैसे इसी तरह रहने देते हैं ! कात्यायनी, क्या तुमने एक बार भी यह सोचनेका प्रयत्न किया है कि तुम्हारी इस कोरी कल्पनाका कहाँ तक परिणाम हो सकता है ? हाय यह तुमने क्या कर डाला !

का०—महेन्द्र, तुम क्यों इतने चंचल हो रहे हो ? तुम देख लेना कि वे जिस तरह हैं उसी तरह रहेंगे और मैं भी जिस तरह हूँ उसी तरह रहूँगी। यह मेरी कोरी कल्पना नहीं है। यह बात तो तुम बहुत अच्छी तरह जानते हो कि पिताजीकी इच्छा मेरे लिए कितनी सत्य है। लेकिन कामाख्याबाबूको तुमने अभी अच्छी तरह नहीं पहचाना है। उनकी लड़की और लड़के चाहे जो कुछ कहें, पर क्या वे कभी इस अवस्थामें मेरे जैसी लड़कीके साथ विवाह करके संसारमें हास्यास्पद हो सकते हैं ? कभी नहीं।

महे०—कात्यायनी, तुम इस बातपर हँसो मत तुम्हारे जैसी लड़की ? भला तुम्हें क्या हुआ है, क्या तुम किसी प्रकार अयोग्य हो ?

जरा देखती रहो कि उसी अयोग्य लड़कीके लिए वे इस अवस्थामें क्या क्या करते हैं!

कात्यायनी आँखें फाड़कर महेन्द्रकी ओर देखती हुई बोली—यदि यह बात हो गई, तो फिर समझ लेना चाहिए कि शिवजीका व्रत भी भंग हो सकता है। लेकिन साथ ही यह भी है कि यदि वह असम्भव बात भी सम्भव हो जाय, तो भी यह बात अच्छी तरह समझ रखना कि मेरा जो संकल्प है वह कभी टल नहीं सकता। कमसे कम मुझे तो तुम बहुत अच्छी तरह जानते हो।

महे०—यदि यही बात थी, तो फिर तुमने क्यों इतना तूमार बाँधा! मैं तुम्हें अपने मनमें कुमारी समझकर ही सुखी होता था। तुमने मेरा यह सुख भी मुझसे छीन लिया और अपनी अवस्थामें भी कोई परिवर्तन नहीं किया। कात्यायनी, यह तुमने क्या कर डाला! इससे तुम्हें क्या लाभ हुआ! उलटे एक आदमीको व्यर्थ—

का०—महेन्द्र, मैंने जो कुछ किया है वह बहुत ही ठीक किया है। हम तीनों आदमियोंको यह बात जाननेकी आवश्यकता थी।

महे०—यदि तुम्हारे मनमें यही बात थी तो फिर इसका अन्तिम अंश भी क्यों बाकी रख छोड़ती हो? किसके विचारसे? नहीं, नहीं, अब तुम किसीका विचार मत करो, किसीका मुँह मत देखो। इस प्रकार रहनेकी अपेक्षा तो तुम्हारे लिए यही अच्छा है कि अन्तःकरणसे तुम जिस मार्ग-पर गई हो, बाहरसे भी उसी मार्गपर चलो।

का०—महेन्द्र, मेरे लिए उसी मार्गसे जाना ही उचित था। उससे मेरा भी भला होता और तुम्हारा भी भला होता। लेकिन केवल अपने लाभके विचारसे मैं उनका इतना बड़ा अपमान नहीं करा सकती। मेरे भाग्यमें जो कुछ बदा है, वह हुआ करे।

महेन्द्र कुछ देर तक टक लगाए कात्यायनीकी ओर देखता रहा और फिर क्षीण स्वरसे बोला—कात्यायनी, क्या तुम्हें उनका इतना अधिक ध्यान है कि तुम उनके लिए संसारकी और किसी बातका विचार नहीं कर सकतीं ?

का०—नहीं, मेरे लिए सबसे बड़ा विचार इसी बातका है कि कहीं मेरे लिए उन्हें अपने आसनसे नीचे न गिरना पड़े।

महे०—तो क्या उनके प्रति इतनी भक्ति रखती हो, उनसे इतना प्रेम करती हो ?

का०—वे देवता हैं और देवताका पतन कोई सहन नहीं कर सकता।

महे०—तो फिर केवल पिताजीकी आज्ञाका ही क्यों नाम लेती हो ? यह भी क्यों नहीं कहतीं कि तुम उनसे प्रेम भी करती हो ?

इतनेमें अन्दरसे माँने पुकारा—कात्यायनी ! यह कौन बोल रहा है ? क्या महेन्द्र आया है ?

कात्या०—हाँ माँ। (महेन्द्रसे) बहुत रात हो गई, चलो भोजन कर लो।

जब कात्यायनीको उसकी बातका कोई उत्तर न मिला, तब उसने सिर उठाकर देखा कि महेन्द्रका कहीं पता नहीं है। वह चुपचाप पत्थरकी मूरतकी तरह खड़ी हो रही, माताके बार बार पुकारनेपर भी कोई उत्तर न दे सकी।

*　　*　　*　　*

बहुत तड़के कामाख्यानाथ अपने बागमें हवा खानेके लिए टहल रहे थे। उससे पहले दिन अमावास्या थी और श्यामापूजनके कारण

उन्हें सोनेमें बहुत देर हो गई थी। सबेरा होनेमें थोड़ी ही देर थी, इसलिए वे केवल घंटे भर विश्राम करके ही बागमें टहलनेके लिए चले आए थे। वे सोचते थे कि थोड़ी देर तक यों ही टहलकर तब गंगा-स्नान करने चलेंगे। न सोनेके कारण उनका शरीर कुछ क्लान्त हो रहा था और उसी क्लान्त शरीरमें शिशिरकी वायु लग रही थी। सामने वृक्षोंके नीचे ओससे भींगी हुई निर्गुंडीके पुंज धीरे धीरे एक सफेद आसन बिछा रहे थे। पूर्व ओरका आकाश शान्त नदीके वक्षके समान जान पड़ रहा था। सब दीपक एक एक करके बुझे जा रहे थे। अन्धकारपूर्ण आकाश मानों किसीकी पिंगल हास्य-छटासे धीरे धीरे उद्भासित हो रहा था। मन्दिरके आँगनमें यात्रावाले महिषासुरके वधके प्रसंगका कीर्तन कर रहे थे। बेला, तबला और जोड़ी आदि बाजे बहुत जोर जोरसे बज रहे थे और कीर्तन करनेवाले बिहागका सुर अलाप रहे थे। जान पड़ता था कि उस समय कामाख्याबाबूका मन निस्तब्ध और शान्त प्रकृतिकी ही कामना कर रहा था। वाद्य और संगीतके उच्च नादसे प्रभातके स्तब्ध उद्यानको भी मथित होते देखकर उनकी भौंवें कुछ तन रही थीं। स्नान करनेके लिए जानेके विचारसे जब वे पीछे मुड़े, तब उन्होंने देखा कि मुँहपर थोड़ासा घूँघट काढ़े एक स्त्री उन्हींकी ओर बढ़ी चली आ रही है।

कामाख्यानाथ विस्मित होकर उसकी ओर देखने लगे। वह स्त्री उनके कुछ और पास आकर रुक गई। उस समय प्रातःकालका प्रकाश कुछ कुछ स्पष्ट हो रहा था। कामाख्यानाथने तीव्र दृष्टिसे देखकर पहचान लिया कि वह स्त्री कात्यायनी है।

जान पड़ता था कि कात्यायनी बहुत प्रयत्न करके ही धीरे धीरे आगे बढ़ रही है। अब वह रुक गई। उसने समझ लिया कि अब मैं

बहुत समीप आ गई हूँ। अब उसका पैर किसी तरह आगे बढ़ता ही न था।

प्रातःकालकी शान्त शोभाके सामने मन्दिरका वह कोलाहल सुनकर कामाख्यानाथका मन पहलेसे ही कुछ अप्रसन्न था; तिस पर यह विलक्षण और विपरीत व्यापार देखकर वे और भी विरक्त हो गए। सामनेकी वह उज्ज्वलदर्शना बालिका उन्हें एक दुष्ट ग्रहसी जान पड़ने लगी। उन्हें ऐसा जान पड़ा कि मानों इसीके दृष्टिपातसे मेरे इतने दिनोंके शान्तिपूर्ण जीवनमें एक बड़ा भारी विप्लव मच गया है। वे सोचने लगे कि इसके पिताने शायद इसी लिए इसका विवाह नहीं किया था। शायद उन्होंने पहलेसे ही अच्छी तरह समझ लिया था कि जो कोई इसके पास आवेगा, या इसके मंगलकी कामना करेगा, उसीको इसके भाग्यके साथ मिलकर अशान्ति भोगनी पड़ेगी। इस लड़कीमें इतने ही अमोघ दुर्लक्षण हैं।

इसी बीचमें कामाख्यानाथने अपना कर्तव्य भी बहुत कुछ स्थिर कर लिया था। अपने पुत्र और कन्याका रँग ढँग देखकर धीरे धीरे वे समझ गए थे कि अब विवाह किए बिना मेरी और कोई गति नहीं है। लेकिन फिर भी जीवनके उस अद्भुत परिवर्तनको उनका मन पूर्ण रूपसे ग्रहण नहीं कर रहा था। उन्होंने यही सोच रखा था कि किसी अज्ञात पापके प्रायश्चित्तके स्वरूप मुझे यह एक दुरूह व्रतसा करना पड़ेगा। लेकिन इस बातके विचारसे उन्होंने अपने मनमें अधिक उथल पुथल नहीं होने दी थी। वे सोचते थे कि जब जो कुछ सामने आकर उपस्थित होगा तब वह पूरी तरहसे भोगना ही पड़ेगा। किसी विषयके आकर उपस्थित होनेसे पहले ही अनेक प्रकारका ऊहापोह करना कामाख्यानाथकी प्रकृतिके विरुद्ध था। लेकिन आज उषाके आलोकसे प्रकाशित इस मूर्त्तिने

सहसा उन्हें नवागत जीवनकी एक झलक दिखलाई दी। उन्होंने कुछ तीव्र स्वरसे पूछा—क्या चाहती हो?

कामाख्यानाथने देखा कि मेरे इस प्रकार देखनेके कारण कात्यायनी एक फूलवाले वृक्षकी डाल पकड़कर मानो उसीमें समा जानेका प्रयत्न कर रही है। उन्होंने समझ लिया कि बालिका कुछ लज्जित हो गई है। तिस परसे मेरा यह तीव्र स्वर सुनकर वह और भी चौंक पड़ी है। कामाख्यानाथ भी कुछ लज्जित और कुछ दुखी हुए। उन्होंने सोचा कि शायद यह भी यों ही बागमें घूमनेके लिए आई है। इसलिए कुछ अप्रस्तुत भावसे उन्होंने जल्दीसे पूछा—रमाको ढूँढ़ रही हो? वह शायद मन्दिरमें होगी।

कामाख्यानाथ पीछेकी ओर मुड़कर दूसरी ओर जानेके लिए आगे बढ़ना चाहते थे कि उन्हें कोमल स्वरमें सुनाई पड़ा—"जी, मैं आपके ही पास आई थी।"

कामाख्यानाथ फिर घूमकर खड़े हो गए और बोले—मेरे पास? क्यों?

जब कामाख्यानाथने देखा कि कात्यायनी कुछ कहना तो चाहती है, पर कह नहीं सकती, तब थोड़ी देर बाद उन्होंने स्वयं ही कहा—यदि तुम कुछ कहना चाहती हो और स्वयं न कह सकती हो, तो रमाके द्वारा कहला दो।

का०—रमासे कहनेसे कुछ फल न होगा।

कामा०—तो फिर जो कुछ तुम्हें कहना हो वह जल्दीसे कह लो, क्योंकि मुझे अब गंगास्नानके लिए जाना है।

लेकिन जब कामाख्यानाथने देखा कि इतनेपर भी कात्यायनी कुछ कह नहीं रही है, तब उन्होंने कुछ हँसते हुए फिर कहा—तुम्हारे जैसी

बालिकाके लिए इस प्रकारकी लज्जा स्वाभाविक ही है। लेकिन जब कि तुम साधारण बालिकाओंकी तरह नहीं हो, तब तुम्हारे लिए तो इस प्रकार लज्जा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

कामाख्यानाथकी ये बातें सुनकर कात्यायनी और भी लज्जित हुई और सिर न उठा सकी। प्रगल्भ स्वभाववाली कात्यायनीकी इस असंगत समयकी यह लज्जा देखकर कामाख्यानाथने और कुछ विरक्त होकर एक बार फिर उसकी ओर देखा और तब वहाँसे चलना चाहा। इसपर कात्यायनीने सिर उठाकर उनसे कहा—आप कृपाकर जरासा ठहर जायँ, मुझे आपसे एक बात कहना है।

कामा०—लेकिन तुम तो कुछ कह ही नहीं रही हो। सम्भव है, अभी यहाँ कोई आ जाय।

कात्या०—तो वह तो मेरे ही लिए लज्जाकी बात है और आप तो सदासे देखते आ रहे हैं कि मैं उस लज्जासे रहित हूँ।

कामा०—मान लिया कि तुम्हें इस बातकी लज्जा न हो, पर और किसीको तो हो सकती है? खैर, इन सब बातोंको जाने दो और यह बतलाओ कि तुम क्या कहना चाहती हो।

कात्या०—कदाचित् आप यह बात तो अच्छी तरह जानते हैं कि रमा मुझसे बहुत स्नेह करती है।

कामा०—हाँ, जानता हूँ।

कात्या०—मैंने सुना है कि उसी स्नेहके कारण वह आपसे एक बहुत ही अनुचित अनुरोध कर रही है। उसके इस लड़कपनके व्यवहारसे मुझे बहुत कष्ट हो रहा है। इसी लिए मैं आपसे यह कहनेके लिए आई हूँ कि कहीं आप भी उसकी बातोंमें आकर उलटा न समझ जायँ।

कात्यायनी ये सब बातें कुछ रुक रुक कर और धीरे धीरे कह रही थी और कामाख्यानाथ चुपचाप खड़े हुए सुन रहे थे। जब उसकी बात समाप्त हो चुकी, तब वे बोले—रमाको इस प्रकार भ्रममें डालनेके लिए दोषी कौन है?

कात्या०—दोषी तो मैं ही हूँ, पर उस दिन मैं यह नहीं जानती थी कि वह भी घाटपर पीछे खड़ी है।

कामा०—क्या रमाने उस दिन घाटपर ही सब बातें सुनी थीं? तुम्हारे मुँहसे और कभी उसके सामने ये सब बातें नहीं निकली थीं?

कात्यायनीने कुछ गम्भीर स्वरसे कहा—आप उसीसे पूछ लीजिएगा, और यह कहकर सिर नीचा कर लिया।

कामाख्यानाथने समझ लिया कि कात्यायनीने यह बात बहुत ही दुःखित भावसे कही है, इसलिए उन्होंने सान्त्वनाके स्वरमें कहा—ठीक है, लेकिन मुझे यह बात नहीं मालूम थी, इसी लिए तुम्हारे प्रति मैंने कुछ अधिक अविचार किया है।

कात्यायनीने बिना सिर उठाए कहा—नहीं, यह बात नहीं है। मैं रमासे कहती और चाहे न कहती, पर परिणाम दोनोंका एक ही था। पहले दिन जब मैंने वह बात सुनी थी, तब मैं समझती थी कि रमाका ऐसा असंगत अनुरोध आप कभी न मानेंगे; परन्तु आज मैंने सुना कि इस बातको और कई आदमी भी कह रहे हैं। मैं आपसे पूछती हूँ कि क्यों और कैसे ये सब बातें उठ रही हैं?

कामाख्यानाथने बहुत ही कोमल भावसे उत्तर दिया—तुम्हींने ये सब बातें उठाई हैं। क्यों तुम और कहीं अपना ब्याह करनेके लिए तैयार नहीं होतीं?

कात्या०—तो क्या यही इस बातका प्रमाण है कि मैं ही ये सब बातें—

इतना कहकर कात्यायनीने फिर सिर झुका लिया।

कामा०—तुम्हारे ही मुँहसे निकली हुई बातोंसे यह प्रमाणित हो चुका है और रमाने वे सब बातें स्वयं अपने कानोंसे सुनी हैं।

कात्या०—मैंने तो यही कहा था कि मेरे पिताजीकी आज्ञा है कि मैं किसीके साथ ब्याह नहीं करूँगी।

कामा०—पर साथ ही तुमने यह भी तो कहा था कि तुम्हारे पिता तुम्हें मुझको ही सम्प्रदान कर गये हैं।

कात्या०—पर क्या साथ ही मैंने यह भी नहीं कहा था कि मैं सदा कुमारी ही रहूँगी ? मेरे पिताजीकी एक बुआ बूढ़ी होकर मर गईं, पर उन्होंने विवाह नहीं किया। बस, मैं भी उन्हींकी तरह रहना चाहती हूँ।

कामा०—यदि कोई तुम्हारे मनकी वह धारणा न जानता होता, तब तो दूसरी बात थी; परन्तु अब तो वह बात प्रकट हो गई है।

कात्यायनी मारे क्षोभके अपने होंठ चबाने लगी। उसने रुँधे हुए स्वरसे कहा—क्या किसीके मनकी धारणाके आधारपर ही किसीपर कुछ जोर चल सकता है ? क्या आप रमाकी लड़कपनकी बातोंमें आ जायँगे और उसीके अनुसार काम करेंगे ?

कामाख्यानाथ बहुत ही कठोर भावसे हँस पड़े और बोले—तुम रमाको लड़की समझती हो, पर क्या तुम कभी यह भी सोचती हो कि स्वयं तुम उससे कितनी बड़ी हो ? तुम्हारी इसी प्रवीण बुद्धिसे तो इस समय मुझे अपना कर्तव्य समझना पड़ता है !

अब कात्यायनी अपने आपको सँभाल नहीं सकी। कामाख्यानाथका हँसीमें छिपा हुआ यह रुक्ष व्यंग्य सुनकर वह थर थर काँप उठी और घुटनोंके बल बैठ गई। उसकी आँखोंसे झर झर आँसुओंकी धारा बहने लगी। उसने दोनों हाथ जोड़कर और कामाख्यानाथके पैरोंकी ओर बढ़कर कहा—आप मुझे क्षमा करें। मैंने पहले यह नहीं समझा था कि यह बात यहाँतक बढ़ जायगी।

कामाख्यानाथ कुछ विस्मित होकर पीछे हट गए और कात्यायनीके आँसुओंसे भरे हुए नेत्रोंकी ओर देखकर बोले—कात्यायनी! यह तुम क्या कर रही हो? मैं तो अब तुम्हें दोषी नहीं समझता। यह तुम्हारे और मेरे दोनोंके भाग्यकी बात है, नहीं तो ऐसी बातें और क्योंकर हो सकती थीं! अच्छा अब तुम उठकर घर जाओ। जो कुछ हो गया है या हो रहा है, उसके लिए व्यर्थ दुखी मत हो। उठो, कोई देख लेगा।

कात्यायनी उठकर खड़ी हो गई और आँसू पोंछकर देखने लगी। सामने मेघाच्छन्न पर्वतके समान गम्भीर मूर्तिकी जगह प्रभातके प्रकाशमें कैलासकी रजत कान्ति शुभ्र और उज्ज्वल आभासे प्रकाशमान हो रही है। वह समझ रही थी कि कामाख्यानाथकी विरक्तिके पत्थरके स्तूपको हटाकर मैं प्रसन्नताकी एक धारा ले आई हूँ, इसलिए आनन्दकी एक सूक्ष्म किरण अतर्कित भावसे कात्यायनीके मनपर भी आ पड़ी थी। कामाख्यानाथकी दृष्टिसे दृष्टि मिलते ही कात्यायनीने आँखें नीची कर लीं। उसे भी ध्यान हुआ कि कहीं कोई देख न ले, इसलिए उसे भी न जाने कहाँसे कुछ लज्जाने आ घेरा। नीले आकाश और शुभ्र मेघपर कहींसे एक लाल प्रकाश आ पड़ा।

उस लज्जित भावको दबाते हुए कात्यायनीने कहा—जो कुछ हो गया है, उसके लिए तो मुझे कुछ भी दुःख नहीं है। लेकिन आगे जो

कुछ होनेवाला है वह यदि आप अब भी चाहें, तो रुक सकता है। आप कृपाकर यही करें, बस वही कहनेके लिए मैं इस समय यहाँ आई हूँ।

कुछ देर तक स्तब्ध रहकर कामाख्यानाथने कहा—अच्छा यह बात तो फिर होगी, लेकिन पहले मुझे एक बात बतला दो। मेरे सम्बन्धमें इस घटनाका चाहे जो कुछ प्रभाव पड़ता हो, लेकिन जब तुम अपने मनमें यही विश्वास करके बैठी हो, तब तुम ये सब बातें सुनकर इतनी चंचल क्यों हो रही हो?

कात्यायनीने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप अपनी आँखोंके आँसू पोंछने लगी। कामाख्यानाथने उसकी ओर देखते हुए कहा—लज्जा, अपमान, अधर्म और अकर्तव्य यह सब तो मेरे ही लिए हैं। लेकिन तुम्हारे लिए तो कुछ भी नहीं है। तब तुम क्यों इतनी कातर हो रही हो?

कात्या०—लेकिन आखिर आप ही ये सब बातें किस लिए सहन करेंगे? जिस बातके लिए मेरी इतनी अधिक अनिच्छा है और आपके लिए इतनी लज्जा अपमान और अधर्म है, तो फिर आप वह काम क्यों करें?

कामा०—पहले तुम मुझे यह बतलाओ कि यदि ब्याह करनेकी तुम्हारी बिलकुल ही इच्छा नहीं थी, तो फिर तुमने वह बात हम लोगोंको बतलाई ही क्यों, वह धारणा अपने मनमें ही क्यों न रखी?

कात्या०—क्या मैंने स्वयं वह इच्छा की थी! क्या मैं कभी ऐसा असंगत साहस कर सकती थी? मेरे लिए जो भगवान् थे उन्हींकी यह इच्छा थी। और आपको भी वह बात क्या मैंने सहजमें बतलाई थी? आप ही सोचें कि उस समय आपने कितनी जिद की थी?

कामा०—हाँ मुझे याद है। लेकिन जब कि तुम यह समझती हो कि तुम्हारे विधाताने ही यह विधान किया है और वह विधान तुम

सिर-आँखोंपर भी लेती हो, तो फिर बाकीके कामके लिए ही तुम्हारी इतनी अधिक अनिच्छा क्यों है? जब मेरे विधाताके विधानसे वह बात मुझे मालूम हो गई है, तब यदि वह काम न किया जायगा तो सम्भव है कि मुझको भी कुछ पाप हो।

कात्या०—जी नहीं, इसमें आपको कुछ भी पाप न होगा। मैंने जो आपको वह बात बतलाई थी, उसमें मेरा यह उद्देश्य कभी नहीं था।

कामा०—मैं समझ गया। मेरी और तुम्हारी अवस्थामें बहुत अन्तर है और इससे चारों ओर निन्दा भी होगी, इसलिए इस काममें तुम्हारी अनिच्छा होना बहुत ही स्वाभाविक है। लेकिन इस व्यापारको जड़से ही उखाड़ फेंकनेमें तुम मेरी सहायता क्यों नहीं करतीं? मैं कहता हूँ कि उसमें तुम्हें भी कोई पाप न होगा। तुम्हारे पिताजी जो कुछ कह या कर गए हैं, वह उनकी इच्छाका विकार मात्र था। मृत्युकालके विकार और प्रलापके कारण ही वे तुम्हारे मनमें यह धारणा उत्पन्न कर गए हैं। कात्यायनी, यदि तुम किसी और पात्रके साथ विवाह कर लोगी, तो उसमें न तो तुम्हें ही कुछ पाप होगा और न मुझे ही। लेकिन यदि तुम अपने मनमें यह धारणा दृढ़ रक्खोगी और जन्म भर इसी प्रकार कुमारी रहोगी, तो मैं भी संसारी ठहरा, मेरे लिए इसमें अधर्म होगा। मैं कोई योग्य पात्र ढूँढ़कर—हैं, तुम चली कहाँ? ठहरो, मेरी बात सुन लो।

कात्यायनी बहुत देरसे खड़ी हुई थी। अब वह वहाँसे चलने लगी और दृढ़तापूर्वक बोली—आपसे मुझे और कुछ नहीं कहना है। आपकी जो इच्छा हो, वह आप करें और मेरी जो इच्छा होगी वह मैं करूँगी।

कामा०—अच्छी बात है। तो फिर तुम तैयार हो जाओ। मैं ही तुम्हारे साथ विवाह करूँगा।

कात्यायनी मुड़कर खड़ी हो गई और उत्तेजित स्वरमें बोली—यह भी कभी नहीं हो सकता। मैं आपकी लज्जा और अपमानके भयसे मरी जा रही हूँ, इसी लिए आपको शायद एक और अधर्म करनेका सुयोग मिल गया है? लेकिन मुझसे दोनोंमेंसे एक भी बात न हो सकेगी।

कामा०—लेकिन कात्यायनी, मैंने तो तुमसे कभी यह नहीं कहा कि तुम मेरी लज्जा और अपमानका भय करो। इस विषयमें भी तुम्हारी अनिच्छा देखकर ही मैंने यह प्रस्ताव किया था।

कामा०—लेकिन उस अनिच्छाका कारण जाननेका आपने कोई प्रयत्न नहीं किया, जो कुछ आपके मनमें आया वही आपने समझ लिया। आपने यह सोचनेकी आवश्यकता नहीं समझी कि एक सामान्य लड़की क्या अपनी अवस्थामें परिवर्तन करनेके लिए आप सरीखे बड़े आदमीका इस प्रकार अपमान करा सकती है? यह क्या मेरे लिए भी लज्जाकी बात नहीं है?

कामाख्यानाथने कुछ अप्रस्तुत और विनीत भावसे कहा—कात्या-यनी, तुम केवल मेरी लज्जा और अपमानका ही विचार करती हो। लेकिन तुम्हारी तरह मुझे भी इस बातकी चिन्ता होती है कि तुम्हारे जैसी बालिकाका जीवन सदाके लिए यों ही नष्ट न हो जाय।

कात्या०—क्या यह इतनी ही बड़ी बात है जिसके सामने आपका मान अपमान सुयश सब तुच्छ है? यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। एक साधारण बालिकाके जीवनका मूल्य ही क्या है! उसकी आवश्यकता ही क्या है और उसकी सफलता या विफलताका ही इतना विचार क्यों होता है! क्या उसीके लिए आप यह सब करनेके लिए तैयार हुए हैं? आपने ही न अभी यह कहा था कि यह काम आपके

लिए भी अधर्म और अकर्तव्य है। तो फिर आप किस लिए यह अधर्म करेंगे? एक तुच्छ बालिकाके जीवनके सफलताके लिए? धिक्कार है उस बालिकाको जो इस प्रकार अपना जीवन सफल करना चाहती हो! यदि आप इस विषयमें भूल करना भी चाहेंगे, तो मैं कभी वह भूल न होने दूँगी।

कामाख्यानाथ स्तब्ध और निर्वाक् होकर खड़े रहे। जब देखा कि कात्यायनी फिर जाना चाहती है, तब उन्होंने जड़ित स्वरसे कहा—तो क्या फिर यही स्थिर हुआ? इसमें मेरे लिए कुछ भी अधर्म न होगा?

कात्या०—बिलकुल नहीं। यदि और कुछ न हो, तो आप अपने मनमें यही समझ लीजिएगा कि पिताजी जिस प्रकार दान कर गए हैं, उसी प्रकार आपने ग्रहण भी कर लिया है।

कामा०—कात्यायनी अब भी तुम अच्छी तरह सोच लो। जिसे तुम अपने मनमें अपना स्वामी समझोगी, उसे भी अपने मनमें तुम्हें अपनी स्त्री समझनेका—।

कात्या०—इसकी तो कोई आवश्यकता नहीं है। वह ग्रहण करनेकी बात तो मैंने यों ही कह दी थी। आप मेरे विषयकी सब बातें अपने हृदयसे बिलकुल निकाल दें। इसमें मुझे कुछ भी दुःख न होगा।

कामा०—कात्यायनी जरासा और ठहर जाओ। जरा मैं अच्छी तरह समझ लूँ कि तुम जो कुछ कहती हो, उसका क्या अभिप्राय है। क्या इससे तुम्हारी कुछ भी हानि या लाभ नहीं है? क्या तुम संसारसे कुछ भी नहीं चाहतीं, क्या यह कभी सम्भव है?

कात्यायनी फिर मुड़कर खड़ी हो गई। ज्यों ही उसने सिर उठाया, त्यों ही कामाख्यानाथने देखा कि मानो शरत्की प्रतिमापर नई धूप

पड़नेके कारण चारों ओर किरणें फैल रही हैं। साथ ही साथ कात्यायनीने कुछ रुँधे हुए और रहस्यमय स्वरसे कहा—क्या इस बातपर आप किसी तरह विश्वास नहीं कर सकते ?

कामाख्यानाथ कहना ही चाहते थे—" नहीं ", पर न जाने क्या सोचकर वे कुछ रुक गए और उन्होंने आँखें नीची कर लीं। स्वच्छ जलवाली नदीके समान कात्यायनीके दोनों विशाल नयनोंमें भी प्रातःकालकी उस धूपकी आभा पड़ रही थी और देखनेवालेको मानों इशारेसे नदीके स्वच्छ सरल अभ्यन्तर तक पहुँचा रही थी। कात्यायनीने कुछ दुःखित भावसे कहा—तो फिर आप ही बतलाइए कि आपको किस तरह इस बातका विश्वास होगा कि मैंने ये सब बातें किसी विशेष उद्देश्य या अभिसन्धिसे नहीं कही थीं ? और किस प्रकार यह विश्वास होगा कि अब भी मैं जो कुछ कह रही हूँ, वह भी किसी बुरे उद्देश्यसे नहीं कह रही हूँ ?

कामा०—कात्यायनी, यह तुम क्या कह रही हो ? तुमने तो मुझे एक अपूर्व और रहस्यमय लोकमें पहुँचा दिया था। अब तुम मुझे और किस मार्गपर ले जाना चाहती हो ? मुझे तो ये सब बातें असम्भव सी जान पड़ती हैं। तुम जो कुछ कह रही हो और कर रही हो, वह न तो कभी किसीने सुना और न कभी देखा। और फिर उसपर अविश्वास करनेका भी कोई कारण नहीं दिखाई देता। मैं तुम्हारी बातोंपर विश्वास करता हूँ और इसी लिए पूछता हूँ। तुम मुझे अच्छी तरह समझा दो कि क्या संसारमें यह भी कभी सम्भव है ?

कात्या०—इसे आप इतना असम्भव क्यों समझ रहे हैं ? संसारमें इस प्रकारके अनेक उदाहरण मिल सकते हैं जिनमें बाहरी या ऊपरी कोई

सम्बन्ध नहीं होता। विशेषतः स्त्रियोंके लिए तो यह असम्भव है ही नहीं।

कामा०—लेकिन क्या वे स्त्रियाँ तुम्हारी ही भाँति स्वेच्छापूर्वक यह काम कर सकती हैं? जिसके साथ मनसे ही सम्बन्ध रखना हो उसके अपयशके भयसे ही इस प्रकार बाहरसे सम्बन्ध त्याग सकती हों ऐसा तो मैं समझता हूँ कि तुम्हारे सिवा और कोई नहीं कर सकता।

कामाख्यानाथकी इस बातका कात्यायनीने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल झुककर उन्हें प्रणाम किया। ज्यों ही वह फिर सीधी खड़ी हुई, त्यों ही कामाख्यानाथने कुछ वेगपूर्वक कहा—कात्यायनी! तुमने मुझे केवल बदनामी और अधर्मसे बचानेके लिए ही अपने जीवनको ऐसी अवस्थामें ला रखा है। इसके लिए मैं तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूँ। नहीं, अब मैं भी इतना अधर्म नहीं करूँगा। जब तुम इस प्रकार रहकर भी यह बात अपने मनमें रख सकती हो, तो क्या मेरे लिए भी यह बात स्वीकार करना क्या कोई इतना बड़ा काम—। लेकिन कात्यायनी, आखिर तुम्हारे भाग्यमें क्या लिखा है?

कात्या०—मैं जानती हूँ, मैं भाग्यवती हूँ।

कामा०—कात्यायनी!

कात्यायनीने सिर उठाकर कामाख्यानाथकी ओर देखा।

कामा०—क्या तुम मुझसे इस बातपर भी विश्वास करनेके लिए कहती हो?

कात्या०—जी हाँ। और साथ ही मैं आपको यह भी बतला देना चाहती हूँ कि इस प्रकार रहनेमें मुझे जितना सुख होगा उतना और किसी प्रकार न हो सकता। आपको इस बातपर भी विश्वास करना होगा।

फिर उसी स्वच्छ नदीके समान नेत्रोंकी ओर देखते हुए कामाख्यानाथने कहा—मैंने विश्वास कर लिया।

कात्यायनीने फिर सिर झुकाया, मानो वह कृतार्थ और कृतज्ञ हो गई थी। इसके बाद वह वहाँसे चली गई। उसके चले जानेपर कामाख्यानाथ बहुत देरतक निश्चेष्ट खड़े रहे। थोड़ी देर बाद सहसा उनके मुँहसे आर्त स्वरसे निकल पड़ा—"माँ, दुर्गे! इस वयसमें तुमने यह क्या किया?"

बारहवाँ परिच्छेद।

वैशाखकी पूर्णिमा थी। चन्द्रमाकी शुभ्र चाँदनी चारों ओर फैली हुई थी। गंगातटके देवमन्दिरकी सौम्य और मौन महिमाके पास ही छोटे पुष्प-उद्यानमें मानो माधवी देवी हाथमें एक पुष्प-पात्र लिए खड़ी थी। सबेरे और तीसरे पहर बहुतसे फूल तोड़े जा चुके थे। लेकिन फिर भी बेला, चमेली और गन्धराजकी नई नई कलियाँ बराबर चिटक रही थीं। उनकी सुगन्ध उस चाँदनीमें मिलकर मानो सौरभकी अशरीरी मूर्त्ति धारण करके वहीं स्थिर खड़ी थी। रमा भी फिरसे फूल तोड़ने लगी थी। आज सन्ध्यासे ही उसके ठाकुरजी फूलके हिंडोलेपर झूल रहे थे। लेकिन इस उपलक्षमें आज मन्दिरमें कोई भीड़ भाड़ नहीं थी। फूलके हिंडोलेपर बैठे हुए गोविन्ददेवजीके दर्शनोंके लिए जो ग्रामवासी आए थे वे तुरन्त ही प्रसाद लेकर चले गए थे। इसका कारण केवल यही था कि आज मन्दिरमें फलाहार या नृत्यगीत आदिकी कोई व्यवस्था नहीं थी। कुछ रात भी हो गई थी।

सन्ध्याको ही पूर्ण चन्द्रमा निकल आए थे और वे क्रमशः आकाशमें ऊपर चढ़नेकी चेष्टा कर रहे थे। अन्दर मन्दिरमें ठाकुरजीके आगेसे भोग हटा दिया गया था और शयन-आरतीका आयोजन हो रहा था। उसी अवसर पर अन्तिम पुष्पांजलि देनेके लिए रमा फिरसे फूल चुननेके लिए बागमें गई थी। कात्यायनी भी उसके साथ थी। रमाने कहा—इस समय इतने अधिक फूल होते हैं, इसी लिए ठाकुरजी भी फूलोंके हिंडोलेपर झुलाए जाते हैं। उन्हें भी तो फूल पहनने चाहिएँ। लेकिन दुःख तो इसी बातका है कि केवल एक रातके लिए ही फूलोंके हिंडोलेकी व्यवस्था क्यों की गई है! आज पूर्णिमा है। लेकिन अमावास्याकी रातको भी तो इतने ही फूल फूलते हैं! चैत वैसाख भर क्यों नहीं इसी प्रकार फूलोंका हिंड़ोला होता?

रमाकी यह बात सुनकर कात्यायनी केवल हँसकर रह गई। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ देरतक सोचनेके उपरान्त रमाने आप ही अपने प्रश्नका उत्तर ढूँढ़कर अपना समाधान कर लिया। उसने कहा—जान पड़ता है कि मनुष्यकी अल्प शक्तिके कारण ही यह व्यवस्था की गई है। यदि ऐसी व्यवस्था न हो, तो वे थक जायँ। इस लिए यह व्यवस्था है कि जो रात सबसे सुन्दर है और जिस रातको सबसे अधिक फूल खिलते हैं, उसी रातको ठाकुरजी फूलोंके हिंडोलेपर बैठाए जाते हैं। लेकिन इसीलिए क्या चैत वैसाख भर किसी दिन या किसी रातको उनके लिए झूलेकी कमी रहती है? इन दोनों महीनोंके नाम भी वैसे ही हैं। क्यों जी, क्या नाम हैं? मुझे याद नहीं आते।

कात्यायनीने कोमल स्वरमें उत्तर दिया—मधु और माधव।

रमा—देखो दोनों ही नाम कैसे सुन्दर हैं! और किसी महीनेका तो इतना सुन्दर नाम नहीं है। नाम सुनते ही मनमें आता है कि—

मन्दिरके नीचे ही क्षीण शरीरवाली जाह्नवी प्रवाहित हो रही थी और उस पार बालूसे भरा हुआ लम्बा चौड़ा मैदान था। कात्यायनी उसी मैदानकी ओर देख रही थी। अब उसने रमाकी ओर देखकर हँसते हुए कहा—रात बहुत हो गई। घर कब चलोगी?

रमा—बस ये सब फूल ठाकुरजीके बिछौनेपर रख दूँ और तब चलती हूँ। क्या ऐसी अच्छी जगह छोड़कर भी तुम घर चलनेके लिए कहती हो? क्या तुम्हें हरदम कोनेमें छिपकर पड़े रहना ही अच्छा मालूम होता है?

का०—भाई, सचमुच मुझे तो फूस और पत्तोंसे ढकी हुई अपनी झोंपड़ी ही सबसे ज्यादा अच्छी मालूम होती है।

रमाने ठंढी साँस छोड़ते हुए कहा—तो क्या इसी लिए तुम और कहीं नहीं गई? वहीं अपना जीवन बिता रही हो?

का०—क्यों यह क्या कोई कम सुखकी बात है? यदि तुम्हें कोई किसी दूसरी जगह ले जाय तो?

रमा—मेरी बात दूसरी है। यहाँ तो मेरे सभी कोई हैं। पर तुम्हारा तुम्हारी माँके सिवा और कौन है?

का०—मेरे भी सब हैं। क्यों जी, उस दिन तुम अपने भइयाके ब्याहकी बात कह रही थीं। उसका क्या हुआ?

रमा—भइया कहते हैं कि मैं अभी और साल भर ब्याह नहीं करूँगा। बाबूजी भी किसी बातमें उनपर ज्यादा जोर नहीं डालते हैं, इसी लिए ब्याह नहीं हुआ। तुम तो अब हमारे घर आती ही नहीं, फिर तुम्हें इन सब बातोंका कैसे पता लगे। कल तुम हमारे यहाँ आओगी?

का०—देखो, हो सका तो आऊँगी। मैं तुम्हारे घर जिसके पास जाती, उसे तो मैं नित्य ही अपने निकट पा लेती हूँ। इसी लिए फिर नहीं जाती! तुम्हारे यहाँके और सब आदमियोंका क्या हाल चाल है?

रमाने मुस्कराते हुए मुँह नीचे कर लिया और कहा—जो सारे संसारका हाल है, वही उनका भी हाल है। सुख भी है और दुःख भी। तुम्हें मालूम है, कन्हईका पैर अब बहुत कुछ ठीक हो चला है। वह दुर्बलताके कारण ही लँगड़ाकर चलता था। उसकी हड्डी नहीं टूटी थी, केवल पेशियाँ ही बहुत दुर्बल हो गई थीं। भइयाने उसके लिए औषध और पथ्य आदिकी व्यवस्था कर दी थी, इससे अब वह बहुत कुछ सीधी तरहसे चलने लगा है।

का०—और भी तो न जाने कितने आदमी तुम्हारे पास आते जाते है। उनकी सुख और दुःखसे मिली हुई खबरोंमेंसे और कोई सुखकी खबर तो सुनाओ।

रमा—सुखकी खबर? बरुआकी बहूका लड़का बच गया। कन्हईका पैर अच्छा हो गया और उसके मामाके गाँवमें जिसका घर जल गया था, उसके लिए नया घर बन गया। कल वह अपने लड़के वालोंको लेकर बहुत हँसती हुई हमारे यहाँ आई थी।

कुछ देर तक सोचनेके उपरान्त रमाने फिर कहा—और सबसे अच्छी खबर यह है कि रामाकी बूढ़ी माँ मर गई।

कात्यायनीने हँसते हुए पूछा—यह किसके लिए सबसे अच्छा हुआ, उसके लिए या तुम्हारे लिए?

रमा—उसके लिए अच्छा हुआ और इसीसे मेरे लिए भी अच्छा हुआ।

कात्यायनीने कुछ देर तक सोचकर गम्भीरतापूर्वक कहा—तुम्हारी इस बातका भी कोई अर्थ मेरी समझमें नहीं आया। मनुष्यको चाहे कितनी ही अधिक यन्त्रणा क्यों न हो, पर फिर भी क्या सत्ताका लोप हो जानेसे बढ़कर और कोई हानि हो सकती है? उसकी तो कल्पना और विचार भी भयानक है।

रमा—भयानक नहीं है, बहुत सुन्दर है। यन्त्रणाओंसे पूर्ण जीवनकी मुक्तिका यही तो एक मार्ग है। उसके मर जाने पर जिन लोगोंने उसका मुँह देखा था वे लोग कहते थे कि कैसी सुन्दर शान्तिसे वह उस दिन सोई हुई थी। वह बहुत दिनोंसे उसी सुख और शान्तिकी कामना करती आ रही थी।

का०—पर साथ ही तुम्हें इस बातका भी ध्यान रखना चाहिए कि उसके उस यन्त्रणाज्ञानकी निवृत्तिके साथ ही साथ और सब प्रकारके ज्ञानोंकी भी सदाके लिए निवृत्ति हो गई।

रमाने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—तुम ऐसी बात कैसे कहती हो? क्या मनुष्य भी कोई यन्त्र है जिसके यदि कल पुरजे नष्ट हो जायँगे, तो फिर और कुछ बाकी ही न रहेगा?

कात्यायनीने अटल भावसे उत्तर दिया—आखिर संसारमें इस बातका कौनसा स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि मनुष्य एक यन्त्रके सिवा और भी कुछ है?

रमाने आँखें फाड़कर कात्यायनीकी ओर देखते हुए कहा—यदि सच-मुच तुम्हारा यही विश्वास है, तो फिर तुमने क्यों अपना जीवन इस प्रकारका बना रखा है? किसकी प्रीतिके लिए तुमने उसे इस प्रकार उत्सर्ग कर रखा है? उस दशामें तुम्हारे पिताजी भी तो एक यन्त्र मात्र

थे। सबकी तरह यथानियम सदाके लिए उनका भी अस्तित्व नष्ट हो गया। तब फिर क्यों तुमने उसी यन्त्रकी बातका स्मरण करके इस प्रकार अपना स्वतन्त्र अस्तित्व तक लुप्त कर दिया है?

कात्यायनीने पहले तो सिर झुका लिया और तब थोड़ी देर बाद उत्तर दिया—और यदि मैं यह कहूँ कि मेरा कोई स्वतन्त्र अस्तित्व ही नहीं है, तो? मान लिया कि अब वे नहीं हैं, परन्तु उनके समस्त जीवनकी इच्छा तो केवल उन्हींकी सन्तानमें बची हुई है।

रमा—क्या तुम अपने मनमें यह बात समझ सकती हो कि अब उनका और कुछ भी अवशिष्ट नहीं है? यदि यही बात हो तो मुझे कहना पड़ेगा कि तुम अपने पिताजी पर केवल भक्ति ही रखती थीं, उनसे प्रेम नहीं करती थीं।

देखते देखते कात्यायनीकी आँखोंमें आँसू भर आए। यह देखकर रमाने दुःखित भावसे कहा—क्षमा करना। मैंने तुम्हें दुखी कर दिया। पर क्या करूँ? बात यह है कि तुम्हारे मनके इस प्रकारके विश्वास देखकर स्वयं मुझे भी बहुत कष्ट होता है, इसी लिए इस समय मैं अपने आपको सँभाल नहीं सकी थी।

कात्यायनीने रुँधे हुए स्वरसे कहा—इन व्यथापूर्ण बातोंको छोड़ दो। लेकिन यह तो बतलाओ कि क्या हमारे प्रेम और वेदनाके विचारसे ही संसार अपने किसी सत्यको दबा रखता है?

रमा—तो क्या तुम यह कहना चाहती हो कि इस संसारका कर्त्ता धोखेका एक बहुत बड़ा जाल बुनकर मनुष्यको यों ही नष्ट कर रहा है? यदि यही बात हो, तब तो फिर संसारमें उससे बढ़कर निर्दय और भयानक और कोई हो ही नहीं सकता!

का०—तुम्हीं जानो, तुम्हारे वे कौन हैं!

रमाने जोरसे कात्यायनीको पकड़कर कहा—हाँ यह कहो, क्यों नहीं कहतीं? हम ही लोग जानते हैं कि वे हमारे कौन हैं! और तुम भी मेरे मुँहकी ओर देखकर समझो, मेरे अन्तरके स्पर्शसे समझो कि वे कौन हैं! वे हम लोगोंके दयामय स्नेहमय और परम सुन्दर हैं। जिन्होंने हम लोगोंको इतना सब कुछ दिया है, वे अन्तमें हम लोगोंको कभी धोखा नहीं दे सकते। वे कभी इतने निर्दय और इतने भयानक नहीं हो सकते। आज यह बात तुम्हें अच्छी तरह समझ लेनी पड़ेगी। समझ लो, खूब अच्छी तरह समझ लो। वे इसी योग्य हैं कि उनके साथ प्रेम किया जाय और उनपर निर्भर रहा जाय। वे कभी असुन्दर नहीं हो सकते।

धीरे धीरे रमाका स्वर निस्तब्ध हो गया। केवल उसके वेगवान वक्षके उत्थान और पतनका शब्द और विगलित शरीर कात्यायनी अपने वक्ष और शरीरपर अनुभव करने लगी। भाव ही भावका उद्बोधक हुआ करता है। कात्यायनी कुछ देरतक स्तब्ध भावसे रमाकी उस भावमयी मूर्त्तिका स्पर्श करती रही। अन्तमें उसने रुँधे हुए स्वरसे कहा—रमा, आज तुम्हारे स्पर्शके कारण इस बातपर भी कुछ कुछ विश्वास करनेकी इच्छा होती है।

परम विस्मयके आभाससे कात्यायनीकी आँखोंके आँसू सहसा सूख गए। रमाने उसकी ओर देखते हुए कोमल स्वरसे कहा—केवल मेरे ही स्पर्शके कारण? क्या संसारमें और कभी किसी बातके कारण तुम्हारे मनमें यह बात नहीं आई? सचमुच क्या तुमने कभी आज तक किसीके साथ प्रेम नहीं किया?

का०—सम्भव है, ऐसा ही हो। पिताजीने मुझे जो कुछ सिखाया है, जान पड़ता है कि उसका नाम प्रेम नहीं है।

रमा—तो फिर उन्होंने इतने दिनों तक तुम्हें और क्या सिखाया था?

का०—जो कुछ सिखाया था वह तो तुम देख ही रही हो। लेकिन रमा, तुम्हें यह इतनी सम्पदा कहाँसे मिल गई, मैं तो तुम्हारी कल्पना भी नहीं कर सकती।

रमा—यदि तुम मेरे बाबूजीको जानती होतीं, तो कभी ऐसी बात न कहतीं।

कात्यायनी कुछ देर तक चुप रहनेके उपरान्त सहसा हँस पड़ी और तुरन्त ही दूसरा प्रसंग छेड़कर बोली—अच्छा रमा, क्या तुम यह बतला सकती हो कि श्रद्धाके कारण की जानेवाली पूजा और तुम्हारे इस प्रेममें क्या अन्तर है और इन दोनोंमेंसे कौन बड़ा है?

रमा—मैं यह नहीं कह सकती कि इन दोनोंमेंसे कौन बड़ा है। लेकिन हाँ, इतना कह सकती हूँ कि जिसके प्रति श्रद्धा की जाती है वह बहुत ऊँचाईपर रहता है। उस तक न तो हम अपना सुख दुःख पहुँचा सकते हैं और न स्वयं उसके सुख दुःखके भागी हो सकते हैं। परन्तु प्रेममें परायोंका सा यह दूरत्व नहीं रह जाता।

कात्या०—यह दूरत्व रहा करे! यदि सुख और दुःखका भाग नहीं लिया या दिया गया, तो न सही। रमा! मेरी समझमें तो यही आता है कि प्रेमसे यह श्रद्धा ही बड़ी है। संसारमें तुम लोगोंके प्रेमकी कोई इतनी बहुत आवश्यकता नहीं है।

रमा—यदि यही बात है तब तो मनुष्य सदा आधा ही रहेगा, कभी पूरा होगा ही नहीं।

का०—तो यह भी अच्छा ही है। जिस पदार्थमें इतना उच्छृंखल वेग, इतनी अन्यायपूर्ण और अदम्य इच्छा है उसकी मुझे कोई आवश्यकता नहीं है।

रमाने फिर आँखें फाड़कर कात्यायनीकी ओर देखते हुए कहा--हैं? यह तुम क्या कह रही हो? क्या प्रेम कोई अन्याय उच्छृंखल और अदम्य वेग है, आखिर इसका मतलब क्या है?

रमाके विस्मित मुखकी ओर देखते हुए कात्यायनीने कोमल स्वरसे कहा—रमा, शायद इसमें भी मेरी भूल है। तुमने प्रेमकी जो मूर्त्ति अंकित की है, वह मैंने देखी नहीं है। मैंने जो कुछ देखा है वह शायद आसक्ति और मोह हो। लेकिन तुम्हें जो कुछ मिला है वह जान पड़ता है कि कुछ और ही पदार्थ है।

रमाके लिए और कोई प्रश्न करनेका समय न रह गया। मन्दिरमें आरती आरम्भ हो रही थी, जिसका शब्द सुनकर वह घबराई हुई उसी ओर चल पड़ी। कात्यायनी भी अपने घरकी ओर चल पड़ी। चलते चलते उसने रमासे कहा—मैं तुम्हारी मजदूरनीको साथ लेकर घर जा रही हूँ। बहुत रात हो गई है। माँ अकेली होंगी। मन्दिरमें तुम्हारे यहाँकी तो कई स्त्रियाँ हैं और यह मजदूरनी भी अभी मुझे पहुँचाकर लौट आवेगी।

रमा केवल 'अच्छा' कहकर अदृश्य हो गई। कात्यायनी भी मजदूरनीके साथ घरकी ओर चली।

कात्यायनीको उसके घरके दरवाजे तक पहुँचाकर मजदूरनी लौट गई। आँगनमें चाँदनी छिटकी हुई थी। ज्यों ही उसने आँगनमें पैर रखा, त्यों ही देखा कि वहाँ एक आदमी बैठा हुआ है। उसने चकित होकर पूछा—कौन महेन्द्र? तुम कब आए?

महे०—बहुत देर हुई। सन्ध्या होते ही मैं आ गया था।

का०—माँ कहाँ हैं?

वे अभी तक तो बातें कर रही थीं। अभी उठकर सोने गई हैं। महेन्द्रने कहा—मैं भोजन कर चुका हूँ, मेरे लिए तुम चिन्ता न करना।

कात्यायनी कुछ देर तक चुप रहकर बोली—अबकी तो बहुत दिनोंके बाद आए हो। पूजाके समय तीन चार दिन रहे थे। उसके बाद प्रायः सात महीनेपर आज आए हो।

महेन्द्र ऊपर मुँह करके हँसा और तीक्ष्ण स्वरसे बोला—इधर सात महीनोंसे मैं तो रोज ही सोचा करता था कि आज मेरी बुलाहट आती होगी, आज मेरी बुलाहट आती होगी। लेकिन इतने दिनों तक मेरी कोई खोज खबर ही नहीं ली गई, इसलिए मैंने सोचा कि चलो, मैं ही चलूँ। क्या मुझे इतना भी जाननेका अधिकार नहीं है? मैं यही देखनेके लिए चला आया हूँ कि और कितना अधिकार मेरा बाकी है—

का०—तुम्हें काहेकी बुलाहट नहीं गई और तुम्हें क्या जाननेका अधिकार नहीं है?

महे०—मैं यही जाननेके लिए आया था कि तुम्हारे ब्याहके समय मुझे बुलानेकी भी जरूरत होगी या नहीं। तुम चली क्यों जा रही हो? क्या अब तुम मुझसे जरा बात भी नहीं कर सकतीं?

का०—महेन्द्र, धीरे धीरे तुम वैसा ही करनेके लिए लाचार कर रहे हो!

महे०—तुम्हीं बतलाओ कि क्या मैं कुछ झूठ कहता हूँ? आश्विन मासमें ही मैं सुन गया था कि शीघ्र ही हमारे मालिकका ब्याह होगा—पचास बरसकी अवस्थामें अब वे खाली घरमें नहीं रहेंगे।

का०—महेन्द्र, केवल तुम्हारे मनकी दुरवस्था देखकर ही मैं तुम्हारी इस बातका उत्तर दे रही हूँ! तुम जो कुछ कहना चाहो

वह कह लो और मेरे सम्बन्धमें जो कुछ सोचना समझना चाहो वह सोच समझ लो; परन्तु जिनके हाथमें पिताजी तुम्हें सौंप गए हैं और जो हम लोगोंके शुभचिन्तक अभिभावक हैं, उनके सम्बन्धमें तुम इस प्रकारकी धारणाको अपने मनमें स्थान मत दो। इससे हम लोगोंका भला नहीं होगा। हम लोगोंके लिए वे जो कुछ कर रहे हैं, उसे देखते हुए हम लोगोंको उन्हें देवताके तुल्य समझना चाहिए।

महे०—वे जरूर देवता हो सकते हैं। क्योंकि जिस अवस्थामें वे हैं, उस अवस्थामें देवता होना बहुत सहज है। खैर, इन सब बातोंको जाने दो और मेरी असल बातका उत्तर दो।

का०—जरा कुछ दिन ठहरो, तब आप ही देख लोगे। आखिर तुम्हारा यह भ्रम कितने दिनोंमें दूर होगा ?

महे०—मैं तो नहीं समझता कि मेरा यह भ्रम कभी दूर होगा। मैंने यह बात अच्छी तरह समझ ली है कि तुम्हारे आपत्ति करनेके कारण ही यह विवाह रुक गया है। लेकिन तुम्हारा यह ज़ोर कितने दिनों तक चलेगा ? अभी तो तुम्हारा सारा जीवन पड़ा है। तुम्हारी यह जिद कहाँ तक ठहरेगी ? और विशषतः जिसके प्रति तुम इतनी भक्ति रखती हो, जिससे इतना प्रेम करती हो, उसके सामने तुम्हारी यह जिद कब तक चलेगी ?

का०—अच्छी बात है, तो फिर यही होगा! और बात भी यही ठीक है। चाहे लोगोंकी दृष्टिमें अभी तक विवाह न हुआ हो; परन्तु तुम और मैं—हम सब तो जानते ही हैं कि मैं अदत्ता नहीं हूँ। उन्हें भी यह बात माळूम हो गई है। अब तो इस प्रकार रहना केवल अपनी इच्छाके ही कारण है। लेकिन महेन्द्र, तुम्हारे मनकी यह अवस्था देख-

कर मुझे बहुत कष्ट हो रहा है। मेरी समझमें नहीं आता कि तुम्हें क्या हो गया है! अब तो तुम्हें संसारमें किसीपर भी विश्वास नहीं रह गया है! पहले तो तुम ऐसे नहीं थे!

महे०—तुम्हींने मुझे ऐसा बना दिया है! अभी क्या है, इसके बाद आगे चलकर अभी और न जाने क्या होगा! कात्यायनी, अभी तुम्हीं न कामाख्याबाबूको देवता बतला रही थीं! मैं भी यह मानता हूँ कि वे अवश्य देवता हैं। यदि वे इतने दिनों तक देवता न भी रहे हों, तो अब हो जायँगे या हो गए हैं। तुम जानती हो कि मनुष्यको देवता कौन बनाता है? केवल अवस्था बनाती है। यदि वे तुम्हारे साथ विवाह न भी करें, तो भी उनके समान भाग्यवान् और कौन है? तुम उन्हें देवता समझती हो, उनपर तुम्हारा इतना विश्वास और इतनी श्रद्धा है, तुम उन्हें इतना चाहती हो! अवश्य ही वे तुम्हारी इस भक्तिकी बात भी जानते हैं। तो फिर तुम्हीं बतलाओ कि वे देवता क्यों न होंगे? और मैं दिनपर दिन तुम्हारी दृष्टिमें नीच, क्रूर और परश्रीकातर (ईर्षालु) होता जा रहा हूँ—और अभी आगे चलकर और न जाने क्या क्या बनूँगा! हो सकता है कि तुम्हें मेरा मुख देखनेमें भी घृणा होने लगे! यह सब क्यों? कात्यायनी, शायद तुम्हें अब तक याद होगा कि किसी दिन शत्रु और मित्र सभी मेरी प्रशंसा किया करते थे। तुम भी चाहे और कुछ न हो, पर मुझे श्रद्धाकी दृष्टिसे अवश्य देखती थीं। उस समय मेरे जीवनमें आशा थी आनन्द था—इसी लिए मैं सब लोगोंकी श्रद्धाका पात्र बन सका था। पर आज वह बात नहीं है, इसी लिए आज मैं मनुष्य कहलानेके योग्य भी नहीं रह गया। तुम जानती हो कि अवस्था ही मनुष्यको पिशाच तक बना सकती है?

का०—महेन्द्र, तुमपर कोई अश्रद्धा नहीं करता। मेरे तो तुम भाई हो और मेरी माँकी एक मात्र आशाके स्थल हो। भला, तुमपर मैं क्या कभी अश्रद्धा करूँगी? पर तुम अन्यायके पथपर चल रहे हो। मुझे तुम जो चाहो वह कह सकते हो; लेकिन जो तुम्हारे प्रतिपालक हैं, उनके साथ जो तुम इस प्रकार विद्वेष कर रहे हो, यह क्या तुम अच्छा करते हो?

महे०—पहले मैं देखता था कि अगर मैं तुमसे जरा सी कोई बात कहता था, तो तुम उसे सहन नहीं कर सकती थीं। लेकिन अब तुम सब कुछ सहनेके लिए तैयार हो; किन्तु यदि कामाख्यानाथ बाबूके सम्बन्धमें कोई ऐसी वैसी बात कही जाय, तो तुम उसे सुनने या सहनेके लिए तैयार नहीं हो। कात्यायनी, क्या यह तुम मेरे भलेके लिए ही सहन नहीं कर सकती हो? यदि सममुच यही बात होती, तो तुम्हारी यह बात मैं सिर आँखोंपर लेता। लेकिन वह बात तो है नहीं। वह तो तुम्हारे—खैर, इन सब बातोंको जाने दो। लेकिन जब तुम हमारी मालकिन बनने लगोगी, तब मुझे कमसे कम खबर तो मिलेगी न?

का०—मिलेगी क्यों नहीं! देखो, उधर माँ बार बार पुकार रही हैं। सुन नहीं रहे हो क्या? यह क्या, उधर कहाँ जा रहे हो? माँके पास जाओ।

महे०—नहीं, मुझे बहुत तड़के ही यहाँसे जाना है। अब मैं ठहर नहीं सकता।

का०—अच्छा तो ठहरो, माँको बुलाती हूँ। उनसे मिल लो, उन्हें प्रणाम कर लो।

चलते चलते महेन्द्रने विकृत स्वरसे कहा—नहीं, अबकी बार जब आऊँगा तब ।

महेन्द्र चला गया । माताके बार बार पुकारनेपर कात्यायनी दरवाजा बन्द करके अन्दर माँके पास गई । जाते ही माँने पूछा—महेन्द्र कहाँ है ?

कात्यायनीने बड़े कष्टसे उत्तर दिया—मालिकके यहाँ गए हैं ।

कात्यायनीको माँसे यह कहनेका साहस नहीं हुआ कि वह इस प्रकार एकाएक नाराज होकर चला गया है । उसने सोचा कि यदि मैं यह बात अभी माँसे कह दूँगी, तो वे अभी रोते रोते कुरुक्षेत्रका दृश्य उपस्थित कर देंगी ।

माताने ठंढी साँस लेते हुए कहा—रात भर भी मेरे पास न रहा ! अच्छा, जहाँ उसे अच्छा लगे, वहीं रहे ।

कात्यायनी चुपचाप माताके पास लेट गई और उसके सो जानेके थोड़ी देर बाद आप भी सो गई । जब रात समाप्त होनेको आई, तब माँने कात्यायनीको जगाकर कहा—मुझे बड़ी सरदी लग रही है । कोई कपड़ा ओढ़ा दे ।

माताके मस्तकपर हाथ रखकर कात्यायनीने देखा कि वह बहुत गरम है । सहसा उसे प्रबल ज्वर चढ़ आया था । उसने उसे ऊपरसे कई कपड़े ओढ़ाए, लेकिन फिर भी उसकी कँपकँपी बन्द नहीं हुई । उसने ऊपरसे माँको अच्छी तरह दबा लिया और बाकी रात इसी प्रकार काटी । तड़के ही उसने महेन्द्रका पता लगानेके लिए एक आदमीको कामाख्यानाथ बाबूके यहाँ भेजा; पर मालूम हुआ कि वह बहुत तड़के ही देहातको रवाना हो गया है ।

तेरहवाँ परिच्छेद।

कर्मका प्रवाह अनन्त है। लेकिन महेन्द्रको मानो अब उसका भी अन्त मिल गया है और वह यही सोच सोचकर घबरा रहा है कि अब मैं क्या करूँ? सोदपुरमें कोई काम नहीं है, इसलिए अब वहाँ उसका जी नहीं लगता। प्रायः साल भर होनेको आया, वह इसी गाँवमें है और कुछ विशिष्ट अवस्थाओंमें पड़कर उसने गाँवके प्रायः आधे आदमियोंको अपना शत्रु और मित्र बना लिया है। कदाचित् यहाँ यह बतलानेकी आवश्यकता न होगी कि गाँवकी असहाय और दरिद्र प्रजा तो उसकी मित्र है और बाकी लोग उसके शत्रु हैं। उस शत्रुदलके प्रधान गाँवके प्रबल प्रतापी नायब साहब हैं। जहाँ इस प्रकार प्रधान और अप्रधानकी दलादली हो, वहाँ दोनोंका संघर्ष भी नित्य सत्य और अनन्त होता है। क्यों कि बेचारे क्षुद्र प्राण लोगोंके जीने और रहनेके लिए भी तो यही एक पृथ्वी निर्दिष्ट हुई है! लेकिन विधिका भी कैसा अभिशाप है कि बलिष्ठोंके सामने उन दुर्बल बेचारोंके अपराधोंका अन्त ही नहीं है। लेकिन फिर भी यह कर्मजाल महेन्द्रके उत्साहको बाँध रखनेमें समर्थ नहीं होता था। इससे उसके मनमें स्फूर्त्ति नहीं आती थी। प्रायः नित्य एक ही तरहका काम रहता था। जब वह सबलोंकी पिसाईसे दुर्बलोंकी रक्षा करनेके लिए जाता था, तब सबलोंके साथ उसका विरोध हो जाता था और उसके बाद गाँवके जो प्रधानतम नायब साहब थे, उनके साथ उस विषयमें मतभेद होकर वितण्डा और वाद-विवाद होता था और तब अन्तमें उसमें कभी तो दुर्बलोंकी जीत हो जाती थी और कभी हार। परन्तु यह सबलों

और दुर्बलोंका संघर्ष अनादि और अनन्त रूपसे बराबर चलता रहता था, उसका कभी अन्त नहीं होता था। इसी लिए महेन्द्र इस विवाद-स्रोतमें अपने आपको डुबाए नहीं रख सकता था। वह जो कुछ कर्म करता था, वह स्वयं उसकी दृष्टिमें ही अकर्म सा जँचने लग गया था। लेकिन ज्यों ही महेन्द्र कहीं और जानेकी इच्छा करता था, त्यों ही दुर्बलोंका दल इस प्रकार रोने चिल्लाने लगता था कि महेन्द्रके लिए वहाँसे हिलना बहुत ही कठिन हो जाता था। लेकिन फिर भी उसका जाना आवश्यक और निश्चित हो गया था, क्योंकि इस प्रकार उसका काम नहीं चल सकता था।

जबसे महेन्द्रने इस गाँवमें आकर दुर्बलोंका पक्ष लेना आरम्भ किया है, तबसे दुर्बल प्रजाकी विपत्तियाँ और भी बढ़ गई हैं। महेन्द्र जो पक्ष ग्रहण करता है, नायब दीवान बिना न्याय और अन्यायका विचार किए ही चट उसका विरुद्ध पक्ष ग्रहण कर लेते हैं। महेन्द्र जो पक्ष लेता है उसकी प्रायः जीत हो जाती है; पर साथ ही उस पक्षके लोगोंपर नायब दीवानका क्रोध बहुत ही बढ़ जाता है और उनके सिर और भी ज्यादा आफतें आने लगती हैं। उनकी विपत्तियोंका अन्त नहीं रह जाता। नायब दीवान पहले ऐसे नहीं थे। बहुत दिनोंसे उनके जमींदार और कर्मचारियोंका वहाँ बहुत अच्छा नाम था। बहुतसी गरीब प्रजा अब यह अच्छी तरह समझने लग गई थी कि महेन्द्रके साथ नायबका कोई भीतरी मनोमालिन्य है और महेन्द्रके रहनेके कारण ही वे बिगड़कर अन्याय करने लगे हैं। लेकिन इतना होनेपर भी वे लोग महेन्द्रको किसी प्रकार छोड़ नहीं सकते थे। बात यह थी कि आज तक उन लोगोंको कोई ऐसा आदमी मिला ही नहीं था, जो इस प्रकार जी लगाकर उनकी बातें सुनता और उनका पक्ष लेकर

लड़ता। इससे पहले और भी बाद-विवाद हुए थे और उनमें कभी तो प्रमाणोंके बलपर उन लोगोंकी जीत हो जाती थी और कभी उसके अभावमें हार हो जाती थी; लेकिन आज तक उन्होंने कोई ऐसा आदमी नहीं देखा था जो प्रमाणोंकी ओर बिलकुल ध्यान न देता हो और केवल मनुष्यत्वके नाते ही उनका पक्ष लेकर खड़ा हो जाता हो।

सबसे बढ़कर आफत आई थी मृत उमाकान्त वन्द्योपाध्यायकी छोड़ी हुई सम्पत्तिकी उत्तराधिकारिणी उनकी विधवा कन्या महामाया देवीपर। उनकी जमींदारीके सँभालनेवाले उनके कर्मचारियोंकी विपत्तिका भी अन्त नहीं था। क्यों कि जो लोग बहुत दिनोंसे दखीलकार चले आते थे, उन्हें भी नायब दीवान कोई न कोई बहाना निकालकर बेदखल कर देते थे और उन लोगोंमें खलबली डाल देते थे। कहीं कोई बेदखल हो जाता था, तो कहीं किसीको अपनी मालगुजारी खुद जमींदारके यहाँ जाकर जमा करनी पड़ती थी और कभी कभी कोई नायबके पक्षमें मिलकर जमीनपर दखल भी कर लेता था। उन लोगोंके हलवाहों और दूसरे काम धन्धा करनेवालों पर भी यथेष्ट आपत्तियाँ आती थीं। वे लोग जिन जमीनोंपर बहुत दिनोंसे आबाद चले आते थे और जिनको वे सदासे जोतते बोते थे, उन जमीनोंके सम्बन्धमें भी जमींदारकी कचहरीके लोग व्यर्थ ही एक न एक झगड़ा खड़ा कर दिया करते थे, उनके साथ मार पीट करा देते थे और अन्तमें उन्हें पकड़ ले जाते थे और इसका कारण यह कहा जाता था कि इसकी जमीनके कब्ज़ेका और कोई दावा कर रहा है। उधर तैयार खेत खड़ेके खड़े रह जाते थे और इधर कचहरीमें मुकदमा लड़नेमें ही उनकी फसलका सारा समय बीत जाता था। उनकी गौओं और भैंसोंको थानपरसे खोलकर कचहरीके आदमी काँजी हौसमें पहुँचा आते

थे और उनपर अभियोग यह लगाया जाता था कि ये चौपाए जमींदारके खेतोंमें घुस आते हैं और बहुत नुकसान करते हैं ।

महेन्द्र अच्छी तरह समझता था कि इन सब आफतोंकी जड़ वही नायबका साढ़ू गोपीनाथ है । जब महेन्द्रने देखा कि एक दूसरे जमींदारसे रिश्वत लेकर नायब दीवान अपनी अधीनस्थ प्रजापर इस प्रकार अत्याचार करता है, तब वह मारे क्रोधके आगबबूला हो गया और तभीसे उसने उस विधवाकी यथासाध्य सहायता करना आरम्भ कर दिया । जहाँ तक हो सका इन मामूली झगड़ोंके सिवा उसने अब तक उस विधवाकी कोई और बहुत बड़ी हानि नहीं होने दी थी । लेकिन इसके कारण महेन्द्रपर एक और आफत आ गई थी । महामाया देवीका पक्ष लेनेके कारण नायब दीवान और उनके दलके लोग महेन्द्रकी बहुत हँसी उड़ाया करते थे । पहले महेन्द्रकी समझमें इसका कोई कारण न आता था; पर जब उसने सुना कि मेरे ही पक्षके और आश्रित लोग भी आपसमें मुझे महामाया देवीका भावी दामाद समझते हैं और यह आशा करते हुए बहुत प्रसन्न होते हैं कि किसी समय मैं भी उन्हीं लोगोंके गाँवका आदमी बनकर उनमें मिल जाऊँगा, तब उसकी समझमें आ गया कि नायब और उसके पक्षके लोग क्यों मेरी हँसी उड़ाते हैं । लेकिन यह बात जानकर स्वयं महेन्द्रको भी कुछ कुछ हँसी ही आई, इसके सिवा उसके मनमें और कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ । पर साथ ही रह रहकर कर उसके मनमें यह आशंका अवश्य हुई कि कहीं ऐसा न हो कि इस तरहकी बातें सुन कर महामाया देवी अपने मनमें कुछ और बात सोचने लगें । नायबके साथ उसका दिन पर दिन जो विरोध बढ़ता जाता था, वह भी उसे अच्छा नहीं मालूम होता था ।

महेन्द्र सोचता था कि जब मैं यहाँसे चला जाऊँगा, तब प्रजाके साथ भी व्यर्थ अत्याचार होना बन्द हो जायगा और यह बात भी अधिक नहीं बढ़ने पावेगी। लेकिन कठिनता तो यह थी कि प्रजा ही उसे नहीं जाने देती थी। साथ ही महेन्द्र यह भी समझता था कि यदि मैं यहाँसे चला गया, तो महामाया देवीपर इतनी अधिक आपत्तियाँ आवेंगी जिनकी कोई सीमा न रहेगी। यदि महेन्द्रने इन सब बातोंमें कामाख्यानाथका सहारा लिया होता और उन्हें तथा बड़े दीवानको सब बातें बतला दी होतीं, तो ये सब बातें इतनी न बढ़ने पातीं। यद्यपि सब लोग जानते थे कि वह जमींदारका अपना और घरकासा आदमी है; परन्तु फिर भी वह अपने मनुष्यत्व और निजी शक्तिके भरोसे ही अन्यायका प्रतिवाद किया करता था और उसका परिणाम चाहे कुछ भी क्यों न होता, पर उसके लिए वह कभी जमींदारके पास फरियाद न ले जाता था। नायब दीवान पहले तो उससे डरकर ही चला करते थे; पर फिर धीरे धीरे वह भी उसके स्वभावसे भली भाँति परिचित हो गए थे। सामने आनेपर महेन्द्रका असम्मान करनेका तो उन्हें साहस नहीं होता था; पर अन्दर ही अन्दर वे सदा ऐसी चेष्टा किया करते थे कि जिसमें महेन्द्र तंग होकर यहाँसे चला जाय।

यद्यपि महेन्द्र या उसके पक्षकी पीडित प्रजा कभी जमींदारके पास नायबकी शिकायत लेकर उसका विचार करानेके लिए नहीं गई थी, पर फिर भी नायब बीच बीचमें मुख्य दीवानसे कहा करता था कि महेन्द्रकी उत्तेजनासे इस गाँवके प्रायः गरीब और कुछ अमीर आदमी भी समय समयपर जमींदारके विरुद्ध आचरण किया करते हैं। लेकिन उसकी ये सब शिकायतें सुनकर भी दीवानने अभी तक महेन्द्रके विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की थी, केवल इसी कारण नायबको भी प्रकट रूपसे

महेन्द्रके विरुद्ध कोई कार्रवाई करनेका साहस नहीं होता था और साथ ही उसे मन ही मन कुछ भय भी होता था। यदि यह बात न होती, तो वह अब तक कभीका महेन्द्रको मजा चखा देता।

जान पड़ता है कि किसी संकटमें पड़कर इधर कई दिनसे महामाया देवी महेन्द्रको रोज बुला भेजा करती हैं; परन्तु आजकल महेन्द्रका मन बहुत ही अस्थिर रहता है, वह किसी भी बातमें मन नहीं लगा सकता है, इस लिए महामाया देवीके आदमीसे वह रोज कह दिया करता है है कि तुम चलो, मैं आता हूँ, या आज नहीं, कल आऊँगा, आदि; पर फिर भी वह जाता नहीं था। आज जमींदारका एक आदमी कात्या-यनीका पत्र लेकर आया था, जिसमें उसकी माताकी बीमारीका हाल लिखा था और साथ ही उसे बहुत जल्दी बुलाया भी था। जिस समय वह उक्त पत्र पढ़ रहा था, ठीक उसी समय फिर महामाया देवीका आदमी उसे बुलानेके लिए आ पहुँचा और बोला—आप जरासा कष्ट करके मेरे साथ चले चलें। माँ बहुत ही घबराई हुई हैं और हम लोगोंपर कोई बहुत भारी विपत्ति आनेकी आशंका हो रही है।

महेन्द्रने कुछ विरक्तिपूर्ण स्वरमें उत्तर दिया—मुझे तो अब बिलकुल समय नहीं है। मुझे इसी समय अपने घर जाना है।

महामायाके कर्मचारीने कुछ घबराकर पूछा—क्या आप अपने घर जायँगे? तब तो आपको वहाँ जरूर कुछ दिन लगेंगे। तो फिर बतलाइए कि हम लोग क्या करें?

इतना कहकर वह वृद्ध कर्मचारी मानो घोर चिन्ताके समुद्रमें डूब गया और इस प्रकार उसने हाथपर सिर रखा जिससे जान पड़ता था कि उसे कहीं कूल किनारा ही नहीं दिखाई देता है।

उसकी यह दशा देखकर महेन्द्रने लाचार होकर पूछा—क्या आज कोई और नई आफत आई है या वही रोजका मामूली झगड़ा है ?

कर्म०—जी नहीं। एक बहुत संगीन मामला आ पड़ा है। यहाँ मैं आपसे क्या कहूँ ! माँने कहलाया है कि आपके सिवा और कोई इस विपत्तिसे उनका उद्धार नहीं कर सकता। आप कृपा करके जरासा खड़े खड़े—

महे०—खैर, चलिए चलता हूँ। लेकिन मैं समझता हूँ कि सिवा आप लोगोंकी बातें सुन लेनेके मैं और कुछ भी न कर सकूँगा। क्योंकि मुझे इसी समय मकान जाना है।

कर्म०—खैर, हम लोगोंके लिए इतना ही बहुत है। आपके परामर्शकी ही विशेष आवश्यकता है।

महेन्द्र उठकर उस कर्मचारीके साथ चल पड़ा। थोड़ी देरमें दोनों महामाया देवीके मकानपर जा पहुँचे जहाँ उनकी प्रतीक्षा ही हो रही थी। वहाँ पहुँचकर महामाया देवीके कुछ कहनेसे पहले ही महेन्द्रने कहा—मुझे अभी मकान जाना है, क्योंकि मेरी माँ बहुत बीमार हैं।

महामाया देवीने बहुत विस्मित होकर महेन्द्रकी ओर देखते हुए पूछा—तुम्हारी माँकी तबीयत खराब है ? तुम तो कहते थे कि तुम्हारी माँ हैं ही नहीं।

महेन्द्रने असहिष्णु भावसे सिर झुकाकर कहा—मेरी माँ मौजूद हैं।

महा०—क्यों बेटा, क्या वह तुम्हारी गर्भधारिणी माँ हैं ?

महे०—उससे बहुत बढ़कर। वही मेरी माँ हैं।

महामाया देवीने महेन्द्रका अभिप्राय समझ लिया और कहा—क्या उनके बहुत बीमार होनेकी खबर आई है ?

महे०—जी हाँ, देखिए मेरे जाने पर शायद उनसे भेंट हो जाय। इतना कहते कहते महेन्द्रका गला भर आया और शरीर धीरे धीरे कुछ काँपने लगा। यद्यपि कात्यायनीने अपने पत्रमें कोई ऐसी चिन्ताजनक बात नहीं लिखी थी; पर फिर भी न जाने क्यों महेन्द्र बहुत घबरा रहा था।

महेन्द्रका यह भाव देखकर महामाया भी बहुत चिन्तित हुई और घबराकर बोली—तो फिर बेटा, तुम क्यों व्यर्थ समय नष्ट कर रहे हो? जल्दी चले जाओ।

महे०—आपके कर्मचारीने कहा था कि आपपर कोई बहुत बड़ी विपत्ति आई है।

महा०—हाँ आई तो है, पर मैं तुम्हारा समय व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहती। भगवान् जो कुछ करेंगे, वह देखा जायगा।

महेन्द्र बिना कुछ उत्तर दिए उठकर चलनेके लिए तैयार हुआ। सहसा महामाया देवीने बीचमें बाधा देते हुए व्यग्र स्वरसे कहा—बेटा, एक बात है। तुम्हारा मकान तो जमींदारके गाँवमें ही है न?

महे०—जी हाँ।

महा०—तो फिर तुम जरा उनके कानों तक यह बात क्यों नहीं पहुँचा देते कि उनकी प्रजापर दूसरे गाँवका जमींदार क्यों इस तरह हुकूमत चलाता है?

महेन्द्रने कुछ सोचकर कहा—जब तक घरके भेदी विभीषणकी सहायता न मिले, तब तक कोई इस तरह हुकूमत नहीं चला सकता। जान पड़ता है कि यहाँके नायब दीवान जरूर अन्दर ही अन्दर उससे मिले हुए हैं।

महा०—यह तो साफ ही मालूम होता है। इसी लिए तो मैं कहती हूँ कि अगर तुम जरासा जमींदारसे—

परन्तु महेन्द्रके मुखका भाव कुछ अप्रसन्नतापूर्ण देखकर महामाया देवीका स्वर संकुचित हो गया। महेन्द्रने कहा—उस दशामें फिर उन्हें बहुतसी बातें बतलानी पड़ेंगी। आप नौगाँवके जमींदारकी बहू हैं। आपके श्वशुरकुलकी मान मर्यादा इस जमींदारसे कुछ कम नहीं है। आप उसी वंशकी बहू हैं और उन्हीं लोगोंके द्वारा इस प्रकार लाञ्छित हो रही हैं। इसके लिए आप अपनी बराबरीवाले जमींदारसे सहायताकी भिक्षा माँगेंगी, यह क्या आपके लिए भारी लज्जाकी बात नहीं है?

महामाया देवीने कुछ संकुचित भावसे कहा—जब मैंने अपने पिताके कुलमें आश्रय पाया है, तब मेरा वह अभिमान करना मिथ्या ही है। अब तो मैं इन्हींकी प्रजा हो रही हूँ। ऐसी दशामें इनसे सहायताकी भिक्षा माँगनेमें लज्जा ही किस बातकी है? और फिर बहुत दिनोंसे इनके सम्बन्धमें मैं जो अनेक बातें सुनती आई हूँ, उन्हें देखते हुए ऐसे सज्जन जमींदारसे यदि यह सब हाल कह दिया जाय, तो मेरी समझमें तो कुछ भी अनुचित न होगा।

महेन्द्रने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया—यदि आप उनके कानोंमें ये सब बातें किसी प्रकार पहुँचा सकें, तो मुझे उसमें कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन मुझे इस कामसे आप अलग ही रखें। मैं आपकी जो थोड़ी बहुत सहायता कर सका हूँ, वह उतनी ही कर सका हूँ जितनी मनुष्य स्वयं अपने बलपर विश्वास करके कर सकता है। सत्य, न्याय और सहृदयता ही मनुष्यके लिए सब कुछ है। इसके सिवा और जो कुछ है, वह स्वयं मनुष्यत्वका नहीं है बल्कि केवल शक्तिकी सहायतासे होता

है। उसके पीछे कुछ तो पक्षपात और कुछ अन्यायपूर्ण विचार हुआ करता है। मैं उस प्रकारकी शक्तिसे सहायता लेनेमें असमर्थ हूँ। यदि आप चाहें तो किसी औरके द्वारा जमींदारसे ये सब बातें कहला सकती हैं।

जिस उपकारी युवकने महामाया देवीकी इतनी बड़ी विपत्तिसे रक्षा की थी और अनेक प्रकारसे सहायता दी थी, गाँवके दुर्बल और पीड़ित व्यक्ति जिसे एक प्रकारसे देवताके समान समझते थे, उसीके मुँहसे जमींदारकी सहायताके प्रस्तावके सम्बन्धमें इस प्रकारकी बातें सुनकर कमलाकी माता अत्यन्त कुण्ठित हो गई। उसने सोचा कि कहीं महेन्द्र हम लोगोंको अकृतज्ञ तो नहीं समझ रहा है। इससे अच्छा तो यही है कि हम लोगोंपर कोई और विपत्ति ही आ जाय। उसने घबराकर कहा—अच्छा पहले तुम जाकर देख आओ कि तुम्हारी माँका क्या हाल है। वहाँसे आकर सुन लेना कि हमपर कैसी भारी विपत्ति आई है। उस समय तुम जो परामर्श दोगे, मैं वही करूँगी।

महे०—मैं तो समझता हूँ कि अब शायद मैं इस गाँवमें आ ही न सकूँगा।

महामाया देवीके हृदयपर मानो ऐसा आघात हुआ जिसकी उसे कभी आशा नहीं थी। वह कुछ देर तक टक लगाकर महेन्द्रकी ओर देखती रही और फिर क्षीण स्वरमें बोली—क्या अब तुम इस गाँवमें नहीं आओगे? तब तो मैं समझ गई कि अब मेरी कमलाके बचनेकी कोई आशा नहीं है।

महामाया देवीके मुखपर व्यथाका जो भाव झलक आया था, उसने महेन्द्रके हृदयपर भारी आघात किया। उसने सोचा कि इस स्त्रीकी विपत्तिके समय मैंने इसका कौनसा बड़ा उपकार किया है? लेकिन

आज महामायाका मुख देखकर महेन्द्रको मालूम हो गया कि महामाया देवी और उसके घरके लोग मेरा कितना अधिक भरोसा करते हैं। साथ ही उस समय अपनी सन्तानके अमंगलकी चिन्ताके कारण महामाया देवीको जो असीम वेदना हो रही थी, उसका आभास भी उसके मुखसे मिल रहा था। उसके मुखके उस समयके भावकी तुलना वह अपनी माताके मुखके भावसे कर रहा था। उसने सोचा कि मैं अपनी चिन्ताको विशेष महत्त्व देकर एक और माताको दूसरा आघात पहुँचा रहा हूँ! उसने धीरे धीर अपने बिना जाने ही कह दिया—यदि आप कहेंगी, आपको कोई विशेष आवश्यकता होगी, तो मैं फिर यहाँ आ सकता हूँ।

महा०—बेटा, मैं तुम्हारी इस बातका क्या उत्तर दूँ और तुम्हें विशेष आवश्यकता क्या बतलाऊँ? मैं तो पहले ही सब बातें तुमसे कह चुकी हूँ। अब तो वे लोग मरने मारने तककी तैयारी कर रहे हैं। तिस पर यदि ऐसे समयमें तुम लौटकर यहाँ न आए तब तो—लेकिन तुम स्वयं इस समय विपत्तिमें पड़े हुए हो। इस समय और बातें कहकर मैं तुम्हारे मनमें कोई नई चिन्ता उत्पन्न नहीं करना चाहती। केवल इतना ही कह देती हूँ कि तुमने इतने दिनों तक हम लोगोंका यह जो उपकार किया है वह सब वृथा ही किया है। अगर मेरी कमला ही मेरे हाथसे निकल गई, तो फिर ये सब धन-दौलत और नौकर-चाकर लेकर ही मैं क्या करूँगी?

महे०—माँ, आप चिन्ता न करें। मैं लौटकर अवश्य आऊँगा।

महा०—तुम्हारा इतना कह देना ही हम लोगोंके लिए बहुत कुछ है। मैं केवल इसी भरोसे पर सब विपत्तियोंका सामना करती रहूँगी।

महेन्द्र प्रणाम करके चला गया।

* * * *

महेन्द्र जो आशंका कर रहा था, वही बात सामने आई। उसने देखा कि माँको बिलकुल होश हवास नहीं है। महेन्द्रका अवश और स्तब्ध भाव देखकर कात्यायनीने कोमल स्वरमें कहा—घबराओ मत। कविराजजी कह गए हैं कि अभी आशा है। कात्यायनीने यह बात महेन्द्रको उपलक्ष्य करके अपने आपसे ही कही थी; परन्तु जिन्होंने इसे सुना, उनमेंसे किसीको भी इससे आश्वासन नहीं मिला। महेन्द्रने विकृत स्वरसे कहा—नहीं कात्यायनी, भय क्या है! यही न कि पृथ्वीके साथ मेरा कुछ भी सम्बन्ध न रह जायगा! इसमें डर किस बातका? यह तो पूरी पूरी मुक्ति है!

कात्यायनीने सिर झुका लिया। एक तो पहलेसे ही उसके मनमें वेदना भरी हुई थी, तिस पर महेन्द्रके हृदयमेंका भरा हुआ अन्धकार धीरे धीरे उसका दम घोटने लगा। वह महेन्द्रसे तो कह रही थी कि तुम भय मत करो; परन्तु स्वयं उसे आश्वासन और अभय देनेवाला कौन था? महेन्द्रकी तीव्र वेदनाकी उद्दाम मुक्तिके सामने उसकी अपनी निराश्रयताकी चिन्ता मानो संकुचित होने लगी थी। यद्यपि इन दो बाह्य संज्ञाहीन व्यक्तियोंके साथ उसका समय कट रहा था; लेकिन उसके अन्तःकरणको बाहरसे कोई शक्ति नहीं मिलती थी और इसी लिए वह अवश्य कर्तव्य कर्मोंमें भी शिथिल होती जा रही थी।

बाहरसे आवाज आई। कात्यायनीने समझा कि शायद रमा आ रही है। पर उसका अवसादयुक्त मस्तक और नेत्र ज्योंके त्यों रहे, आगन्तुकके उद्देश्यसे द्वारकी ओर नहीं मुड़े! उसने सोचा कि रमा आ रही है तो आवे!

इतनेमें किसीने पुकारा—कात्यायनी !

कात्यायंनीने चौंककर सिर उठाया और दरवाजेकी ओर देखा। सामने कामाख्यानाथ खड़े हुए थे। यह क्या ! इनकी ऐसी अवस्था ?

जब उन्हें कोई उत्तर न मिला, तब वे स्वयं ही कोठरीमें चले आए और रोगीके पास बैठ गए। महेन्द्र शोकसे विमूढ़ होकर माँके पास औंधा पड़ा था। उसकी पीठपर हाथ रखकर कामाख्यनाथने कहा—महेन्द्र ! तुरन्त ही तीरके समान वेगसे महेन्द्र उठ बैठा। यद्यपि उसका वह भाव देखकर कामाख्यानाथ कुछ विस्मित हुए; पर फिर भी उन्होंने सहज भावसे पूछा—कब आए ?

महेन्द्रने कुछ सँभलकर कोमल स्वरसे कहा—अभी कोई घंटा भर हुआ होगा।

कामाख्यानाथने कात्यायनीकी ओर देखकर कहा—निरंजन या रमाने मुझसे यह तो नहीं कहा कि इनकी तबीयत इतनी ज्यादा खराब है। मैंने यह भी सुना था कि कविराज कह गए हैं कि चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है। ये इस प्रकार संज्ञाशून्य कबसे हुई हैं ?

का०—आज ही पिछली रातसे।

कामा०—वही चन्द्रनाथ कविराज आए थे न ?

कात्या०—नहीं, एक और कविराज आए थे।

कामा०—खैर, तुम लोग घबराओ नहीं। मैं अभी उन्हें बुलवाता हूँ।

इतना कहकर कामाख्यानाथ वहाँसे उठकर चले गए।

कात्यायनीने महेन्द्रसे कहा—देखो वे आप उठकर गए हैं। तुम्हें ही जाना चाहिए था। उठो, जाओ।

महेन्द्रने कात्यायनीकी ओर देखते हुए कहा—कात्यायनी, मेरा जो कुछ कर्तव्य था वह सब समाप्त हो गया। जो थोड़ासा बाकी है, वह

अब समाप्त हुआ जाता है! अब तुम लोगोंका जो कुछ काम हो, वह तुम लोग करो।

कात्यायनी विरक्त होकर कुछ कहना ही चाहती थी; पर महेन्द्रके मुँहकी ओर देख वह चुप हो गई। इसके बाद उसका ध्यान स्वयं अपने ही अन्तरकी ओर गया। वह सोचने लगी कि क्या मैं इतनी देरसे यही चाह रही थी? क्या इसी गम्भीर स्वर, उदार दृष्टि और निःशब्द सहानुभूतिके कारण ही मेरा अवसादग्रस्त हृदय फिर इस प्रकार तेज होकर कर्तव्यकी ओर प्रवृत्त हुआ है? तीव्र अवसादका जो संक्रामक रोग अब तक मुझे इतना अधिक अवसन्न और निस्तेज किये डालता था, उससे आज मुझे किसने मुक्ति दी? निराश्रयताकी भावी घोर आशंका क्षण भरमें न जाने कहाँ चली गई और दारुण शोकसे पूर्ण उसका मन भी कर्तव्य करनेके लिए दृढ़ हो गया। वह सोचने लगी कि क्या इसका कारण उनका आगमन ही है? पर साथ ही जब महेन्द्रके मृतवत् और निश्चेष्ट मुखपर उसकी दृष्टि पड़ी, तब वह लज्जित होकर निस्तब्ध हो गई।

लगातार कई दिनोंतक यथासाध्य चेष्टा करनेपर भी कविराज चन्द्रनाथ कात्यायनीकी माताको मृत्युके मुखसे न बचा सके। धीरे धीरे ब्राह्मणीका अन्तिम समय निकट आने लगा। ग्रीष्मके दोपहरको अन्तर्जलीकी शय्यापर पड़ी हुई मरणोन्मुख ब्राह्मणीका अन्तिम ज्ञान बुझनेसे पहलेवाली दीप-शिखाके समान थोड़ी देरके लिए कुछ प्रज्वलित हो उठा। यद्यपि उससे कुछ बोला नहीं गया, पर फिर भी वह बार बार कात्यायनीके मुखकी ओर देखने लगी। रोते हुए महेन्द्रको उसने इशारेसे अपने पास बुलाया, अपने दोनों हाथोंसे उसकी आँखोंसे आँसू पोंछ दिये और इसके उपरान्त कामाख्यानाथकी ओर दृष्टि फेरी।

कामाख्यानाथने मानो ब्राह्मणीकी निर्वाक् भाषा समझ ली और उसके कानके पास अपना मुँह ले जाकर वे बोले—आप अपने लड़के और लड़कीके लिए कोई चिन्ता न कीजिएगा । अब केवल अपने इष्टका चिन्तन कीजिए ।

परन्तु कामाख्यानाथकी इस बातसे माताकी वह चिन्ता दूर नहीं हुई। उसने महेन्द्रका हाथ पकड़कर अपने मस्तकपर लगाया और उँगलीसे आकाशकी ओर सँकेत किया। इसके उपरान्त कामाख्यानाथका हाथ पकड़कर उसपर महेन्द्रका हाथ रख दिया।

कामाख्यानाथने माताका अभिप्राय समझकर गम्भीर स्वरमें कहा—मैं अपनी ओरसे कोई बात नहीं उठा रखूँगा। आगे भगवान मालिक हैं।

अब मानो माता निश्चिन्त हुई और थोड़ी देरके लिए उसने आँखें बन्द कर लीं। बगलमें खाटपर सिर रखे हुए कन्या भी बैठी थी। माताने एक बार जरासा सिर उठाकर उसे देखनेका प्रयत्न किया और उसके मस्तकपर हाथ रखकर अस्फुट स्वरसे कहा—बेटी कात्यायनी!

कात्यायनी पहले ही आपेसे बाहर हो रही थी। अब वह और भी अवशतापूर्वक आगे बढ़ी और उसने अपनी माताकी गोदमें मुँह छिपा लिया। थोड़ी ही देर बाद सहसा उसे जान पड़ा कि मेरे मस्तकके पास होनेवाला हृदयका बहुत ही मृदु स्पन्दन कभीका बन्द हो गया है!

चौदहवाँ परिच्छेद।

श्राद्ध आदि क्रियाओंके समाप्त होनेके एक दो दिन बाद ही महेन्द्रने कात्यायनीसे कहा—मुझे जल्दी ही यहाँसे जाना होगा।

कात्यायनीने कुछ दुखी और विस्मित होकर कहा—क्या तुम अभी चले जाओगे? क्या जमींदारने कहीं जानेके लिए कहा है?

महे०—नहीं, उन्होंने तो नहीं कहा है। मैं स्वयं ही जानेकी आवश्यकता समझता हूँ।

का०—अच्छी बात है, तो फिर जाओ; लेकिन जरा एक बार यह भी सोच लो कि अब मैं बिलकुल अकेली और असहाय रह गई हूँ।

महेन्द्र कहना ही चाहता था कि तुम और असहाय हो गई; परन्तु कात्यायनीका म्लान मुख देखकर उसके मुँहसे वह बात न निकली। कुछ देर तक ठहरकर उसने क्षीण स्वरसे कहा—यह ठीक है कि तुम अकेली हो गई हो; पर अब मेरे द्वारा तो इसका कोई प्रतीकार होनेकी आशा नहीं है।

का०—क्यों, आशा क्यों नहीं है? क्या तुम एक स्त्री घरमें नहीं ला सकते जो मेरे पास रहा करे? क्या तुम अपनी गृहस्थी नहीं बना सकते?

महे०—इसी लिए तो मैंने माँको इतना अधिक मानसिक कष्ट देकर संसारसे विदा कर दिया। जो बात मैं उनके लिए नहीं कर सका, वह अब तुम्हारे लिए कैसे कर सकता हूँ?

का०—मेरी अवस्था उनसे भी अधिक खराब नहीं है क्या? तुम मुझे इस तरह अकेली छोड़कर निश्चिन्त हो सकोगे?

महे०—तुम्हारे लिए मुझे किसी प्रकारकी चिन्ता करनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है। पिताजीकी मृत्युके उपरान्त ही तुमने यह बात मुझे जतला दी थी, इसलिए आज नए सिरसे यह बात क्यों निकाल रही हो? तुम मेरी कौन हो जिसके लिए अब मैं इतनी चिन्ता करूँगा?

कात्यायनीने हाथ जोड़कर और सिर झुकाकर कहा—महेन्द्र, तुम मुझे क्षमा करो और माके नामपर आज तुम मुझे इतनी ही भिक्षा दो! बताओ, क्या तुम मुझे यह भिक्षा न दे सकोगे?

महे०—कात्यायनी, क्या तुमने यह भी सोचा है कि जो कुछ तुम माँग रही हो, वह कितनी बड़ी चीज है? शायद तुमने नहीं सोचा है, इसी लिए तुम यह माँग रही हो? नहीं तो कभी न माँगतीं। बतलाओ, क्या तुमने कभी यह सोचा है?

महेन्द्रके अस्वाभाविक उज्ज्वल नेत्र और उत्तेजित भाव देखकर कात्यायनी मानो विमूढ हो गई। उसने अनमने ढँगसे दूसरी ओर देखते हुए धीरेसे कहा—नहीं।

महे०—तो फिर इस प्रकारका अनुरोध करनेका तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।

कात्यायनीने महेन्द्रके मुँहकी ओर देखते हुए मानो प्रबुद्ध होनेकी चेष्टा करते हुए कहा—क्या मुझे कोई अधिकार नहीं है? हम लोग जन्मसे एक ही माँकी गोदमें और एक बापके स्नेहमें भाई बहनकी तरह पले हैं। आज न तो तुम्हारा ही कोई और है और न तुम्हें छोड़कर मेरा ही कोई है। मैं क्या तुम्हारी—

महे०—नहीं, कात्यायनी, अब तुम्हें वह अधिकार नहीं है, यह बात तुम अभी अपने मुँहसे ही कह रही हो। और मुझमें भी बार बार यह बात सुननेकी शक्ति नहीं है! मैं आज जा रहा हूँ।

अब तक कात्यायनी हाथ जोड़े हुए थी। अब उसने दोनों हाथ अलग अलग कर लिये और वह केवल "जाओ" कहकर चुप हो गई।

कुछ देर बाद महेन्द्रने फिर कहा—तुम्हें अपने अकेले होनेकी इतनी चिन्ता क्यों है? जो तुम्हारे अभिभावक हैं, वे तुम्हें कभी अकेली न रहने देंगे।

महेन्द्रकी यह बात सुनकर कात्यायनीने फिर सिर उठाया और कुछ अधीर भावसे कहा—क्या वे खाली मेरे ही अभिभावक हैं? तुम्हारे नहीं हैं? अभी उसी दिन न माँ तुम्हें उनके हाथमें सौंप गई हैं?

महेन्द्रने कुछ विकृत भावसे हँसते हुए कहा—इससे बहुत—बहुत दिन पहले माँने मुझे जिसके हाथमें सौंपा था और वह भी अपनी इच्छासे, बहुत प्रसन्नतापूर्वक और बड़े शौकसे सौंपा था, वे शायद नहीं जानती थीं कि उसके हाथसे लेकर किसी दूसरेके हाथमें सौंपनेकी उनमें शक्ति ही नहीं थी; पर खैर, इन बातोंको जाने दो; लेकिन अब मैं यह एक बिलकुल नई बात देख रहा हूँ कि यदि मेरे मुँहसे कभी जमींदारके सम्बन्धमें एक शब्द भी निकल जाता है, तो तुम उसे सहन नहीं कर सकती हो।

का०—क्या कोई काम कभी बिना कारण भी हुआ करता है? अवश्य ही तुम्हारे उस शब्दमें भी कुछ दोष होता है।

महे०—हाँ, क्यों नहीं। यह तो मैं मानता हूँ और सम्भव है कि आगे चलकर और भी अधिक मानना पड़े। कात्यायनी, केवल मेरे

विचारसे अब तुम क्यों इस प्रकार अकेली रहती हो ? बस अब देर मत करो—मुझे निश्चिन्त होकर जाने दो ! निश्चिन्त कर दो—अब और—

का०—महेन्द्र, मैं तुमसे फिर कहती हूँ कि तुम मुझे मेरी मूर्खताके लिए क्षमा कर दो ! मैं सच कहती हूँ, मुझे अपने लिए कुछ भी चिन्ता नहीं है और मेरे सम्बन्धमें कोई ऐसी बात भी नहीं है जिसके लिए तुम मेरी चिन्ता करो ! पर जो कुछ मैं तुमसे कह रही हूँ, वह प्रत्येक बहन अपने भाईसे कहा करती है । बस मैं केवल उतना ही कहती हूँ—उससे अधिक नहीं ।

महेन्द्रने ज्वालामय हँसी हँसते हुए कहा—मैं समझता हूँ । यह मत समझो कि मैं तुम्हारा यह कौशल नहीं समझता ।

का०—क्या कहा, कौशल ?

महे०—कौशल नहीं तो और क्या है ? लेकिन तुम घबराओ नहीं । चाहे तुम लज्जाके कारण कुछ भी न कर सको; परन्तु तुम्हारे अभिभावक अपनी सब लोकलज्जा और धर्मका ढोंग छोड़नेका बहुत अच्छा अवसर पा जायँगे । भला वे तुम्हें किस प्रकार ऐसी अकेली और असहाय अवस्थामें रहने देंगे ?

महेन्द्र अभी कुछ और भी कहना चाहता था; पर कात्यायनीने बिगड़कर उसे बीचमें ही रोकते हुए कहा—बस जाओ, जाओ । अब मुझे तुमसे कुछ भी नहीं कहना है ।

महे०—जानेके लिए तो मैं पहलेसे ही तैयार हूँ । लेकिन अबकी बार जब हम लोगोंकी भेंट होगी, उस समय मैं तुम्हारे स्वामीका सेवक होऊँगा । उस समय मेरा और तुम्हारा कोई सम्बन्ध ही न रह जायगा, बात चीत होना तो बहुत दूर रहा !

कात्यायनीका क्रोध और भी बढ़ गया और वह उसी दशामें दूसरी कोठरीमें चली गई। परन्तु धीरे धीरे उसका वह क्रोध उतर गया। वह कोनेमें चुपचाप बैठी रही। मानों उसमें कुछ सोचने समझनेकी शक्ति ही नहीं रह गई थी।

आँगनमें सहसा किसीका शब्द सुनकर वह चौंक पड़ी। किवाड़की ओटसे उसने देखा कि कामाख्यानाथ आँगनमें खड़े हुए महेन्द्रसे बातें कर रहे हैं। कात्यायनीका यह सुननेको जी नहीं चाहा कि इन लोगोंमें क्या बातें हो रही हैं। वह उसी प्रकार स्तब्ध होकर और बे मनसे उन दोनोंकी ओर देखती रही। दोनोंकी भावभंगी एक दूसरीसे बिलकुल विपरीत थी और दोनोंके कंठसे निकलनेवाले स्वर भी अलग अलग थे। ये दोनों बातें उसके निष्क्रिय मनपर छाया-चित्रोंकी भाँति खेलती हुई आ और जा रहीं थीं। उनमेंसे एकका स्वर कभी उत्तेजित, कभी विकृत और कभी लज्जितके स्वरकी भाँति कोमल होता था और जिस प्रकार वर्षाकी झड़ी घटती बढ़ती रहती है उसी प्रकार उतरता और चढ़ता था। दूसरा स्वर बिलकुल गम्भीर और स्निग्ध था, वह एक ही तरहसे गम्भीर जल-स्रोतकी तरह चला चलता था और केवल गम्भीर शब्दोंकी सृष्टि करता था। उस स्वरमें जलकी तरह सहज स्निग्धता और सरलता थी और वह श्रोताके कानोंमें बिना आयासके ही प्रवेश कर जाता था। एक आदमी स्निग्ध धीर और अटल था और अपनी स्निग्ध श्यामलतासे वर्षाकालके वृक्षके समान जान पड़ता था और दूसरा आदमी गैरिक वर्ण जलराशिके समान था, जिसमें खूब लहरें उठ रही थीं और चक्कर पड़ रहे थे। सहसा महेन्द्रके मुँहसे निकली हुई एक तीव्र बात कात्यायनीके कानोंमें पहुँची जिसके कारण वह सचेत हो गई।

महेन्द्र कह रहा था—इसके लिए मैं यहाँ अधिक देर करनेकी आवश्यकता नहीं समझता। जो कुछ स्थिर हो, यदि आप उसकी सूचना मुझे देना उचित समझें, तो दे दीजिएगा। बस, यही बहुत है।

कात्यायनी जिस कोठरीमें थी उसी कोठरीकी ओर देखकर महेन्द्र वहाँसे चला गया। कात्यायनीने अन्दरसे ही वह दृष्टि देखी जिससे एक अज्ञात भयके कारण वह काँप उठी। कामाख्यानाथ अन्यमनस्क भावसे आँगनमें ही इधर उधर टहलने लगे। यह देखकर कात्यायनीने बाहर निकल कर उन्हें बैठनेके लिए आसन दिया; परन्तु कामाख्यानाथने उस ओर कुछ भी ध्यान न दिया और वे मानो किसी गम्भीर प्रश्नकी मीमाँसाके लिए कात्यायनीके मुँहकी ओर देखने लगे। उस दृष्टिके कारण कात्यायनीका मुँह आपसे आप नीचेकी ओर झुक गया। कामाख्यानाथने कहा—तुम एक काममें मेरी कुछ सहायता कर सकोगी?

कात्यायनीने विस्मित भावसे देखा और कहा—कहिए।

कामा०—कहता हूँ, पर पहले यह बतलाओ कि तुम मेरी सहायता करोगी?

कात्या०—कहिए, सुनूँ।

कामा०—मैं तुम्हारे और महेन्द्रके सम्बन्धमें कुछ स्थिर करना चाहता हूँ। तुम मानोगी तो?

कात्या०—क्या फिर नए सिरसे कुछ स्थिर करना चाहते हैं?

कामा०—हाँ अवश्य, क्योंकि अब तुम लोगोंका कोई अभिभावक नहीं रह गया।

कात्या०—जब आप हैं, तब हम लोग कभी यह नहीं समझ सकते कि हमारा कोई अभिभावक नहीं है।

कामा०—देखो कात्यायनी, मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि इस प्रकारकी बातें करके पहलेसे ही मेरा मुँह बन्द मत कर दो। तुम अपनी बात चाहे छोड़ दो; लेकिन तुम्हारी माँ जिस प्रकार महेन्द्रको मेरे सपुर्द कर गई हैं उसे देखते हुए तुम्हें एक बार इस बातपर भी अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए कि अब महेन्द्रके सम्बन्धमें मेरे कर्तव्यका दायित्व तुम्हारी अपेक्षा और भी बढ़ गया है।

कात्या०—तो फिर आप इसके लिए क्या करना चाहते हैं?

कामा०—तुम्हारी माँकी जो एकान्त इच्छा थी, वही। मैं चाहता हूँ कि उसका ब्याह करके उसे गृहस्थीमें लगा दूँ।

कात्या०—आपने यह बात उससे कही थी?

कामा०—हाँ, मगर वह इस विषयमें कुछ स्थिर न करेगा। इसी लिए मैं तुमसे यह परामर्श लेना चाहता हूँ कि अब इस विषयमें मुझे क्या करना चाहिए।

कात्या०—यदि सचमुच आप यही चाहते हों, तो मेरा तो यही परामर्श है कि जो जिस प्रकार रहना चाहता हो, उसे उसी प्रकार रहने दें।

कामा०—यह तो बिलकुल असम्भव है। मैं तुमसे एक बात कह देना चाहता हूँ। तुम लोग अविवाहित हो। तुम लोगोंकी यह उमर है और तिसपर तुम दोनों सहोदर और सहोदरा नहीं हो। यदि तुम दोनों इस तरह रहोगे, तो लोक-निन्दासे तुम लोगोंका छुटकारा न होगा।

कात्या०—तो फिर अब आप मुझे क्या करनेके लिए कहते हैं?

कामा०—यही कि अब तुम अपने सम्बन्धमें कुछ स्थिर करो। और नहीं तो मैं महेन्द्रको विवाह करनेके लिए बाध्य न कर सकूँगा। समझती हो न?

कामा०—तो फिर आपने उसे यह क्यों नहीं बतलाया कि मेरे सम्बन्धमें जो कुछ स्थिर होनेको था वह हो चुका है?

कामाख्यानाथने हँसकर कहा—ऐसी बात तो तुम्हारे जैसी बालिकाके मुखसे ही शोभा देती है, मुझे शोभा नहीं देती। कात्यायनी, यदि उसमें कुछ संशोधन करना हो, तो कर डालो। अब भी समय है। अब भी सब बातोंपर अच्छी तरह विचार कर लो। यदि किसी प्रकारके आवेशमें आकर तुम केवल अपना ही जीवन नष्ट करो, तो उसमें चाहे किसीको कुछ भी कहनेका अधिकार न हो; परन्तु उसके साथ ही साथ किसी दूसरेका जीवन नष्ट करनेका तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।

कात्यायनीने सिर उठाकर कुछ जोरसे कहा—तो आप जो कुछ कहना चाहते हों, वह साफ साफ कहें।

कामा०—मैं देखता हूँ कि महेन्द्रके सम्बधमें तुम कुछ भी विचार नहीं कर रही हो! क्या अपनी जिद्के सामने सारे संसारके प्रति अन्धा होना उचित है? पीछे तुम्हें इसके लिए—। अब भी समय है। देखो, भूल मत करो।

कात्यायनीने अधीर स्वरसे कहा—साफ साफ कहिए। महेन्द्र मेरा भाई है। आप बार बार कैसी भूलकी बात कह रहे हैं?

कामाख्यानाथने सिर हिलाते हुए कहा—तुम्हारी माँने तुम लोगोंको यह कभी नहीं समझाया कि तुम भाई बहन हो।

कात्या०—परन्तु मेरे पिताजी तो मुझे यही समझा गए हैं। जो बात मुँहसे निकालनेके योग्य नहीं है, उसका जिक्र बार बार न कीजिए।

कात्यायनीका दृढ़तापूर्ण स्वर और भाव देखकर कामाख्यानाथ विवश चुप हो गए। उन्हें बिलकुल चुप देखकर कात्यायनीने थोड़ी देर बाद कहा—आप कुछ और कहना चाहते हैं?

कामा०—हाँ एक बात और है। अब तो तुम्हारी माँ भी नहीं हैं। क्या अब भी तुम इसी प्रकार इस मकानमें अकेली रहोगी?

कात्या०—नहीं, मैं अकेली तो नहीं रहती हूँ। रमा अपनी बूढ़ी मजदूरनीको रातके समय मेरे पास भेज दिया करती है और दिनभर विधुकी माँ मेरे पास रहती है। तिस पर आप मेरे रक्षक हैं ही, फिर मुझे भय किस बातका?

कामा०—खैर, इसमें मेरा जोर नहीं चलता। लेकिन अगर तुम एक और काम करो, तो भी हो सकता है। मेरे घरमें मेरी अनेक बड़ी उम्रकी रिश्तेदार स्त्रियाँ हैं और रमा है। तुम वहीं क्यों न चली चलो?

कात्यायनीने सिर हिलाकर अपनी असम्मति प्रकट की।

कामा०—मैं तो समझता हूँ कि यदि तुम वहाँ चली चलो, तो सभी दृष्टियोंसे बहुत अच्छा हो। तुम्हारे साथ मेरे विवाहकी जो बात उठी थी, उसे बहुतसे लोग जानते हैं, इसलिए सम्भव है कि तुम्हें इस बातका खयाल हो कि वहाँ चलना ठीक न होगा; लेकिन मैं इतना कर सकता हूँ कि अगर तुम चली चलो तो मैं ऐसी व्यवस्था कर दूँगा कि वहाँ मेरी और तुम्हारी कभी बातचीत या देखा देखी भी न हो। लेकिन यदि तुम इस प्रकार यहाँ अकेली रहोगी, तो यह समझ रखो कि मुझे भी बीच बीचमें यहाँ आना पड़ेगा।

कात्या०—यदि आप इसमें कुछ अनुचित समझते हो, तो न आया करें। क्या आप इसी बातसे इतना घबरा रहे हैं? तो फिर आपके आनेकी आवश्यकता ही क्या है? मैं—

हठात् कात्यायनीने अनुभव किया कि मेरा स्वर कुछ कठोर और अनुचित होता जा रहा है। इसलिए वह बीचमें ही रुक गई और थोड़ी

देर बाद अपनी बात समाप्त करनेके लिए बोली—बीच बीचमें रमाको भेजकर ही मेरी खोज खबर ले लिया कीजिएगा।

कामाख्यानाथ कुछ देर तक चुपचाप कात्यायनीकी ओर देखते रहे और तब बोले—यदि तुम यह समझती हो कि महेन्द्रके सम्बन्धमें इस प्रकारकी बात मुँहसे निकालनी भी न चाहिए और यदि तुम इसी मार्ग-पर चलना चाहती हो, तो फिर इसका भी एक और स्पष्ट पक्ष लो और यह मत सोचो कि मेरे साथ तुम्हारा विवाह होना असंगत है। तुम विवाह करनेके लिए राजी हो जाओ। इसमें तुम्हारा भी भला होगा और जहाँ तक मैं समझता हूँ महेन्द्रके पक्षमें भी यह अच्छा ही होगा।

कात्या०—अपने इस थोड़ेसे भलेके लिए मैं आपको ऐसा अनुचित काम न करने दूँगी, यह बात आप निश्चित समझ लें।

कामा०—केवल यही नहीं है कि इसमें तुम्हारा ही भला होगा। मैं समझता हूँ कि शायद इसमें मेरा भी भला होगा। मेरा मन यह नहीं कहता कि यदि महेन्द्रकी या तुम्हारी कुछ बुराई होगी, तो उसमें मेरा कुछ भला होगा।

कात्या०—ऐसा कभी नहीं हो सकता। हमारे जैसे तुच्छातितुच्छ आश्रितोंके अमंगलसे ही जो अपना अमंगल समझते हों, यदि विधाता उनके भी अमंगलका विधान करें, तो फिर उन विधातापर कौन श्रद्धा करेगा?

कामा०—लेकिन कात्यायनी, केवल इतनेसे ही तो विधाताकी उस विधिमें कोई परिवर्तन हो नहीं जायगा! तुम लोगोंके साथ मेरा जो यह अचिन्तनीय संयोग हुआ है, उसे देखते हुए मेरे मनमें यही आता है—मुझे किसी भारी अनिष्टकी आशंका हो रही है। मुझे जो दो बातें

अच्छी मालूम हुई; यदि उनमेंसे एकको भी तुम उचित न समझो तो फिर रहने दो। जो कुछ होना होगा वह होगा। मैं भी उस विधाताके विधानमें अपनी इच्छाके अनुसार परिवर्तन करनेका प्रयत्न नहीं करूँगा। मैं जाकर देखूँ, महेन्द्र जानेकी तैयारी कर रहा है। तुम खूब सावधानीसे रहना। यदि किसी बातकी आवश्यकता हो, तो रमाके द्वारा कहला देना। बस, अब इसके आगे मैं और क्या कहूँ!

कामाख्यानाथ उठकर चलनेके लिए खड़े हुए। उसी समय कात्यायनीने उनके पैरोंपर सिर रखकर प्रणाम किया और कहा—आप मुझे आशीर्वाद देते जायँ।

कामा०—क्या आशीर्वाद चाहती हो?

कात्या०—यही कि मेरे कारण आपका कोई अमंगल न हो, आपके मनमें किसी प्रकारकी अशान्ति न हो। और मेरी इस अबाध्यताके लिए आप मुझे क्षमा करें।

धीरे धीरे कात्यायनीका स्वर धीमा पड़ गया।

कामा०—विधाताके विधानकी ही जय हो। तुमसे मैं जरा भी असन्तुष्ट नहीं हूँ।

कात्यायनी उठकर खड़ी हो गई और आँसू पोंछती हुई बोली—मेरे लिए यही बहुत है कि आप मुझसे असन्तुष्ट नहीं हैं। और चाहे जो हो, मुझे किसी बातका कोई भय नहीं है।

कामाख्यानाथने एक बार कात्यायनीके मुखकी ओर देखा और तब वे वहाँसे धीरे धीरे चुपचाप चले गए। उस दृष्टिमें स्नेह और विस्मयका जितना आभास दिखाई देता था उसकी अपेक्षा करुणाकी आभा अधिक दिखाई देती थी। इससे कात्यायनी कुछ क्षुब्ध हुई। उसने समझ

लिया कि कामाख्यानाथ मेरी दृढ़तापर अविश्वास भी नहीं करते हैं और मेरे भविष्यके विषयमें कुछ चिन्तित भी हैं। पर वे क्यों व्यर्थ चिन्ता कर रहे हैं! मेरे सम्बन्धमें तो चिन्ता करनेकी कोई ऐसी बात नहीं है।

सन्ध्याको जब मन्दिरमें आरती हो गई, तब नित्यके नियमके अनुसार रमाके साथ कात्यायनीकी भेंट हुई। रमाने मिलते ही पूछा—क्या स्थिर किया? हम लोगोंके पास आकर रहोगी न?

कात्या०—क्यों, क्या अभी मैं तुम लोगोंके पास नहीं हूँ?

रमा—अब मैं तुम्हारी इस तरहकी व्यर्थकी बातें नहीं सूनूँगी। चलो, तुम्हें आज ही मेरे साथ चलना होगा।

कात्यायनीने हँसकर कहा—नहीं रमा, यह व्यर्थकी बात नहीं है। अगर मैं तुम लोगोंसे इस प्रकार दूर रहूँगी, तो मुझमें उतना ही जोर रहेगा कि मानों मैं तुम लोगोंके पास ही हूँ। और यदि मैं तुम लोगोंके पास चली आई, तो शायद वह बात न रह जायगी।

अब रमाने अच्छी तरह समझ लिया कि कात्यायनीसे और कुछ कहना व्यर्थ है। वह हताश होकर बोली—मुझे तो यही चिन्ता होती है कि तुम अकेली कैसे रहोगी! क्या तुम्हारा जी नहीं घबराता?

का०—भला मैं अकेली कैसे हूँ? मैं तो अपने घरमें एक तरहसे माता-पिताकी गोदमें बैठी हूँ—इसमें जी क्यों घबराने लगा?

रमाका मुख म्लान हो गया। वह बोली—इसी लिए मैं ज्यादा जोर नहीं दे सकती। लेकिन मेरा तो यह विश्वास है कि जो लोग स्वर्ग गए हैं, उनकी सन्तान यदि जन्म भर इसी प्रकार उनका स्मरण करती हुई बैठी रहेगी, तो उन स्वर्गवासियोंको स्वर्गमें शान्ति न मिलेगी। जिस स्मृतिसे

केवल शोक ही होता हो और जो प्राण तथा मनको अकर्मण्य और निस्तेज कर देती हो, क्या उसको भुला देनेको मनुष्यका जी नहीं चाहता? वे लोग इस समय देवता होकर भगवानके साथ मिल गए हैं। तुम्हारे और उनके मंगलके लिए ही भगवानने उन लोगोंको अपने पास बुला लिया है। क्या इस बातका विचार करनेमें सुख नहीं होता कि वे सुखी हैं? यदि आदमी अपने जीवनमें भगवानपर निर्भर रहना नहीं सीखता, तो उसका जीवन व्यर्थ ही अशान्तिका घर हो जाता है। अब फिर तुम्हें सवेरे सन्ध्या दोनों समय गोविन्ददेवके मन्दिरमें आनेका अभ्यास डालना होगा। बोलो, आया करोगी न?

कात्या०—आया करूँगी। लेकिन उनकी मर्त्यलोककी स्मृतिसे ही मेरे जीवनके सब काम चलते हैं और भविष्यमें भी चला करेंगे। रमा, तुम्हीं बतलाओ कि मैं उनकी मर्त्य-स्मृतिको भूल ही कैसे सकती हूँ? क्या अपने जीवनको कभी कोई भूल सकता है?

रमा—क्यों नहीं भूल सकता? जो भगवानको आत्म-समर्पण कर देता है, वह अवश्य भूल सकता है। क्या तुम्हारी समझमें यह बात नहीं आती कि तुमने अपने पिताके नामपर ही अपने कर्तृत्वके सामने अपने आपको उत्सर्ग कर दिया है? इस समर्पणमें बड़ी भारी भूल जान पड़ती है, यह बहुत अशान्ति ला देता है। अपने कर्तव्य या इच्छाको जरा भूल जाओ और सोचो कि भगवान जो कुछ करते हैं, वही होता है। जरा एक बार अपनी इच्छा गोविन्ददेवको समर्पित करके देखो तो सही, कितना सुख मिलता है।

कात्यायनीने कुछ उपहासकी हँसी हँसते हुए कहा—तुम्हारे भगवान् पहले जरा हम लोगोंके लिए कुछ चिन्ता करें। उसके बाद यदि हो सका, तो मैं भी उनकी चिन्ता करूँगी।

रमाने कात्यायनीके मुखकी ओर बारबार देखते हुए कहा—तो फिर तुम यह क्यों कहती हो कि तुम्हारे लिए किसीको भी कुछ चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है? तुम आप अपने निकट ही इस तरह क्यों प्रवञ्चित होती हो—ठगी जाती हो? बुरा हो रहा है। तुम्हें इस आघातसे टूट जाना चाहिए था; पर मैं देखती हूँ कि उलटे तुम और भी सख्त हो गई हो। इसी लिए मैं सोचती हूँ कि यदि किसी एक मनुष्यसे भी तुम अच्छी तरह प्रेम कर सकतीं, तो ऐसी कठोर न हो जातीं। मैं तो समझती हूँ कि जो व्यक्ति किसी मनुष्यसे प्रेम नहीं कर सकता, वह शायद भगवानसे भी प्रेम करना नहीं सीख सकता। यदि हो सके, तो अब भी तुम अपने जीवनमें परिवर्तन कर लो। मुझे तो यह सोचते हुए भी डर लगता है कि तुम किस मार्गपर चली जा रही हो।

कात्यायनीने श्रान्त स्वरसे उत्तर दिया—मैं चाहे जिस मार्गपर जा रही हूँ, पर इस जन्ममें मैं इसमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकती। तुम जो कुछ कह रही हो, उसे मैं दूसरे जन्मके लिए ही रख छोड़ूँगी।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद।

महामाया देवी अब यही चाहती थीं कि मैं सोदपुरका रहना छोड़कर कहीं और जगह चली जाऊँ। उन्हींके कारण उस दिन जमींदारके आदमियोंके साथ गाँवके लोगोंका एक बहुत बड़ा दंगा हो गया था और इस लिए अब उस गाँवमें रहते हुए उन्हें अन्दर ही अन्दर बहुत लज्जा जान पड़ती थी। वह दंगा कोई साधारण नहीं था। उसमें मार पीट और खून खराबी तककी नौबत आ गई थी। पुलिसके

दारोगा तकको वहाँ आना पड़ा था। संयोगसे मजिस्ट्रेट भी उस समय उसी ओर दौरेपर आए हुए थे। उस झगड़ेमें जमींदारके पक्षके लोगोंका ही अन्याय प्रकट होता था, इसलिए कामाख्यानाथ तकको मजिस्ट्रेटके सामने उपस्थित होकर लज्जित होना पड़ा था। इससे पहले इन सब बातोंमें कामाख्यानाथके सुयशकी सीमा नहीं थी; परन्तु सोद-पुरकी इस दुर्घटनाके कारण उनकी उस नेकनामीमें बहुत बड़ा बट्टा लग गया था। लेकिन फिर भी महामाया देवी और उनकी ओरके बहुतसे लोग यह बात बहुत अच्छी तरह जानते थे कि इसमें स्वयं बाबू कामाख्यानाथका कोई दोष नहीं है। गाँवका नायब और महेन्द्र यही दोनों इस विवादके उत्तेजक थे। इन्हीं दोनोंके दोषसे यह दंगा हुआ था और इसमें सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात यह थी कि ये दोनों ही जमींदारके आदमी थे। इन्हीं लोगोंने आपसमें झगड़ा करके अन्तमें जमींदारके मुँहपर कालिख पोती थी और निरीह प्रजा तथा जमींदारके प्यादे और सिपाही आदि घायल हुए थे।

महेन्द्र जब जमींदारका ही आदमी था और उनके घरका आदमी था, तब उसे जमींदारके आदमियोंके साथ ही इस प्रकार मार पीट करनेकी क्यों आवश्यकता पड़ी? यदि वह केवल जमींदारसे एक बार कह देता, तो नायबकी सारी नायबी हवा हो जाती। उधर दीवानजी इस बातका प्रयत्न भी कर रहे थे कि नायब बरखास्त कर दिया जाय और उसकी जगह महेन्द्र नियुक्त किया जाय। पर महेन्द्र वह पद भी नहीं लेना चाहता था और जमींदारका ही आदमी होकर चारों ओर प्रजाका दुःख सुख देखता फिरता हुआ भी जमींदारके सुयश और कुयशका ध्यान नहीं रखता था। बल्कि आश्चर्यकी बात तो यह थी कि इस क्षेत्रमें उसने अन्याय-अपयशकी ही

सृष्टि कर दी थी। जिसकी सम्पत्तिके कारण इस विवादका सूत्रपात हुआ था, वह महामाया देवी भी इस दंगेके कारण अत्यन्त मर्माहत हुई थी। वह जानती थी कि नायब क्यों मेरे साथ इस प्रकार शत्रुता करके मुझे इतना तंग कर रहा है; साथ ही यह सोच सोचकर मारे लज्जाके मरी जा रही थी कि मेरे घरके लोगोंकी आपसकी शत्रुताके कारण ही निर्दोष जमींदारकी इतनी बदनामी और अप्रतिष्ठा हुई।

महेन्द्रकी सम्मति नहीं थी, इस लिए महामायादेवी अब तक जमींदारकी शरणमें नहीं जा सकी थी। वह सोचती थी कि जब इतना कुछ हो गया है, तो अब महेन्द्रको असन्तुष्ट करनेसे कोई लाभ नहीं है। परन्तु अब वह इस गाँवमें किसीको मुँह नहीं दिखला सकती थी और कहीं अन्यत्र ही जा रहना चाहती थी; पर सोचती थी कि यदि जाऊँ तो कहाँ जाऊँ और फिर कमलाका क्या होगा? यहाँ तो फिर भी अभी विपत्तिकी कोई वैसी आशंका नहीं है; परन्तु दूसरी जगह तो इस बातका बहुत बड़ा भय रहेगा। एक ही उपाय है—यदि महेन्द्र—लेकिन न जाने क्यों उसे अपने मनमें इस बातका विश्वास नहीं होता था कि महेन्द्रसे मेरी यह आशा पूरी हो सकेगी।

महेन्द्रने महामाया देवीसे पूछा—आप जो दूसरी जगह जाकर रहना चाहती हैं, सो इस बातका क्या ठिकाना है कि वहाँ आपपर कोई भारी विपत्ति नहीं आवेगी?

उस समय महामाया देवी अपने मनकी वह चिन्ता छिपा नहीं सकी। उसने बहुत ही दुःखित होकर कहा—विपत्ति क्यों नहीं आवेगी! बल्कि मैं तो समझती हूँ कि और भी अधिक विपत्ति आवेगी।

महे०—तो फिर क्यों कहीं जाती हैं? मेरी समझमें तो आप अपने मकानमें ही सबसे अधिक निरापद हैं।

महामायाने सिर झुकाकर कहा—बेटा, यह तो मैं भी अच्छी तरह समझती हूँ। परन्तु जिनके आदमियोंकी सहायतासे मैं इस प्रकार निरापद हूँ, उन्हींके सिरपर इस प्रकार कलंकका टीका लगाकर और उन्हींकी प्रजा होकर रहनेका अब मेरा मुँह ही कौनसा है?

देखते देखते महेन्द्रका मुँह लाल हो गया। वह कुछ तीव्र स्वरसे बोला—तो क्या आपने यही समझकर मेरी सहायता ली थी कि मैं जमींदारका आदमी हूँ? आप यह नहीं सोचतीं कि मनुष्य ही मनुष्यकी सहायता करता है? यह ठीक है कि मैं वही नाम लेकर इस गाँवमें आया था; परन्तु आपने कभी इस बातपर विचार नहीं किया कि मैंने सदा केवल अपने मनुष्यत्वकी ही सहायता ली है—उसके सिवा और किसी प्रकारकी सहायता मैंने अपने किसी काममें नहीं ली। फिर भी समझ लीजिए कि आजसे मैं अपना वह नाम भी छोड़ देता हूँ। आजसे आप मुझे जमींदारका आदमी समझनेकी भूल मत कीजिएगा। आजसे आप मुझसे जो कुछ कहना चाहें वह केवल 'महेन्द्र' और 'मनुष्य' समझकर ही कहिएगा, जमींदारका गुलाम समझकर मत कहिएगा।

महामाया देवी विस्मित और दुःखी होकर महेन्द्रके मुँहकी ओर देखने लगी। बहुत देर तक उसके मुँहसे कोई बात ही नहीं निकली। अबकी बार जबसे महेन्द्र यहाँ आया था, तभीसे वह देख रही थी कि महेन्द्रके भावोंमें बहुत कुछ विपर्यय हो गया है। उसका वह विनीत, प्रियभाषी, शान्त और विषण्ण देवकुमारके समान मुख इधर न जाने किस उत्तेजनाके कारण सदा अशान्त बना रहता था। उसके उदार और विस्तृत ललाटमें सदा बल पड़े रहते थे। उसकी भौंहें सदा टेढ़ी रहने लगी थीं। उसके नेत्रोंमें एक ऐसी उज्ज्वलता और चमक आ गई थी

जिसे देखकर आदमी सुखी नहीं होता था। पहले महामायादेवीने समझा था कि पालन करनेवाली माताके परलोक सिधारनेके कारण ही महेन्द्रमें यह परिवर्तन हो गया है। यह बात भी उसके ध्यानमें आ गई थी कि अबकी महेन्द्र मुझे 'माँ' कहकर भद्रतापूर्वक सम्बोधन नहीं करता है। किन्तु इसके कारण महेन्द्रपर उसका स्नेह बढ़ा ही था, घटा नहीं था! वह सोचती थी कि माताके मर जाने पर पहले आदमी ऐसा ही हो जाया करता है। लेकिन फिर भी उसे आशा थी कि यह मातृहीन फिर जब किसीको 'माँ' कहकर पुकारेगा, तब अपने हृदयका सब शिशुत्व उसके समर्पण कर देगा। बस वह अपने हृदयमें उसी दिनकी प्रतीक्षा कर रही थी जिस दिन वह उसे 'माँ' कहकर पुकारेगा। लेकिन आज महेन्द्रकी इस अप्रत्याशित कठोरतासे मानों उसपर वज्र पड़ गया! वह सोचने लगी कि क्या मेरी वह सब आशा मिथ्या ही है? क्या यह महेन्द्रका परोपकार मात्र ही है? यदि यह बात नहीं थी, तो मेरी सीधी सादी बातके कारण ही महेन्द्र इतने टेढ़े रास्ते क्यों चला गया? क्या सचमुच इसे स्नेहके बन्धनमें बाँधनेकी कोई सम्भावना नहीं है? जब उसमें कुछ बोलनेकी शक्ति आई, तब वह बोली—नहीं बेटा, अब मैं तुम्हें भी कष्ट नहीं देना चाहती। हम लोगोंके लिए अब तक तुमने जो कुछ किया है, उसके बदलेमें यदि हम लोग तुम्हें इस प्रकार असम्मान ही दें, तो दोनों पक्षोंके लिए यही यथेष्ट है। अब तो मैं यही देखना चाहती हूँ कि दुखियोंके पक्षमें मनुष्यके सिवा और भी कोई है या नहीं।

महेन्द्रने कुछ सिर झुकाकर फिर पूछा—आखिर आप कहाँ जाना चाहती हैं?

महा०—अब तो मैं यही सोचती हूँ कि नौगाँवमें अपने स्वामीके दरवाजे ही चली जाऊँ।

महे०—हैं! तो क्या आप कमलाको भी अपने साथ ही लेती जायँगीं?

महा०—नहीं तो उसे और कहाँ रख जाऊँगी?

महे०—आप यह कैसी बात कह रही हैं? क्या वे सब बातें भूल गईं?

महा०—नहीं, भूली तो नहीं हूँ। लेकिन इस एक मार्गको छोड़कर और कोई उपाय भी तो नहीं दिखाई देता।

महे०—तो क्या आप यह समझती हैं कि वे लोग कमलाको जीती रहने देंगे? और वह जो आपने उस दिन उस विषम विवाहकी बात कही थी—

महा०—मुझे वे सभी बातें याद हैं; लेकिन मेरे पास इसके सिवा और उपाय ही क्या है! यदि मैं यहाँ रहूँगी तो प्रायः नित्य ही इस तरहके फसाद हुआ करेंगे। मेरे मददगारोंमेंसे एक तुम्हीं ठहरे। पर अब मैं तुम्हें भी बहुत अधिक कष्ट नहीं देना चाहती। इस प्रकारकी अशान्ति तथा उद्वेग लेकर इधर उधर भागनेकी अपेक्षा उसमें कूद पड़ना ही अच्छा है। फिर जो होनेको होगा, वह होता रहेगा। संभव है, अभी ससुरजी जीवित हों। और वे लोग भी आखिर अपने ही हैं, कहाँ तक क्या करेंगे! और फिर वे जो कुछ करना चाहें कर लें। मेरे तो केवल भगवान् ही सहायक हैं। वे जो कुछ करेंगे, वही होगा।

महेन्द्र कुछ दुखी हुआ और उसकी समझमें न आया कि अब क्या करना चाहिए। सहसा वह बोल उठा—परन्तु उन लोगोंने जिस

अभिप्रायसे नायबके साथ मिलकर षड्यन्त्र रचा था, वह तो आप यों ही सफल कर देना चाहती हैं। तो फिर इतने दिनों तक हम लोगोंने जो यह सब किया वह किस लिए? नहीं, ऐसा कभी न हो सकेगा। आप वहाँ नहीं जा सकेंगी। यदि आप यहाँ न रहना चाहती हों, तो और किसी जगह चली चलें। मैं आपको वहाँ जाने देकर उनकी मनस्कामना किसी तरह सिद्ध नहीं करने दूँगा।

महामायाने म्लान मुखसे कहा—और किसी जगह मैं किसके भरोसे पर जाऊँगी? वहाँ कौन हम लोगोंकी देख भाल करेगा?

महे०—यहीं कौन देख भाल करता था? जिस तरह यहाँ रहती थीं, उसी तरह वहाँ भी रहिएगा।

महा०—यह तो मेरा मायका है। मैं जन्मसे यहीं रहती आई हूँ। और फिर यह तो तुम अच्छी तरह जानते हो कि इधर कई महीनोंसे हम लोग तुम्हारे ही भरोसे यहाँपर रहे हैं।

महे०—मैं तो अब भी यहाँ रह सकता हूँ। जमींदारका आदमी न होने पर भी तो मैं—

महामायाने उसे बीचमें ही रोककर व्यथित भावसे कहा—उस दिन जब झीलके किनारे तुमने हम लोगोंकी रक्षा की थी, तब हम लोगोंने यह समझकर तो तुमपर भरोसा किया ही नहीं था कि तुम जमींदारके आदमी हो। आज भी तो तुम वही हो। फिर क्यों बार बार वह बात कहकर मुझे दुखी करते हो? लेकिन क्या तुम हम लोगोंके पास हमेशा बने रहोगे? तुम्हें क्या हम लोग—

महे०—चाहे मैं हमेशा न रह सकूँ; पर कुछ दिन रह सकता हूँ—कमसे कम आपकी विपत्ति कट जाने तक।

महा०—जबतक कमलाका विवाह न होगा, तब तक हम लोगोंकी विपत्ति कैसे दूर हो सकती है?

महे०—अच्छी बात है। तो फिर जब उसका विवाह हो जायगा, तभी मैं यहाँसे जाऊँगा।

महा०—यदि यही बात है तो तुम सदाके लिए ही उसे अपने आश्रयमें क्यों नहीं ले लेते बेटा? जहाँ तुमने उसके लिए इतना सब कुछ किया है, वहाँ इतना और करो कि उस अभागीको अपने ही चरणोंमें स्थान दे दो। यदि वह तुम्हारे योग्य न भी हो, तो भी उसके ऊपर तुम्हारी दया तो कम नहीं हुई है। केवल इसी विचारसे उसे स्वीकार कर लो।

क्षणभरके लिए महेन्द्रका मुख मृतकके समान विवर्ण हो गया। जिस स्थनापर अतिशय वेदना होती है, उस स्थानको दोनों पैर रखकर दबा देनेसे वेदनाग्रस्त व्यक्ति जिस प्रकार तिलमिला उठता है, ठीक उसी तरह वह भी तिलमिला उठा। जब वह उस आघातसे कुछ सँभला, तब उसने सिर झुकाकर कहा—मैं तो कुलीन नहीं हूँ, श्रोत्रिय हूँ। इस सम्बन्धसे तो आपका कुल नष्ट हो जायगा।

महा०—हुआ करे। मुझे कुलकी आवश्यकता नहीं है।

महे०—मान लिया कि आपको कुलकी आवश्यकता नहीं है, पर आपके आत्मीय स्वजनोंको तो है। सम्भव है कि इसके कारण कमलाको अपने पिताकी सम्पत्तिसे भी वंचित होना पड़े।

महा०—कमलाको उस सम्पत्तिकी भी कोई आवश्यकता नहीं हैं। यदि तुम्हारे चरणोंमें उसे—

महे०—माँ, सच बात तो यह है कि कमला मेरी बहन है। इसलिए आप यह बात छोड़ दें, कोई और बात कहें।

महामाया देवी पहले तो कुछ स्तब्ध हो गई, फिर भग्न स्वरसे बोली—बेटा, तुम मुझे माँ कहते हो, इसी लिए मैं यह बात कहती हूँ। और नहीं तो फिर तुम्हीं बतलाओ कि आखिर और किस अधिकारसे हम लोग तुम्हें इतना अधिक कष्ट दें?

महे०—माताके अधिकारसे, बहनके अधिकारसे! क्या संसारमें उस एक सम्बन्धके सिवा और कोई सम्बन्ध नहीं है? मेरी भी माँ नहीं है, बहन नहीं है। आप लोग मेरे उसी अभावकी पूर्त्ति कीजिए।

महेन्द्रका यह स्वर और कातर भाव देखकर महामाया देवीका क्षोभ कुछ कम हो गया। उसने कहा—लेकिन क्यों महेन्द्र, क्या सचमुच कमला तुम्हारे योग्य नहीं है?

महे०—जी नहीं, वह मेरी बहन है। वह स्वयं राजराजेश्वरी कमला है। मैं जिसके हाथमें उसे सौंपूँगा वह राजराजेश्वर होगा। आप मुझे यही अधिकार दीजिए कि मैं उसका बड़ा भाई बनकर उसे उसके योग्य पात्रके हाथमें सौंपूँ। बस, मैं आपसे इसी अधिकारकी भिक्षा माँगता हूँ।

महामाया देवीने आगे बढ़कर महेन्द्रका मस्तक चूमा और कहा—अच्छा बेटा, यही सही। धर्म साक्षी है, आजसे तुम उसके सहोदर हुए। उसका सारा भार तुम्हींपर है। तुम्हीं उसे बचाओ और रखो। तुम्हें जो कुछ ठीक जान पड़े, उसीकी व्यवस्था करो। अब मैं इन सब कामोंसे छुट्टी पा गई।

महेन्द्रने बहुत ही कृतज्ञतापूर्वक महामाया देवीके पैरोंपर सिर रख दिया। महामाया देवीकी आँखोंसे आँसू निकलकर महेन्द्रके सिरके बाल भिगोने लगे। कुछ देर बाद बड़ी कठिनतासे आँसू रोककर महामाया देवीने पुकारा—कमला! कमला!

दूसरे कमरेमेंसे कमला आकर उन लोगोंके पास खड़ी हो गई।

महा०——कमला अपने भइयाको प्रणाम करो।

कमलाकी समझमें ही न आया कि यह आज फिर नए सिरसे भइयाको प्रणाम कैसा? वह अवाक् रह गई।

महेन्द्रने हँसते हुए कहा——देखती हैं न माँ, यह कैसी पाजी लड़की है। भइयाको देखकर प्रणाम भी नहीं करना चाहती; सामने सिर भी नहीं झुकाना चाहती। वाहरी लड़की वाह!

कमलाने हँसते हुए माँके आँचलमें मुँह छिपा लिया। माँने उसका सिर ले जाकर महेन्द्रके पैरोंके पास कर दिया और अश्रुरुद्ध कंठसे कहा——यह लो, अपनी बहनको सँभालो। कमला, अपने भइयाके चरणोंकी धूल लो।

अपनी माताक स्वरसे कमलाने अब जाकर समझा कि आज कोई गम्भीर बात हुई है। इसलिए उसने भी गम्भीरतापूर्वक महेन्द्रके चरणोंपर सिर रखकर उसकी धूल मस्तकसे लगाई और तब उठ खड़ी हुई।

महेन्द्रने कहा——अब मैं भी यहाँ नहीं रहूँगा। यदि आप अपने ससुरजीको देखनेके लिए जाना चाहें तो जा सकती हैं; लेकिन कमलाको आप मेरे पास छोड़ जाइए। मैं उसे किसी निरापद स्थानमें रखकर उसके लिए वर ढूँढ़ने निकलूँगा।

महा०——तुम उसे कहाँ और किसके पास रखोगे?

महे०——मैं उसे अपने——अपनी माँके घर रखूँगा।

महा०——वहाँ तुम्हारा और कौन है?

महे०——मेरी माँकी लड़की है। उसीके पास रखूँगा।

महा०——तुम्हारी बहन है? तब तो फिर बहुत अच्छी बात है। इस बीचमें मैं भी जाकर ससुरजीको देख आऊँगी कि वे किस अव-

स्थामें हैं और मेरे भानजेका भी क्या मतलब है। तो फिर तुम कमलाको अपनी बहनके पास कब ले जाना चाहते हो ?

अपने विवर्ण और वेदनाप्राप्त मुखको दूसरी ओर फेरकर महेन्द्रने कहा—कल ही।

महा०—कल ही ?

महामाया देवीने विह्वल होकर कमलाको अपनी गोदमें खींच लिया और उसके मस्तकपर अपना मुँह रख दिया। कन्या भी मानो चुपचाप माँकी उसी गोदमें छिप जाना चाहती थी। अब कमला सयानी हो चली थी और कुछ कुछ समझने लग गई थी कि मेरे कारण मेरी मातापर भारी विपत्ति आ रही है। इसी लिए वह अपनी चिर-निर्भर माताकी गोदसे अलग होनेकी बात सुनकर न तो सिहिर ही उठी और न रोई ही। महेन्द्रने भी धीरे धीरे अपनी मानसिक व्यथा दूर कर दी थी और अब वह स्तब्ध नेत्रोंसे माता और कन्याकी ओर देख रहा था तथा उनकी निःशब्द विच्छेद-वेदनाको अपने हृदयमें अनुभव करने लगा था। सब लोगोंकी यह नीरवता कमलाने सहसा "माँ" कहकर तोड़ दी। उस समय महामाया और महेन्द्रने बहुत घबराकर और उद्विग्नता-पूर्वक कमलाके मुखकी ओर देखा। उन लोगोंको भय हुआ कि कहीं कमला मूर्छित तो नहीं हो गई! पर उन लोगोंने देखा कि वैसा नहीं हुआ। उस दिन नदीके तटपर गोपीनाथका कठोर स्वर सुनकर वह भीरु पक्षीकी तरह अज्ञान हो गई थी। पर आजके उसके उस स्वरसे जान पड़ता था कि कई महीनोंके बाद आज उसमें बहुत कुछ बल आ गया है। धूपके कारण सूखे हुए फूलकी तरह अपना मुँह ऊपरकी ओर उठाकर उसने कहा—माँ, मैं भइयाके साथ जाती हूँ। लेकिन तुम घरहीपर रहो, वहाँ मत जाओ। . . . . .

कन्याके मुखपर मुख रखकर माताने उत्तर दिया—नहीं बेटी, मैं जाती हूँ। जाकर तुम्हारे दादाजीको जरा देख आऊँ। वे बार बार आदमी भेजकर मुझे बुलवा रहे हैं। अब तक मैं यही सोचकर नहीं जा सकती थी कि तुम्हें कहाँ छोड़कर जाऊँ।

कम०—उन्होंने तो तुम्हें घरसे निकाल दिया है, फिर तुम उनके यहाँ क्या करनेके लिए जाती हो?

महा०—नहीं बेटी, ऐसी बात नहीं कहनी होती। वे मुझे हजार बार घरसे निकाल दें; पर फिर भी वे जब बुलावें, तभी मुझे वहाँ जाना चाहिए। और तिसपर तो वे आजकल पक्षाघातके कारण बिलकुल पंगुल हो रहे हैं, इस समय तो मुझे स्वयं वहाँ जाकर उनकी सेवा करनी चाहिए। इतने दिनों बाद वे मुझे बुला रहे हैं। यदि ऐसे समय मैं वहाँ न जाऊँगी, तो मुझे पाप लगेगा।

कम०—तो फिर वे हमें इतना डराते धमकाते क्यों हैं? हम लोगोंके साथ ऐसा क्यों करते हैं?

महा०—बेटी, वे तो कुछ भी नहीं करते। जो कुछ करता है वह उनका नाती करता है। इस समय वही सबका मालिक हो रहा है। इसी लिये मैं चाहती हूँ कि एक बार जाऊँ और परेशके सामने जाकर कह आऊँ कि हम लोगोंको उसकी किसी भी चीजकी जरूरत नहीं है। मैं उससे कह दूँगी कि अगर कमलाको उसके दादाजी कुछ दें भी, तो मुझे उसमेंकी एक कौड़ी भी नहीं चाहिए। मेरे पास जो कुछ है वही मेरी कमलाके लिए बहुत है। बस वे लोग मुझे शान्तिके साथ जीने खाने दें, यही मैं चाहती हूँ। इसके सिवा मुझे और कुछ नहीं चाहिए।

महेन्द्रने कहा—माँ, यद्यपि कमला अभी जरासी लड़की है, फिर भी अभी उसने जो बात कही है, मुझे वही ठीक जान पड़ती है। अगर आप जायँगी तो उन लोगोंके हाथमें पड़ जायँगी।

महा०—नहीं बेटा, अब तुम मुझे मत रोको। बहुत दिन हो गए हैं। अब कमलाके पिताके घर और ससुरजीको देखनेके लिए मेरा जी बहुत व्याकुल हो रहा है। इतने दिनों तक तो मैं वहाँ नहीं गई थी। पर आज जब कि वे मुझे बुला रहे हैं, तब मैं नहीं रुक सकती। मुझे केवल कमलाकी चिन्ता थी। पर जब आज तुमने उसका भार अपने ऊपर ले लिया है, तो अब मैं वहाँ अवश्य जाना चाहती हूँ। मेरा वे लोग कर ही क्या लेंगे! जब कमलाका ब्याह ठीक हो जायगा, तब मैं फिर चली आऊँगी। तब तक इस घरमें—

महे०—जी नहीं, इसके लिए तो कुछ भी चिन्ता नहीं है। जब तक आप यहाँ नहीं रहेंगी, तब तक आपकी बुआ सब आदमियोंके साथ यहाँ आरामसे रहेंगी। अब जो यहाँ नया नायब नियुक्त हुआ है, उसके द्वारा प्रजाकी कोई हानि होनेकी सम्भावना नहीं है।

महामाया देवीने कुछ सोचकर कहा—मैंने तो सुना था कि जमींदार और उनके दीवान तुम्हींको यहाँका नायब बनाना चाहते थे।

महे०—हाँ, लेकिन मैं उनका नौकर होकर और बँधकर नहीं रह सकता।

महा०—लेकिन आखिर बेटा, तुम उन्हींके तो नियुक्त किये हुए आदमी हो!

महेन्द्रने कुछ उत्तप्त होकर और घृणासे होंठ संकुचित करते हुए उत्तर दिया—हाँ। अपने भाग्यके कारण—लेकिन मैं भाग्यका नाम

क्यों हूँ ? संसारमें भाग्य है ही कहाँ ? यह ठीक है कि अपना पूर्वापर समझनेकी मुझमें शक्ति नहीं थी, इसलिए मैंने वह नाम लिया था; लेकिन मैंने काम स्वाधीन और केवल न्यायका पक्ष लेकर ही किया है, और अब तो मैंने वह नाम भी छोड़ दिया है। अब मैं इस प्रकार नहीं रहूँगा और जमींदारके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रखूँगा।

महा०—क्यों बेटा, मैंने तो सुना था कि दीवानजी आकर तुम्हें—

महेन्द्रने बीचमें ही रोककर कहा—हाँ, वह बात ठीक है। मुझपर उन लोगोंकी श्रद्धा या विश्वास कुछ भी कम नहीं हुआ है। लेकिन फिर भी अब मैं इस काममें नहीं रहना चाहता।

महेन्द्र कुछ चिन्तित भावसे चुप हो गया और फिर मानो आप ही आप बोल उठा—निरंजनने ठीक ही कहा था कि यह काम धीरे धीरे मनुष्यको नीचताकी ओर खींच ले जाता है! अब मेरे लिए अपने हाथमें इतनी शक्ति रखना या इन लोगोंके साथ किसी प्रकारका सम्पर्क रखना अच्छा नहीं है।

महामाया देवी चुप रही। उसने अपने मनमें समझा कि महेन्द्रने हठवश जमींदारको जो इतनी हानि पहुँचाई है और उनकी जो इतनी बदनामी की है, उसीके अनुतापके कारण वह अब उनका काम छोड़ रहा है। यह बात बहुत ही संगत है और महेन्द्र सरीखे उदारहृदय युवकके लिए नितान्त स्वाभाविक है। महेन्द्रके चरित्रकी जो बात उसे काँटेकी तरह चुभा करती थी और वेदना पहुँचाया करती थी, महेन्द्रके इस भावको जानकर वह उसके हृदयसे निकल गई। अब महामाया देवीने स्वस्तिकी साँस लेकर स्नेहपूर्वक महेन्द्रके म्लान मुखकी ओर देखा।

सोलहवाँ परिच्छेद ।

दिन भर बहुत तेज गरमी और उमस पड़ी थी और अब तीसरे पहर थोड़ासा बादल हो आया था; परन्तु वायुकी दुष्टताके कारण वह बादल भी ठहरने नहीं पाता था। कात्यायनीकी रखवाली करनेवाली रमाकी वृद्धा दाई इसके लिए पवन देवताको यथेष्ट गालियाँ दे रही थी। लेकिन जब पवन देव उस बादलको उड़ाकर न हटा सके, तो उसका रुख धीरे धीरे और भी तेज होने लगा।

का०—मैं तो समझती हूँ कि आज रमा मन्दिरमें न आ सकेगी।

बाहर खूब तेज हवा चल रही थी, पर घरके अन्दर बड़ी उमस और गरमी थी। वृद्धाने पंखा झलते हुए कहा—चाहे देवता फूलसे वंचित रह जायँ, पर वह मन्दिरमें जरूर आती है। और तो और, जब कभी बाबूजी या भइयाजी बीमार पड़ जाते हैं तब भी वह सन्ध्याको दौड़ी हुई मन्दिरमें आती है। सदासे उसका यही अभ्यास है।

धीरे धीरे सन्ध्या हो गई। वृद्धा सहसा कुछ अस्थिर होकर मन ही मन बोली—लेकिन देखो अभी तक तो वह आई नहीं। रोज तो वह इस समय तक मन्दिरमें पहुँच जाती थी। अब तो आरतीका समय भी आ चला। मेरे इस मुँहको आग लगे, मैंने भी कहाँसे बीमारीका नाम ले लिया!

कात्यायनीने तुलसीके आगे दीआ जलाया और तब आँगनमें आकर वह जरासी खड़ी हो गई। बेला और चमेलीकी बहुत सुन्दर महक आ रही थी, इसलिए उसने एक बार उनके पौधोंकी ओर देखा। उन पौधोंको उस समय भी विश्राम नहीं था। न तो उन्हें आजकल यथेष्ट

जल ही मिलता था और न कोई उनके फूल ही तोड़ता था। लेकिन फिर भी वे सब फूलोंसे लदे हुए खड़े थे। रमा जिस दिन वहाँ आती थी, उस दिन तो फूल तोड़कर मन्दिरमें ले जाती थी; पर जिस दिन वह नहीं आती थी, उस दिन वे फूल यों ही फूलते थे और सूख-कर गिर जाते थे।

कात्यायनीको आँगनमें खड़ी देखकर वृद्धाने फिर कहा—क्यों, कोई आ रहा है क्या?

कात्यायनी केवल 'नहीं' कहकर रह गई। वायुके वेगके कारण तुलसीके आगेका दीपक बुझना चाहता था, इसलिए उसने आगे बढ़-कर उसकी बत्ती जरा उसका दी।

वृद्धा—लो भला, तुम आ तो गईं। मैं मरी न जाने क्या कहते क्या कह गई थी! क्या सोचती सोचती न जाने क्या सोचने लग गई थी! बीमारी सीमारी हो दुश्मनोंको।

वृद्धाका आनन्दपूर्ण स्वर सुनकर कात्यायनीने मुड़कर देखा कि सामने रमा खड़ी है और उसके साथ हाथमें लालटेन लिये हुए दासी है। कात्यायनीने पूछा—आज इतनी देर क्यों हुई?

रमा—बाबूजी सवेरे ही सोदपुर या न जाने और कहाँ जायँगे, इसी लिए—

कात्यायनीने कुछ अन्यमनस्क होकर पूछा—इसी लिए क्या?

रमा—इसी लिए उनकी रोजकी सब जरूरी चीजें इकट्ठी करके रख रही थी। कौन जाने वहाँ उन्हें कितने दिन लगेंगे। जब साथमें अचार उचार नहीं रहता, तब उनसे अच्छी तरह खाया नहीं जाता—

कात्यायनीने बीचमें ही रोककर कहा—कहाँ? सोदपुर जायँगे? महेन्द्र भी तो वहीं रहता है न?

रमा—यह तो मैं नहीं जानती। पर मालूम होता है कि वहाँ कुछ हुआ है। बाबूजी बहुत घबराए हुए मालूम होते थे। वे तो आज सन्ध्याको ही चले जाना चाहते थे; पर घोड़ेके पैरमें दरद है और दीवानजीके लिए भी पालकी ठीक नहीं हुई है। इसी लिए लाचार होकर उन्हें रुक जाना पड़ा। अब तड़के ही चले जायँगे। भइया भी यहाँ नहीं हैं, शहर गए हैं। इधर कई दिन अकेले रहना पड़ेगा। क्या तुम दो एक रोज दोपहरको आ जाया करोगी?

का०—आ जाऊँगी। तुम्हें कुछ मालूम है कि वे इतना घबराए हुए सोदपुर क्यों जा रहे हैं?

रमा—नहीं, बाबूजीने तो कुछ भी नहीं कहा। मैं केवल इतना समझ सकी कि वे बहुत ही घबराए हुए हैं। चलो, मन्दिर चलें। आरतीका समय हो गया। देखो, पच्छिममें कैसे काले बादल छाए हैं! अगर सवेरे खूब पानी बरसा तो?

कात्यायनीने मेघोंकी ओर देखते हुए कहा—डरकी बात नहीं है, हवा इन बादलोंको उड़ा ले जायगी।

रमाने कातर भावसे कहा—क्या जाने क्या होगा। मन्दिर चलना हो तो चलो।

कात्या०—नहीं, आज तो मैं नहीं जाऊँगी। वहाँ तुम्हारे यहाँकी तो और कई औरतें होंगी?

रमा—हाँ, मिसरानीजी अभी आगे गई हैं। अच्छा तो अब मैं जाती हूँ। तुम कल जरूर आना।

रमाके चले जानेपर वृद्धा आप ही कहने लगी—मैंने अपने हाथसे खेलाकर इन दोनों भाई बहनोंको इतना बड़ा किया है। जब बड़े बाबू

निरंजन भइयाके बराबर थे, तबसे मैं उनके यहाँ हूँ। मेरे मनमें भी कैसी कैसी बातें आती हैं। परमेश्वर करे, सब लोग राजी खुशी रहें।

कात्यायनी ओसारेमें एक चटाई बिछाने लगी। यह देखकर वृद्धाने कुछ असन्तोष प्रकट करते हुए कहा—तुम मन्दिरमें दर्शन करने क्यों नहीं गई? वह बेचारी अकेली गई है। अब न जाने वह वहाँ कितनी देर तक धरना देगी। तुम्हारे साथ बातचीत करना उसे बहुत अच्छा लगता है। और वह मिसरानी जो है वह तो कुछ और ही तरहकी है।

कात्यायनीने उस वृद्धाकी इन बातोंका कोई उत्तर नहीं दिया और वह चुपचाप चटाईपर लेट गई। तब लाचार होकर वह भी पास ही एक दूसरी चटाई बिछाकर उसपर लेट गई और बोली—हे भगवान्, जो तुम्हारी मरजी!

कात्यायनी अपने ओसारेमें लेटी लेटी आकाशकी ओर देख रही थी। बादल धीरे धीरे हटते जा रहे थे और हवा भी धीमी पड़ती जा रही थी। उसे यह देखकर कुछ सन्तोष हुआ कि रमाकी आशंका अब दूर हो गई और वह करवट बदलकर सो गई। तुलसीके चौरेपरका दीपक टिमटिमाता हुआ जल रहा था और आँगनका अन्धकार दूर करनेका प्रयत्न कर रहा था; पर उस प्रयत्नमें उसे सफलता नहीं हो रही थी। कात्यायनी सोचने लगी कि आज अगर माँ जीवित होतीं, तो इस समयतक यहाँ बैठी हुई जप करती होतीं और सोदपुरकी घटनाके कारण भी वे कदाचित् बहुत चिन्तित होतीं।

धीरे धीरे कात्यायनीको निन्द्रा आने लगी। घोर निद्रामें उसे एक बार ऐसा जान पड़ा कि मानो माता मेरे सिरहाने बैठी हैं और उन्होंने अपना ठंढा हाथ मेरे मस्तकपर रखा है। यह ध्यान होते ही वह चौंक

पड़ी और अपने मस्तकपर हाथ फेरने लगी । उसने समझा कि शायद छिन्न भिन्न मेघके किसी क्षुद्र अंशमेंसे गलकर वायुके वेगसे एक बूँद जल मेरे मस्तकपर आ पड़ा है । आकाशकी ओर देखा तो सामने ही एक चमकता हुआ तारा दिखाई दिया । उसने पहचान लिया कि यही बृहस्पति हैं और ये नित्य इस समय आकाशके मध्यमें सम्राटके समान विराजते हैं । साथ ही साथ उसे पिताकी ज्योतिष-गणनाका भी स्मरण हो आया ।

वृद्धाके हाथसे पंखा छूटकर खटसे जमीनपर गिर पड़ा और वृद्धाको इस बातका पता भी न चला । मारे नींदके कात्यायनीकी आँख भी नहीं खुल रही थी । वह सोई सोई स्वप्न देखने लगी कि पिताजी मेघ-पर बैठे हुए आकाशके ग्रह नक्षत्रोंको एकत्र कर रहे हैं और दुष्ट तथा विमुख ग्रहोंको उँगलीके इशारेसे शुभ स्थानपर जानेका आदेश दे रहे हैं । उसने यह भी देखा कि माँ मेरा मस्तक अपनी गोदमें लेकर कह रही है कि तेरे पिताकी यह सब लड़क-खिलवाड़ है । तुम इन सब बातोंकी ओर मत देखो और चुपचाप सो जाओ ! महेन्द्रने मेरी बात नहीं मानी और वह यह सब खेलवाड़ देखनेके लिए चला गया । तुम लड़की ठहरीं । तुम कहाँ जाओगी ? चुपचाप सोओ । स्वप्नमें ही कात्या-यनीने माँसे कहा—नहीं, नहीं । मैं जाऊँगी और उसने उठकर जानेकी चेष्टा की । पर उससे चला नहीं गया । धीरे धीरे गहरी नींद आ गई और वह बिलकुल सो गई ।

प्रभातके समय एक विकट शब्द हुआ जिससे कात्यायनी जाग उठी । उसने देखा कि आकाशमें घोर अन्धकार छाया हुआ है । बिजली मेघोंके मस्तकपर अग्निके साँपोंकी तरह किसी अदृश्य हाथके

प्रचंड डमरूके बाजेको सुन सुनकर नाच रही है। साथ ही जोरके शब्दोंके साथ वर्षा होने लगी। कात्यायनी घबराकर उठ बैठी। वृद्धाकी नींद भी खुल गई और वह 'अरे बापरे, अरे बापरे, यह क्या हुआ!' कहती हुई घबराकर उठ खड़ी हुई। उसे इस प्रकार चिल्लाते देखकर कात्यायनीने कहा—तुम डर क्यों गई? पानी आया है, उठो, अन्दर चलो।

वृद्धा चटाई लपेटकर पंखा ढूँढ़ने लगी। पर जब पँखा नहीं मिला, तब बहुत असन्तुष्ट हुई और उसी असन्तोषके स्वरमें बोली—देखो, जोरका पानी आया। चलो, तुम भी अन्दर चलो।

पर कात्यायनी अपने स्थानसे नहीं हिली। देखते देखते खूब जोरका पानी आ गया। अबकी वायुका पराजय हो गया। उसे असावधान पाकर बादलोंने आकाशपर दृढ़तापूर्वक अपना अधिकार जमा लिया। विवश होकर वायुको बिलकुल रुक जाना पड़ा और पानी खूब जोरोंसे बरसने लगा। जब वृद्धाने कई बार बहुत बिगड़कर पुकारा, तब लाचार होकर कात्यायनी भी अन्दर चली गई। अन्दर खाटपर पड़ी पड़ी वह पानी बरसनेका विचित्र शब्द सुन रही थी, और मन ही मन सोच रही थी कि रमाकी आशंका मिथ्या नहीं हुई। लेकिन ऐसी घोर वर्षाके समय भला क्या कोई कभी घरसे बाहर निकलता है? लेकिन अगर कोई ऐसी बहुत बड़ी जरूरत ही आ पड़े, तो? फिर उसने सोचा कि क्या कोई ऐसी जरूरत भी हो सकती है जिसमें ऐसी वर्षामें भी घरसे निकलना पड़े? सोदपुरमें ही तो महेन्द्र है! फिर इन्हें वहाँ जानेकी कौनसी इतनी बड़ी जरूरत आ पड़ी? पर सहसा कात्यायनीके मनमें यह बात आई कि मुझे इन सब बातोंकी व्यर्थकी चिन्ता क्यों हो? जिनपर यह सब भार है, वह आप ही इन सब बातोंकी चिन्ता कर लेंगे।

तड़का हुआ; परन्तु वर्षा बराबर होती ही रही। वृद्धाने कहा—आज जब मंगलवारको देव बरसने लगे हैं, तब मालूम होता है कि आठ दिनकी खबर लेंगे।

कात्यायनीकी इच्छा होती थी कि कोई जाकर जमींदारके यहाँका समाचार ले आवे। लेकिन इस घोर वर्षामें भला कौन वहाँ जा या आ सकता था! दोपहरके समय उसका चित्त बहुत चंचल हुआ और उसने आप ही आप कहा—आज तो इस समय रमाने मुझे अपने यहाँ बुलाया था। शायद वह अकेली होगी।

वृद्धाने प्रतिवाद करते हुए कहा—भला ऐसे पानीमें भी कोई घरसे निकलता है?

कात्यायनीको भी कुछ लज्जा सी आई। उसने सोचा कि सचमुच लोग देखेंगे, तो क्या कहेंगे! जब सन्ध्या हुई तब सिरपर अँगोछा लपेटे हुए रमाके यहाँसे एक मजदूरनी आई और कह गई—बीबीजी मन्दिर गई हैं। कह गई हैं कि कल अगर पानी बन्द हो, तो आप जरा दोपहरको वहाँ आ जाइएगा। बाबूजी आज सवेरे ही इलाकेपर चले गए हैं।

दूसरे दिन दोपहरको भी पानी बन्द नहीं हुआ। पर भोजनके उपरान्त वृद्धा सिरपर अँगोछा लपेटकर खड़ी हो गई और कात्यायनीको उपदेश करती हुई बोली—देखो विधुकी माँ है और तुम हो। घर बारका ध्यान रखना। दोनों जनी किवाड़ बन्द करके यहीं रहो। मैं जरा घर हो आऊँ। वहाँ वह लड़की अकेली होगी। ऐसे पानीमें बाबूजी भी चले गए! न जाने वहाँ कौनसा ऐसा काम रखा हुआ था!

वर्षाके कारण आज भी कात्यायनी रमाके यहाँ न जा सकी। यद्यपि चिन्ताकी कोई बात नहीं थी; पर फिर भी उसका मन नहीं

मानता था। वह सोचने लगी कि वह कौनसा ऐसा जरूरी काम है, जिसके कारण जमींदारको इस पानीमें भी इलाकेपर जाना पड़ा।

वृद्धाकी भविष्यद्वाणी पूरी नहीं हुई। तीसरे ही दिन वृष्टि रुक गई। रमा हँसती हुई आई और कात्यायनीसे बोली—इस घोर वृष्टिमें भी बाबूजी सकुशल वहाँ पहुँच गए हैं और अच्छी तरह हैं। महेन्द्रका हाल भी रमाको मिल गया था। वह भी अच्छी तरह है। वहाँ जमींदारीका कोई जरूरी काम है। चिन्ताकी कोई बात नहीं है। परन्तु यह सब कुछ सुन लेनेपर भी कात्यायनीका मन सहसा प्रसन्न नहीं हो सका।

और दो दिन बीत गए। कात्यायनीने सुना कि जमींदार लौटकर घर आ गए हैं। रमाके स्निग्ध और प्रसन्न मुखपर किसी प्रकारकी विलक्षणता या विकार नहीं दिखाई देता है, इसलिए उसने अपने मनकी निरर्थक चिन्ता भी दूर कर दी है। उस दिन एकादशी थी। रमाके बहुत अधिक अनुरोध करनेपर दोपहरके समय कात्यायनी वहाँ चली गई थी।

रमा पत्थरकी नकाशीदार बड़ी रिकाबीमें आमोंका रस निकाल निकालकर रख रही थी और कात्यायनी उसे इस काममें सहायता दे रही थी। जलकी धारामें सब वृक्ष बहुत देर तक स्नान कर चुके थे और अब तेज धूप लगनेके कारण उनका पीलापन अधिक उज्ज्वल हो रहा था जिसके कारण नेत्रोंको कुछ कष्ट बोध होता था। आकाश नीले रंगका हो रहा था। धूपकी तेजीके कारण पक्षी आदि कहीं छिपे हुए पड़े थे। कात्यायनी एक एक पथरी उठाकर ले जाती थी और धूपमें रख आती थी। रमाको उसने छायामें ही रहने दिया था, धूपमें नहीं आने दिया था। फिर भी उसने रमाकी ओर देखकर कहा—आजके दिन अगर तुम यह काम रहने देतीं, तो कोई हर्ज था?

कुछ क्लिष्ट मुखसे स्निग्ध हँसी हँसते हुए रमाने उत्तर दिया—आजके दिन जैसा काम हो रहा है वैसा और दिन न होता। भइया जल्दी ही घर आवेंगे और उन्हें यह आम-सत्त्व बहुत अच्छा लगता है। इसी लिए मैं जल्दी कर रही हूँ। अब यह उनके आने तक बिलकुल ठीक हो जायगा।

कात्यायनीने उसके हाथसे पथरी लेते हुए कहा—तुम अन्दर चलो। मैं यह सब ठीक कर देती हूँ।

लाचार होकर रमा उठ खड़ी हुई और बोली—तो फिर आज तुम्हें देर तक पढ़ना पड़ेगा।

कात्यायनीने हँसकर कहा—अच्छा।

रमा—क्या पढ़ोगी?

का०—जो तुम कहोगी।

रमा—भागवत?

का०—अच्छा।

सब काम समाप्त करके जब कात्यायनी अन्दर गई तब उसने देखा कि रमाने एक अच्छा सा आसन बिछाकर उसपर एक बड़ी पुस्तक रख दी है। यह देखकर कात्यायनीने कहा—यह तो बिलकुल शुकदेवजीका आसन जान पड़ता है और वह हँसती हुई रमाके पास जा बैठी तथा पुस्तक खींचकर हाथमें लेने लगी। लेकिन रमाने उसे बीचमें ही रोककर कहा—हैं, यह क्या करती हो। तुम आसन-पर मत बैठो। पुस्तकको ही उसपर रहने दो। यह बात तो है ही नहीं कि अगर कोई शुकदेव न हो, तो शुकपक्षी हो जाय।

कात्यायनीने जोरसे हँसते हुए कहा—तुम हमारे वैशम्पायनको अधिकार नहीं देती हो, इसीसे तो मुझे गुस्सा आता है। ग्यारहवाँ स्कन्ध है? अच्छा बतलाओ क्या पढ़ूँ?

रमाने कुछ सोचकर कहा—दूसरा अध्याय।

का०—'गोविन्दभुज-गुप्तायां द्वारवत्यां' से शुरू करूँ?

रमा०—हाँ। ठहरो, जरा बहनजीको भी बुला दूँ।

परन्तु कात्यायनीको पुस्तक बन्द करते हुए देखकर रमाने लाचार होकर कहा—अच्छा रहने दो। नहीं बुलाती। अब तुम शुरू करो।

कात्यायनीने पुस्तक पढ़ना आरम्भ किया। क्रमशः नव योगीन्द्र-संवादका यह प्रश्न आ उपस्थित हुआ कि भागवत धर्म क्या है। रमाने इस प्रसंगके श्लोकोंका अर्थ और भी अच्छी तरह स्पष्ट करके समझानेका आग्रह किया। कात्यायनीने हँसकर कहा—भला, मुझसे इसकी अपेक्षा और अच्छी तरहसे समझाया जायगा? भला शुक पक्षीमें शक्ति ही कितनी होती है? यदि तुम होतीं तो अलबत्ता इन सब श्लोकोंके ठीक ठीक अर्थका उद्धार हो सकता था।

रमा—क्यों व्यर्थ बातें बना रही हो! मैं और कुछ थोड़े कहती हूँ। खाली यही कहती हूँ कि जरा अच्छी तरह मन लगाकर कहो।

कात्यायनी 'अच्छा,' कहकर पढ़ती हुई आगे बढ़ी।—

यानास्थाय नरो राजन्न प्रमाद्येत कर्हिचित्।
धावन्निमील्य वा नेत्रे नस्खलेन्नपतेदिह॥

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात्।
करोति यद्यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत्॥

* * * *

एवंव्रत स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः ।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मत्तवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥
खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन् ।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किंचभूतं प्रणमेदनन्यः ॥
भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैषत्रिक एक कालः ।
प्रसद्यमानस्य यथाश्नतस्तु तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासं ॥

कात्यायनीने यथाशक्ति श्रीधर स्वामीकी टीका और जीव गोस्वामीकी क्रमसन्दर्भ टिप्पणीका अभिप्राय भाषामें समझानेका प्रयत्न करना आरम्भ किया। (क्योंकि उस समय तक इन सबका भाषानुवाद दुर्लभ ही था।) किन्तु रमाकी ओर देखकर उसे धीरे धीरे लज्जा आने लगी। कारण यह था कि कात्यायनीने मन ही मन यह बात अच्छी तरह समझ ली थी कि यद्यपि रमामें मेरे समान विद्या नहीं है, लेकिन फिर भी उसमें इन सब बातोंके समझनेकी जितनी अधिक शक्ति है उसके एक अंशका अनुभव करना भी मेरे सामर्थ्यके बाहर है।

कात्यायनीका स्वर क्रमशः निस्तेज पड़ गया। यह देखकर रमा सहसा मानो किसी तन्मयतासे जागरित होकर बोली—हैं, तुम रुक क्यों गई?

कात्यायनीने फिर भगवद्भक्तका क्रमपर्याय पढ़ना आरम्भ किया।

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥
ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु वा ।
प्रेममैत्रिकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥
अर्च्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते ।
नतद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ॥

इससे आगे कात्यायनीसे पढ़ा नहीं गया। विधुकी माँने दरवाजेके पास आकर पुकारा—बीबीजी, चलिए, घर चलिए।

कात्यायनीने विस्मित होकर उसकी ओर देखा। रमाने भी चकित होकर देखते हुए पूछा—क्यों, क्या है?

विधुकी माँ बोली—चलिए भी तो। कुछ काम है।

कात्यायनी सोचने लगी कि घरपर मेरी ऐसी कौनसी जरूरत आ पड़ी! मेरा घर तो बिलकुल शून्य और श्मशानके समान हो रहा है! उसके हृदयमें एक प्रकारकी पीड़ा सी उत्पन्न हुई। रमाने पूछा—क्या महेन्द्र बाबू आए हैं?

मजदूरनीको रमाके इस प्रश्नका उत्तर देनेमें कुछ संकोच सा हुआ। दोनोंने समझ लिया कि अवश्य ही महेन्द्र आया है। उसके सिवा और कौन आनेवाला है?

कात्यायनीके हृदयने इस प्रयोजनसे सहसा एक आन्दोलनका अनुभव किया, परन्तु वह स्वयं ही यह न समझ सकी कि यह आन्दोलन काहेका है। उसने रमाकी ओर देखकर कहा—आज तो ज्यादा पढ़ना नहीं हो सका।

रमा—बहुत हो गया। अब तुम घर जाओ।

रमाके शान्त और सुन्दर मुखकी ओर थोड़ी देर तक देखनेके उपरान्त कात्यायनी वहाँसे चली गई।

सत्रहवाँ परिच्छेद।

कात्यायनीको देखकर महेन्द्र कुछ कुंठित भावसे उठ बैठा। दरवाजा खुला हुआ था; परन्तु फिर भी महेन्द्र घरके भीतर विश्राम न करके तुलसीके चौरेकी छायामें लेटा हुआ था। कात्यायनीने कुछ व्यथित होकर कहा—यहाँ इस धूपमें क्यों लेटे हो? अन्दर क्यों नहीं चले गए?

महेन्द्रने कुछ मलिन हास्यपूर्वक उत्तर दिया—चलो, चलता हूँ।

यह कहकर महेन्द्र ओसारेमें चला गया और काठकी एक चौकीपर बैठ गया। कात्यायनी कुछ घबराई हुई जल्दीसे अन्दर चली गई और एक लोटा जल, अँगोछा और एक पंखा लाकर उसके सामने रखती हुई बोली—भला, इतनी धूपमें क्यों आए? उठो, चलो हाथ मुँह धो लो।

थकावटके कारण महेन्द्रकी आँखें बन्द हुई जा रही थीं। उसने उसी अवस्थामें उत्तर दिया—पानी बरस जानेके कारण जमीन ठंढी हो गई है, इसीसे कोई कष्ट नहीं हुआ। मैं तुमसे एक बातकी भिक्षा माँगनेके लिए आया हूँ।

कात्यायनीने उसे बीचमें ही रोककर कहा—बातें पीछे करना। चलो, पहले हाथ मुँह धो लो।

महेन्द्रने आँखें मसलते हुए हँसकर कहा—नहीं, कोई ऐसी जरूरत नहीं है। तुम घबराओ मत। जरा सुस्ताकर उठूँगा, तब हाथ मुँह धो लूँगा। मैंने तो विधुकी माँको मना किया था कि व्यर्थ तुम्हें कष्ट न दे। पर उसने माना ही नहीं और जाकर तुम्हें बुला लाई।

का०—तो फिर इसमें हर्ज ही कौनसा हो गया! उठो, तुम पहले हाथ मुँह धो लो। बातें फिर करना।

महे०—नहीं, पहले बात हो लेने दो। अच्छा, पहले यह बतलाओ कि क्या सचमुच ही कोई हर्ज नहीं हुआ?

कात्यायनीका मन उत्तप्त हो गया। वह सोचने लगी कि वहाँ कैसे पवित्र स्निग्ध और उच्च भावोंकी कथावार्त्ता हो रही थी! उस स्निग्धतासे निकलकर इस विरक्तिके धूएँमें मैं कहाँसे आ फँसी! क्या यह कोई हर्ज नहीं हुआ? अवश्य ही हर्ज हुआ। महेन्द्र प्रायः इसी तरह कात्यायनीको अपमानित किया करता था और उसका यह अपमान कात्यायनीके लिए धीरे धीरे कष्टदायक होने लग गया था। महेन्द्र उसके मुँहकी ओर देख रहा था, इससे कात्यायनीने कुछ रुष्ट भावसे उत्तर दिया—हाँ, हर्ज क्यों नहीं हुआ? पहले यह बतलाओ कि तुम क्या भिक्षा चाहते हो?

महे०—बतलाता हूँ; लेकिन अब मैं सोचता हूँ कि यह असंगत इच्छा करके मैंने अच्छा काम नहीं किया।

का०—जब कर ही चुके हो, तब फिर और उपाय ही क्या है!

महे०—नहीं कात्यायनी, अब भी उसका संशोधन हो सकता है। मैं उस लड़कीको यहाँसे लौटा ले जाऊँ, यही अच्छा है। और अगर मैं उसे आश्रय न दे सका, तो फिर उसके भाग्यमें जो कुछ बदा है वह होगा।

कात्यायनीने कुछ विस्मित भावसे कहा—किसे आश्रय न दे सकोगे और लौटा ले जाओगे? किसे लाए हो? वह कहाँ है?

महे०—जाओ देखो, माँवाली कोठरीके एक कोनेमें पड़ी है। शायद वह थक कर सो गई है।

कात्यायनी जल्दी जल्दी कोठरीके अन्दर गई। वहाँ उसने देखा कि सचमुच एक कौनेमें एक छोटीसी लड़की चुपचाप सोई हुई है। पास जाकर देखा कि वृन्तच्युत फूलके समान एक बालिका है। वह बालिका थी तो सोई हुई, पर उस समय भी उसके मुखपर वेदनाकी छाया स्पष्ट दिखाई दे रही थी। वह सोचने लगी कि महेन्द्र क्या इसीको आश्रय देनेके लिए कह रहा था? क्या ऐसी बालिका भी संसारमें इस प्रकार निराश्रय हो सकती है? कात्यायनीने बाहर आकर इतने कोमल स्वरसे जिसमें उस बालिकाकी नींद न टूट जाय कहा—यह लड़की कौन है? तुम्हें कहाँ मिल गई?

महे०—सोदपुरमें ही। यह अपनी ही जातिकी लड़की है। मेरी बहन है।

का०—तो फिर निराश्रय क्यों कहते हो?

महे०—मेरी बहन होनेके कारण क्या वह संसारमें निराश्रय नहीं है?

का०—खैर, अब यह बतलाओ कि इसे यहाँ क्या करनेके लिए लाए हो? मेरे पास रखनेके लिए?

महे०—हाँ लाया तो यही सोचकर था। लेकिन अब—

का०—तो फिर 'लेकिन अब' क्या? मैं यहाँ अकेली रहती हूँ। इसलिए यदि मेरे लिए यह एक अवलम्बन ले आए हो, तो क्या इसे फिर छीन ले जाओगे? इतना भी न दे सकोगे?

महे०—न तो तुम अकेली हो और न निरवलम्ब हो। मैं उसे तुम्हारे लिए तो लाया नहीं हूँ। लाया इसलिए हूँ कि मेरे पास उसे रखनेका और कोई स्थान नहीं है। आज अगर माँ जीती होतीं तो—

का०—माँ न होनेपर भी उनका मकान तो है, उनकी लड़की तो है। क्या इस जगहसे अब तुम्हारा इतना साधारण सम्पर्क या इसपर तुम्हारा इतना अधिकार भी नहीं हो सकता महेन्द्र?

महे०—हो सकता यदि—अच्छा, मैं इसे तुम्हारे ही पास रख सकता हूँ; लेकिन तुम्हें मुझे एक वचन देना होगा।

का०—वह क्या?

महे०—क्या तुम बिना और किसीकी सहायता लिये, केवल अपने ऊपर निर्भर रह कर, इसका सारा दायित्व अपने ऊपर ले सकती हो? याद रक्खो, इसके लिए तुम्हें जमींदारके यहाँकी किसी प्रकारकी सहायता न लेनी होगी! बोलो, इसके लिए तैयार हो?

कात्यायनीने कुछ विरक्त-भावसे उत्तर दिया—कैसी पागलोंकीसी बातें करते हो? भला एक लड़कीको अपने यहाँ रखनेके लिए जमींदारकी सहायता लेनेकी क्या आवश्यकता पड़ेगी? मेरे यहाँ क्या किस बातकी कमी है? लेकिन अगर वे लोग अपना कर्तव्य समझकर मेरे यहाँ अपनी एक मजदूरनी रखते हैं या बीच बीचमें मेरी खोज खबर ले लेते हैं, तो उसमें मैं बाधा देने क्यों जाऊँ?

महे०—नहीं, मैं तुमसे यह नहीं कहता कि तुम इस बातमें बाधा दो। लेकिन यदि तुम कमलाको अपने पास रखना चाहती हो, तो तुम्हें इस बातका वचन देना होगा कि मेरे इस निजी काममें उनका किसी प्रकारका अनुग्रहका हाथ न पड़े। यदि इस लड़कीके कारण तुम्हें किसी प्रकारकी अड़चन हो, तो तुम मुझे बुलाकर मेरी चीज मुझे ही वापस कर देना। बस यही एक मेरी शर्त है। बतलाओ तुम्हें मंजूर है? और नहीं, तो कह दो, मैं इसे अपने साथ ही वापस ले जाऊँ।

का०—अपने साथ कहाँ ले जाओगे?

महे०—सड़कों और पगडंडियोंपर, जहाँ मेरा निवास है।

कात्यायनी पहले तो कुछ देर तक सोचती रही, फिर सहसा कुछ हास्योज्ज्वल मुखसे महेन्द्रकी ओर देखती हुई बोली—महेन्द्र, यह तो बड़ी अच्छी बात है। तुम कहते हो कि लड़की अपनी ही जातिकी है। वंश और कुल भी अवश्य ही अच्छा होगा। इतना सौन्दर्य भी सर्वत्र प्राप्त नहीं है। लेकिन साथ ले जानेसे पहले जो कुछ करनेकी आवश्यकता होती है, उसका अधिकार मुझे क्यों न दे दो?

महेन्द्र उठकर खड़ा हो गया। कात्यायनीके कोमल स्वरके उत्तरमें उसने कठोर स्वरसे कहा—समय जा रहा है, मैं और अधिक नहीं ठहर सकता। उसे उठा दो।

का०—तुम जो उसे जगानेके लिए कहते हो, सो इसका यही मतलब है न कि मेरे इतने बड़े खाली मकानमें तुम्हारे लिए जरा सी जगह नहीं है और तुम उसे लेकर चले जाओ?

महे०—अच्छा, तो फिर मैं ही उसे जगाता हूँ।

का०—कैसी पागलपनकी बातें करते हो! देखो, कह रही हूँ, लौट आओ, उसे मत जगाओ। पहले तुम्हारे साथ मेरा झगड़ा निबट जाय—फिर अगर कहोगे, तो मैं ही उसे जगा दूँगी।

महेन्द्र चकित होकर पीछे लौट पड़ा। कात्यायनीके उस सादर विनोदसे उसने बालकोंकी तरह दोनों हाथोंसे अपना मुँह छिपा लिया था। कात्यायनी भी अपनी बातका मतलब समझकर आप ही कुछ झेंपकर हँसी और तब उसने दृढतापूर्वक कहा—नहीं, अब उसे वापस ले जानेकी जरूरत नहीं है। तुम जो कुछ कहते हो वही होगा, उसके लिए मुझे जमींदारके किसी प्रकारके सम्पर्ककी आवश्यकता न होगी। यदि आवश्यकता होगी भी, तो भी मैं तुमसे कहे देती हूँ कि मैं उनसे किसी

प्रकारकी सहायता न दूँगी । तुम निश्चिन्त रहो और चलकर हाथ मुँह धोओ ।

महेन्द्रने उसी प्रकार अपना मुँह ढके हुए कहा—नहीं, मैं पहले जमींदारकी नौकरी छोड़ आऊँ, तब आकर और कुछ करूँगा । लेकिन जब मैं उनकी नौकरी छोड़ दूँगा, तब तुम मुझे अपने घरमें तो आने दोगी? मैं अब उनके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रखूँगा ।

कात्यायनीने विस्मित होकर पूछा—क्या तुम उनके साथ सम्बन्ध छोड़ दोगे?

महे०—हाँ, छोड़ दूँगा । लेकिन मैंने जो पूछा है, पहले उसका उत्तर दो ।

का०—तुम जो चाहे सो करो । केवल इस लड़कीको मेरे पास रहने दो ।

महे०—लेकिन सुनो—

का०—जान पड़ता है कि बेचारी लड़की बहुत भूखी है, इसी लिए इस तरह पड़ी है । तुम जाओ और मैं भी अपना काम देखूँ ।

इतना कहकर कात्यायनी अन्दर कोठरीमें चली गई और अगत्या महेन्द्र धीरे धीरे बाहर निकल गया ।

अन्दर जाकर कात्यायनीने देखा कि लड़की जाग रही है । उसे देखते ही कमला उठ बैठी और विस्मित तथा म्लान दृष्टिसे उसकी ओर देखने लगी । कात्यायनी उसके पास जा बैठी और कोमल स्वरमें उससे पूछने लगी—तुम्हारा नाम कमला है?

कमलाने केवल आँखें नीची कर लीं, कोई उत्तर नहीं दिया । कात्यायनीने फिर कहा—अच्छा चलो, तुम हाथ मुँह धो लो । तुम्हारा मुँह सूख रहा है । चलो, कुछ खा लो ।

कमला चुपचाप उठकर कात्यायनीके पीछे चल पड़ी और जो कुछ कात्यायनी कहती गई वही करती गई; मुँहसे कुछ न बोली। पर जब कात्यायनीने उसके आगे भोजन रखा, तब वह सहसा रो पड़ी। परन्तु साथ ही साथ वह अपने आँसू भी इतनी धीरताके साथ रोकने लगी कि कात्यायनी चकित हो गई। कात्यायनीको यह समझनेमें देर न लगी कि यह अपने किसी आत्मीयको स्मरण करके ही रो पड़ी है। लेकिन फिर भी वह मुँहसे कुछ न बोली और न कात्यायनी ही उसे किसी प्रकारकी सान्त्वना दे सकी। कात्यायनी मन ही मन केवल यह सोचने लगी कि अगर मैं इसे रमाके सपुर्द कर सकती, तो मेरे पास रहनेकी अपेक्षा उसके पास यह बहुत अच्छी तरह रहती। लेकिन यह बात तो किसी तरह हो ही नहीं सकती। यदि ऐसा होगा, तो महेन्द्र इसे तुरन्त छीन ले जायगा।

कुछ देर बाद कमलाने धीरेसे पूछा—भइया कहाँ हैं?

एक तो फूलके समान उसकी सुन्दर आकृति देखकर ही कात्यायनीका उसपर स्नेह हो गया था, दूसरे अब उसका स्वर सुनकर उसपर उसका प्रेम और भी बढ़ गया। उसने कहा—महेन्द्र तुम्हारे भइया हैं? तुम डरो मत, मेरे पास रहना।

लड़कीने कोई उत्तर नहीं दिया। कात्यायनीने समझा कि अभी कुछ और कहनेकी आवश्यकता है; पर कठिनता तो यह थी कि शब्दोंमें स्नेह प्रकट करनेका कात्यायनीको अभ्यास ही न था।

धीरे धीरे एक पहर रात बीत गई और सारे गाँवमें गम्भीर निस्तब्धता छा गई। कात्यायनीने कमलाको अच्छी तरह खिला पिला दिया था और उसके साथ थोड़ीसी बातचीत करके उसे अपने पास ही सुला

लिया था। रमाकी मजदूरनी एक कौनेमें पड़ी हुई खर्राटे ले रही थी और विधुकी माँ कात्यायनीके पास ही बैठी हुई ऊँघ रही थी—वह आज घर नहीं गई थी। महेन्द्र उस समयका गया हुआ अभी तक लौटकर नहीं आया था। कात्यायनी प्रतीक्षा कर रही थी और सोच रही थी कि वह आजाय तो भोजन कर ले।

इतनेमें किवाड़के खटखटानेकी आवाज आई। विधुकी माँने चैतन्य होकर किवाड़ खोल दिये और तब वह बिलकुल निश्चिन्त होकर दरवाजेके एक ओर अपना आँचल बिछाकर सो गई। कात्यायनीने महेन्द्रसे पूछा—भोजन करोगे?

महे०—हाँ।

का०—तो फिर आकर बैठ जाओ, तैयार है।

भोजनपर बैठकर महेन्द्रने पूछा—कमला क्या कर रही है?

का०—सो रही है।

महे०—तुमसे कुछ बात चीत हुई थी?

का०—नहीं, कुछ भी नहीं। जान पड़ता है कि बेचारी बहुत ही दुखी है। क्या इस बेचारीका कोई नहीं है?

महे०—माँ है। उस बेचारीसे इस विषयमें कोई बात मत करना, नहीं तो शायद बहुत दुखी होगी। उससे उसका परिचय भी मत पूछना।

का०—इतनी अक्ल मुझे है। मुझे भी उसके बारेमें विशेष बातें जाननेकी अवश्यकता नहीं है। जो बात कहनेकी जरूरत हो, वही कहो।

महे०—वही कहता हूँ। इसके बहुतसे शत्रु हैं, इसी लिए मैंने इसे तुम्हारे पास छिपाकर रखा है। जब तक मैं कोई सुयोग्य पात्र ढूँढ़कर इसका ब्याह न कर दूँ, तब तक यह तुम्हारे पास रहेगी।

का०—क्या तुम अब फिर सोदपुर ही जाओगे ?

महे०—नहीं।

कात्यायनीने कुछ देर तक इधर उधर करके पूछा—क्या सचमुच ही तुम जमींदारसे सम्बन्ध छोड़ देते हो ?

महेन्द्रने हाथमें कौर लिये हुए सिर उठाकर कहा—हाँ, यदि छोड़े देता हूँ, तो तुम इसके विषयमें क्या कहना चाहती हो ?

का०—यही कि अच्छा नहीं करते हो।

महे०—अच्छा नहीं करता हूँ ? और सोदपुरमें जो वारदात हो गई, वह क्या बहुत अच्छी हुई है ? क्या उससे उन लोगोंकी कुछ भी हानि नहीं हुई है ? इसी लिए क्या तुम लोगोंका इतना साहस हो गया है ? क्या तुम लोगोंको इतना भी विश्वास नहीं है कि मैं एक मनुष्य हूँ ?

कात्यायनीने विस्मित और शंकित होकर पूछा—सोदपुरमें क्या हुआ है, मैंने तो कुछ भी नहीं सुना। एक दिन रमासे केवल यही सुना था कि जमींदार बहुत घबराए हुए वहाँ गए हैं। पर ऐसा तो नहीं जान पड़ा कि वहाँ उससे उनकी कोई हानि हुई है!

महेन्द्रने कुछ देर तक चुप रहनेके उपरान्त कहा—तब तो फिर मैं उनके लिए च्यूँटीसे भी गया बीता ठहरा। तभी न उन्होंने मुझे फिरसे बुलाकर इतना बड़ा पद दिया! अच्छी बात है। इतना कहकर महेन्द्र सिर नीचा करके भोजन करने लगा।

कात्यायनीने कुछ देर तक चुप रहकर कहा—तुम्हें कौनसा पद मिला है ?

महे०—उनके सबसे बड़े इलाकेका कुल अधिकार। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि वे यह बात बिलकुल नहीं समझते कि च्यूँटीके दाँतोंमें भी विष होता है।

का०—तुम तो उनका काम छोड़नेके लिए कहते थे न? फिर छोड़ा क्यों नहीं?

महे०—छोड़नेका उपाय ही कहाँ है कात्यायनी! भाग्यसूत्रका सम्बन्ध बहुत ही निकटवर्ती है। खैर, इन सब बातोंको जाने दो। देखो, लड़कीको तुम सदा अपने पास ही रखना और उसे कहीं इधर उधर मत ले जाना।

का०—मैं जाती ही कहाँ हूँ?

महे०—क्या तुम कहीं नहीं जातीं? और रमा भी तुम्हारे पास नहीं आती?

का०—मैं आज ही उनके यहाँ गई थी। पर इससे पहले कभी नहीं गई! हाँ, यह जरूर है कि रमा किसी किसी दिन यहाँ आ जाती है।

महे०—जो हो। लेकिन सुनो, मैं तुम्हें एक बात बतलाता हूँ। जब तुम इस लड़कीके अभाग्यका सारा हाल सुनोगी तब समझोगी कि मेरे कहनेका क्या मतलब है। एक बातका सदा ध्यान रखना। नौगाँ-वका जमींदार इसका बड़ा भारी शत्रु है।

का०—शत्रु? भला इस बेचारी लड़कीको लेकर वह क्या करेगा?

महे०—वह सभी तरहसे इस लड़कीका सर्वनाश कर सकता है। उसके हाथसे बचानेके लिए ही मैंने यह व्यवस्था की है। नहीं तो कमला, एक भले और अच्छे घरकी लड़की है।

भोजनके उपरान्त महेन्द्रने उठकर हाथ मुँह धोया। कात्यायनीने कहा—बाहरवाली कोठरीमें बिछौना बिछा है। मैं विधुकी माँको बुलाती हूँ—

महे०—नहीं, मुझे जमींदारके यहाँ ही जाना होगा, जरूरत है।

का०—तुमने क्या यह नया पद ग्रहण कर लिया?

महे०—क्यों कात्यायनी, तुम मेरे कामोंकी इतनी खोज खबर क्यों रखती हो?

का०—मैं तो कहती हूँ कि यदि तुमने यह पद ग्रहण कर लिया हो, तो भी छोड़ दो। तुमने जो कुछ कहा था वही ठीक है। अब तुम उनका काम मत करो।

महेन्द्र पहले तो कुछ देर तक टक लगाए कात्यायनीकी ओर देखता रहा और फिर बोला—क्या तुम यह बात इसी डरसे कह रही हो कि कहीं पीछे इस च्यूँटीके काटनेसे उनकी कोई हानि न हो? नहीं तो थोड़ी देर पहले ही तुम कह रही थीं कि अगर मैं उनकी नौकरी छोड़ता हूँ, तो अच्छा नहीं करता हूँ। जब मेरे भले या बुरेसे तुम्हारा कुछ बनता बिगड़ता नहीं है, तब तुम्हारा उपदेश भी तो मेरे किसी काम नहीं आवेगा।

इतना कहकर महेन्द्र वहाँसे चलने लगा। यह देखकर कात्यायनीने घबराकर पुकारा—सुनो महेन्द्र, जरा मेरी बात सुन जाओ।

महे०—नहीं, नहीं। बल्कि अब तुम समझ लो कि मैं उनका काम अवश्य लूँगा।

महे०—सुनो, तुम्हारा दायित्व—

महे०—जिस दिन यह लड़की तुम्हें भारस्वरूप जान पड़े, उस दिन तुम मुझे खबर दे देना। मैं इसका कोई और प्रबन्ध कर दूँगा।

इतना कहकर महेन्द्र वहाँसे अन्तर्धान हो गया। एक अव्यक्त शब्द करके कात्यायनी वहीं बैठ गई। उसे इतना भी होश न रहा कि विधुकी माँको बुलाकर उससे दरवाजा बन्द करनेके लिए कह दे।

अठारहवाँ परिच्छेद ।

कमलाको पाकर कात्यायनीके मनमें अज्ञातरूपसे यह आशा जागरित हो उठी थी कि एक बालिकाको अपने अवलम्बनस्वरूप पाकर मेरे निःसङ्ग जीवनके दिन कुछ अच्छी तरह बीतेंगे । इसी लिए महेन्द्रकी अति अद्भुत प्रतिज्ञा, लड़कीका अपरिचय और सबसे बढ़कर उसके कारण आनेवाली विपत्तिका आभास आदिमेंसे कोई भी बात कात्यायनीको नहीं डरा सकी । जब कात्यायनीको यह मालूम हुआ कि महेन्द्र मेरे साथ रखनेके लिए एक लड़की ले आया है, तब फिर उसे विघ्न बाधाओंकी ओर ध्यान देनेका अवसर ही नहीं मिला । बातचीतमें महेन्द्रने कई तरहकी अशान्त करनेवाली चुटकियाँ ली थीं और उन चुटकियोंके कारण कुछ देरके लिए वह अस्थिर और विचलित भी हो गई थी; लेकिन फिर भी उस लड़कीको अपने पास रखनेके सम्बन्धमें उसके मनमें जरा भी दुबिधा उत्पन्न नहीं हुई थी । कात्यायनीकी बातका मतलब समझे बिना महेन्द्र कह भी गया था कि यदि यह लड़की भारस्वरूप जान पड़े, तो मुझे खबर देना, मैं आकर तुम्हें इसके भारसे मुक्त कर दूँगा । इसलिए कमलाके सम्बन्धमें कात्यायनीके लिए सोचनेकी या चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं थी । इसके सिवाय कात्यायनी उस विषयमें वैसा कुछ सोचती भी न थी । वह केवल यह सोचती थी कि अच्छी तरह दिन कटना तो दूर रहा, उलटे दिनपर दिन और खराबी होती जा रही है ।

अब तक कभी कात्यायनीको इस बातकी चिन्ता नहीं हुई थी कि मेरे दिन किस प्रकार बीतेंगे; पर अब धीरे धीरे उसे इस बातकी चिन्ता होने लगी थी । उसकी अवस्था उन्नीस वर्षकी हो गई थी; पर

इधर दो वर्षोंसे उसे जितना अधिक कष्ट हो रहा था उतना पहले और कभी नहीं हुआ था। वह बिलकुल अनाथ होकर संसारके पथपर चली जा रही थी। परन्तु फिर भी उसने अपने हृदयकी तेजस्विता नहीं खोई थी और न उसने दीनताके साथ अपना सिर ही किसीके सामने झुकाया था। यद्यपि वह प्रायः कहा करती थी और कभी कभी अपने मनमें भी सोचनेका प्रयत्न किया करती थी कि मैं रमाकी सहायताके बलपर ही निश्चिन्त हूँ; पर वास्तवमें ऐसा नहीं था। अन्दरसे उसकी प्रकृति बिलकुल आत्मनिर्भर थी। अपने लिए भी क्या कोई चिन्ता करनेकी बात हो सकती है? मनुष्यका जीवन और समय नदीके स्रोतकी भाँति अविश्राम बहता चलता है। जिस प्रकार वह किसीका मुखापेक्षी नहीं है, उसी प्रकार मनुष्यके लिए भी किसीके मुखापेक्षी होनेकी आवश्यकता नहीं है। अब तक तो उसका यही विश्वास था; पर इधर कुछ दिनोंसे वह टूटता जा रहा था। अपनी गतिके लिए मुक्त मार्ग न पानेके कारण नदीके स्रोतकी जो अवस्था होती है, वही अवस्था मनुष्यकी जीवन-धाराकी भी हो सकती है। उसमें भी उसी प्रकार व्यतिक्रम हो सकता है। बहता हुआ काल-स्रोत उसके दिनों और रातोंको यद्यपि बहाये लिये चला जाता था; परन्तु फिर भी वह नहीं चलनेमें ही शामिल था। जान पड़ता है कि रमाका कहना ही ठीक है। वह कहती थी कि रक्त-माँसके हाथोंसे जकड़ रखनेके लिए मनुष्यको कुछ एक चाहिए! अब तक कात्यायनी जिसे मनुष्यत्वका चरम और परम विकास समझती थी, वह मानो उसके सिवा और कोई नई चीज थी।

यद्यपि वह कमलाको बहुत स्नेह और यत्नके साथ रखती थी, पर फिर भी रह रह कर उसके मनमें यही आता था कि यदि यह रमाके

पास रहती, तो यहाँ रहनेकी अपेक्षा बहुत अच्छी तरह रहती। अब उसे अपनेमें सदा किसी बातका अभाव सा जान पड़ता था। कमला जिस समय चुपचाप मुँह छिपाकर रोया करती थी, उस समय वह अपने घरके लोगोंके विरहमें कातर होकर बाल्य-प्रकृतिके कारण ही रोती थी। कात्यायनी उसे सान्त्वना देना जानती ही नहीं थी। वह चुपचाप उसके सामनेसे हट जाती थी। साथ ही वह सोचती थी कि यदि इस समय मेरे स्थानपर रमा होती, तो वह अवश्य ही इसके सिवा और कुछ करती। यद्यपि इतने दिनोंमें वह कभी जमींदारके यहाँ नहीं गई थी, पर फिर भी वह बीच बीचमें रमाके साथ मन्दिरमें दर्शन करनेके लिए जाया करती थी। पर जबसे कमला आई थी, तबसे उसने उसे अकेली समझकर मन्दिरमें जाना भी छोड़ दिया था। पहले वह सन्ध्यासमय कभी कभी क्षण भरके लिए मुक्त प्रकृतिकी शोभा देख लिया करती थी; पर इतने दिनों तक उसे यह नहीं जान पड़ा था कि प्रकृतिका यह दर्शन कितना और कैसा होता था। हाँ, अब उसे उसका महत्त्व और अभाव जान पड़ता था।

रमा यथानियम कात्यायनीके पास आया करती थी; परन्तु उसके आनेसे अब कात्यायनीका चित्त उतना नहीं भरता था। यद्यपि वह रमाके साथ किसी प्रकारके आन्तरिक संयोगका अनुभव नहीं करती थी; पर फिर भी पहले पत्थरके बने देवता और मन्दिरमें वह रमाके साथ रहकर जैसे सुखका अनुभव करती थी, अब स्वयं अपनी कोठरी या आँगनमें उसके आनेपर वह उस सुखका अनुभव नहीं कर पाती थी। संसारका यह क्रमशः परिवर्तन कात्यायनीके लिए विस्मयजनक होनेपर भी इसके कारणका अनुसन्धान करनेमें उसका मन बराबर लगा हुआ था। यह परिवर्तन संसारका है या स्वयँ मेरा? किसीका भी हो,

पर अब वह इस प्रकार अपने दिन नहीं बिता सकती। वह नित्य दिनमें कई बार अपने मनमें यह सोचा करती थी कि मुझमें यह दुर्बलता कहाँसे आ गई और इसके कारण उसे लज्जा भी आती थी; पर फिर भी इस चिन्ताके हाथसे उसका निस्तार नहीं होता था। रमा बीचबीचमें उसके यहाँ आया करती थी और उसे मन्दिर ले जाना चाहती थी; पर कात्यायनीकी अनिच्छा देखकर वह उससे कभी अनुरोध नहीं करती थी। यद्यपि कमलाके विषयमें रमाको कोई विशेष बात मालूम नहीं हुई थी; पर फिर भी वह मन ही मन समझ गई थी कि यह लड़की ही कात्यायनीके इस बन्धनका मुख्य कारण है।

अब कात्यायनीको रमा बुलाया नहीं करती थी; पर कात्यायनीका हृदय उसकी बुलाहट सुननेके लिए अस्थिर रहा करता था। मानो वह मन ही मन यह चाहती थी कि कोई मुझे जबरदस्ती खीचकर कहीं ले जाय। वह यह भी चाहती थी कि कोई जबरदस्ती मेरे जीवनमेंसे कर्तव्य, प्रतिज्ञा, सत्य आदि बड़ी बड़ी बातोंको अस्पष्ट कर दे। रमा सरीखी सरल और सुन्दर बालिकाके ऐसे ही स्नेह दया और मोहके प्रकाशमें मेरे दिन इसी प्रकार हँसते रोते बीत जायँ। जिस समय उसे दिन रात सशस्त्र रहना पड़ा था, जिस समय उस पितृवत्सल कन्याने अपने पिताकी आन्तरिक अनिच्छा समझकर महेन्द्रके सम्बन्धमें अधिक सावधानी ग्रहण की थी और माताके विपरीत आचरण होने पर भी उसे महेन्द्रके साथ अपने आजन्म संसर्गसे उत्पन्न सहज स्नेह-स्रोतको बन्दकर देना पड़ा था, वह समय भी उसे आजकलकी अपेक्षा कहीं अच्छा जान पड़ता था। जिस दिन उसके पिताकी असंगत इच्छा उसके सामने एक दुरूह व्रतका रूप धारण करके आ खड़ी हुई थी, उस दिन भी वह क्षण भरके लिए पीछे नहीं हटी थी और न उसने अपने मनमें किसी प्रका-

रकी दुर्बलताका ही अनुभव किया था। बल्कि उन दिनोंके संघात, विक्षोभ और युद्धके कारण उसका अन्तःकरण और भी तेजस्वी तथा सबल हो गया था। आज यदि वह शान्ति दुर्लभ हो, तो वह अपने आपको इस अवसादमेंसे बचाकर उन दिनोंके संक्षोभमें भी डालना ज्यादा पसन्द करती थी।

कात्यायनी चाहती थी कि कामाख्याबाबू अब फिर आकर मुझे उसी प्रकार दिक किया करें और मेरे लिए चिन्तित होकर मेरे सामने वर्तमान और भविष्यकी बातें रखें और मेरे निस्तेज अन्तरको फिरसे बलिष्ठ बना दें। फिर मैं उस विज्ञ गृहस्थकी भविष्यत् चिन्ताका उपहास करूँ और अपने बलसे सिर ऊँचा करके खड़ी होऊँ। जिस कामको संसार सहज नहीं समझता, उसी कामके सम्बन्धमें मैं हँसती हुई और उपेक्षा दिखलाती हुई यह अनुभव करूँ कि वह काम बहुत सहज है।

लेकिन कोई भी अब उसे नये सिरेसे जगानेके लिए नहीं आता। ऐसा जान पड़ता है कि उसके लेखे जो कुछ होना था वह हो गया है—संसारने अपना कारबार उठा दिया है और दूकान बन्द कर दी है। अब वह हाथपर हाथ रखकर बैठा हुआ है, उसका कहीं हिसाब-किताब या लेखा देना बाकी नहीं है। उस अनन्तकी मानो सब बातोंका अन्त हो गया है। लेकिन क्या सचमुच यही बात है? मनुष्यका हृदय उसी संसारका एक क्षुद्र संस्करण है। वह अन्तःकरण मनुष्यको नित्य बल्कि प्रतिक्षण जगाया करता है और कहता रहता है कि अभी काम पूरा नहीं हुआ, अभी बाकी है, बहुत कुछ बाकी है। अदूरदर्शी मनुष्य एक दिनमें उसकी यह बात नहीं सुन पाता; पर हाँ जब समय बीत

जाता है, तब उसे धीरे धीरे सुनाई पड़ने लगता है और समझमें आने लगता है। उस समय सब कुछ समाप्त हो जाने पर भी वह उसकी अशेषता और अनन्तताका अनुभव करने लगता है।

इस बार जाते समय महेन्द्र कात्यायनीको बहुत कुछ विरक्त और शंकित कर गया था। कात्यायनीको यह सन्देह होने लग गया था कि महेन्द्र क्रमशः हीन विद्वेषके वशीभूत होता जा रहा है और इसी सन्देहके कारण वह महेन्द्रके सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी अनिर्दिष्ट आशंकाएँ करने लग गई थी और इसी कारणने उसके मनको महेन्द्रके सम्बन्धमें अधिक दुष्ट भाव धारण करने पर उद्यत कर दिया था। लेकिन जब प्रायः एक महीना बीत गया और महेन्द्रकी कोई खबर नहीं मिली, तब उसका वह उद्यतास्त्र मन भी मानो धीरे धीरे किसी अतलमें उतरने लगा। इससे अच्छा तो यही था कि महेन्द्र फिर उसी प्रकार आता और उसी तरहकी बातें कह कहकर फिर उसे विरक्त करता। यदि महेन्द्रपर कात्यायनीका क्रोध जागरित रहता, तो वह शायद इस समयकी अपेक्षा अधिक सबल रहती।

वह सोचती थी कि क्या कामाख्याबाबूको मेरे सम्बन्धमें इतना निश्चिन्त हो जाना उचित है? यद्यपि मैं यह कह चुकी हूँ कि मेरी रमाके द्वारा खोज खबर ले लेना ही यथेष्ट है, अधिक खोज खबर लेनेकी आवश्यकता नहीं है। लेकिन आखिर उनका भी तो कुछ कर्तव्य है! क्या महीनेमें एक बार भी—। नहीं, मेरे सम्बन्धमें उनका इतना निश्चिन्त होना कभी उचित नहीं हो सकता। क्या एक बार भी उन्हें ध्यान नहीं आता कि—। अवश्य ही कात्यायनी यह सोचकर ठीक नहीं कर सकी कि उन्हें किस बातका ध्यान आना चाहिए था। उसे बीच बीचमें यही खयाल आने लगा कि वे अन्याय कर रहे हैं।

रमा उस दिन कात्यायनीके यहाँ नहीं आई। मन्दिरमें आरतीके घंटे और शंख बजने लगे। ऐसे समय कात्यायनी अपनी कोठरीसे बाहर निकलकर आँगनमें खड़ी हो गई; मानो कोई आकर उसे पुकारेगा और यहाँसे खींचकर उन्मुक्त नदीके तटपर ले जाकर खड़ा कर देगा। रमा कहा करती है कि मेरे देवता सत्य हैं; पर क्या उसकी उस पत्थरकी मूरतमें इतनी शक्ति है कि वह आकर मुझे जबरदस्ती यहाँसे खींच ले जाय? यदि उसमें इतनी शक्ति हो, तो वह आकर मुझे खींच ले जाय, अभी खींच ले जाय। कात्यायनी मानो इसी बातकी प्रतीक्षामें आकर अपने आँगनमें खड़ी हो गई।

पीछेसे बालिकाका स्वर सुनाई पड़ा—आप नहीं जायँगी?

कात्यायनीने पीछेकी ओर मुड़कर देखा कि मेरे साथ साथ कमला भी बाहर निकल आई है। वह बोली—कमला, भला मैं कहाँ जाऊँगी?

कम०—मन्दिरमें दर्शन करनेके लिए।

का०—नहीं, आओ हम लोग यहीं तुलसीके चौरेके पास बैठें।

कम०—क्यों? मन्दिरमें दर्शन करनेके लिए ही चलो न?

आज तक कभी कमलाने कात्यायनीके साथ इस प्रकार बात नहीं की थी। आज इस तरह बातें करते देखकर कात्यायनी बहुत प्रसन्न हुई। पर उसका आग्रह उसने नहीं माना और कहा—ठाकुरजीने मुझे बुलाया तो है नहीं कमला! यदि मैं जाऊँगी, तो वे नाराज हो जायँगे। इसी लिए मैं नहीं जाती।

शायद पहले कभी कात्यायनीने इस प्रकारकी लड़कपनकी बात नहीं कही थी। पर आज कमलाके साथ मानो उसकी इसी तरहकी बातचीत करनेकी इच्छा हो रही थी। उसकी बात सुनकर कमला पहले

तो अवाक् हो गई, पर फिर कुछ देर बाद बोली—नहीं, ठाकुरजी कभी किसीपर नाराज नहीं होते। वे नाराज न होंगे, आप चलिए।

कात्यायनी इस बातका कुछ उत्तर देना ही चाहती थी कि इतनेमें सामने उसे एक प्रकाश दिखाई दिया और वह उसी ओर देखने लगी। इतनेमें रमाकी मजदूरनी हाथमें लालटेन लिये हुए वहाँ आ पहुँची और बोली—आपको बीबीजी बुला रही हैं। बहुत जरूरी काम है। आप जरा मन्दिरमें चली चलें।

कात्यायनीने समझ लिया कि अवश्य ही रमाको कोई विशेष आवश्यकता आ पड़ी है, नहीं तो वह कभी इस समय इस प्रकार मुझे न बुलवा भेजती। इधर महीने भरसे तो कमलाके विचारसे उसने उसे बुलाया भी न था। कात्यायनी उठकर खड़ी हो गई; परन्तु उसने सोचा कि बिना कमलाको अपने साथ लिये मैं कैसे जा सकती हूँ? मन्दिरसे बुलाहट आई है, यह सुनकर कमला भी तो बड़ी उत्सुकतासे देख रही है। लेकिन नहीं, मेरा जाना नहीं हो सकता। मजदूरनीने जब देखा कि कात्यायनी इधर उधर कर रही है, तब वह बोली—कमलाको भी अपने साथ लेती चलिए। एक औरत इसको देखनेके लिए आई है।

कमलाने कात्यायनीको कुछ भी सोचने या रोकनेका अवसर नहीं दिया और वह दासीके आगे आगे चलकर मकानके बाहर जा खड़ी हुई। लाचार होकर कात्यायनीको भी उसके पीछे पीछे मन्दिरकी ओर चलना पड़ा।

मन्दिरके पासकी कोठरीमें रमाके पास एक और अपरिचित स्त्री बैठी थी। उसे देखते ही कमला दौड़कर उसकी गोदमें जा छिपी। दोनोंके मुखोंकी आकृतिका सादृश्य देखकर रमा और कात्यायनीने समझ लिया

कि ये दोनों माता और कन्या हैं । ऐसा जान पड़ा कि अनेक बड़ी बड़ी विपत्तियोंके उपरान्त, पूरी निराशाके दीर्घविच्छेदके उपरान्त माताने कन्याको और कन्याने माताको पाया है । वह स्त्री आत्म-संवरण करनेका प्रयत्न कर रही थी और कन्या भी मुँहसे कुछ नहीं कह रही थी । वह केवल माताके गलेसे लिपटी हुई थी और उसकी गोदमें मुँह छिपाकर विह्वलोंकी भाँति पड़ी हुई थी । माता भी मानो कुछ कहनेकी चेष्टा कर रही थी और उसके सिरपर हाथ फेर रही थी; पर उससे साफ साफ कुछ बोला नहीं जाता था । ऐसा जान पड़ता था कि ये दोनों कुछ बातें तो करना चाहती हैं, पर सबके सामने नहीं करना चाहतीं, इसलिए रमाने कात्यायनीसे कहा—चलो, घाटपर चलें ।

कात्यायनी भी ‘ चलो ’ कहकर उठ खड़ी हुई और बाहर निकल आई । घाटके चौंतरेपर एक दीन वेषवाली स्त्री बैठी हुई थी । रमाको देखकर वह उठ खड़ी हुई और आदरपूर्वक उसने उसे प्रणाम किया । रमाने विस्मित होकर उसकी ओर देखा और मुस्कराते हुए पूछा—अरे तुम यहाँ कहाँसे आ गई ? अच्छी तरह तो हो न ?

उस स्त्रीने विनीत भावसे बहुत प्रसन्नतापूर्वक उत्तर दिया—जी हाँ, मैं उन्हींके साथ आई हूँ । मैं इस गाँवमें और किसीको तो जानती नहीं थी, केवल आपको जानती थी । सो आपके पास उन्हें पहुँचा दिया ।

रमा—तुम्हारे सब बाल बच्चे तो अच्छी तरह हैं न ?

स्त्री—जी हाँ, आपके आशीर्वादसे सब अच्छे हैं और आपकी दयासे वे लोग आपके बनवाए हुए घरमें आरामसे रहते हैं । मैं उन बहूजीके साथ नावपर आई थी । नहीं तो लड़कोंको भी साथ ले आती और आपके चरणोंमें उनसे प्रणाम कराती ।

कात्यायनीने समझ लिया कि यह औरत किसी दूसरे गाँवकी रहनेवाली है और रमाकी उपकृतोंमेंसे कोई है, इसलिए उसने उससे पूछा—क्या उनका मकान भी तुम्हारे ही गाँवमें है ?

स्त्री—जी नहीं। मैं गरीब ठहरी, गाँव गाँव घूमा करती हूँ। उनके गाँवमें भी कभी कभी चली जाया करती हूँ। वह तो अकेली ही यहाँ आ रही थीं; पर उन्हें मालूम हुआ कि यह गाँव मेरा देखा हुआ है, इसलिए वे फिर अकेली नहीं आईं, मुझे भी अपने साथ लेती आईं।

का०—उनका मकान किस गाँवमें है ?

उस स्त्रीने चारों ओर देखकर बहुत धीरेसे कहा—यह बतलानेके लिए उन्होंने मुझे मना किया है। लेकिन आपको बतला देती हूँ। वह मेरे गाँवके जमींदारके घरकी और उनकी रिश्तेदार ही हैं। ऐसा न होता तो—

रमाने कहा—रहने दो। जो बात उनकी बतलानेकी इच्छा नहीं है, वह किसीको नहीं बतलानी चाहिए।

वह स्त्री सकपकाकर चुप हो गई।

इतनेमें रमाकी मजदूरनीने आकर कहा—वह इसी समय चली जायँगी। आप लोगोंको बुला रही हैं।

रमा और कात्यायनी वहाँसे चलकर उस कोठरीके पास आईं। वहाँ पहुँचते पहुँचते उन लोगोंने सुना कि माता अपनी कन्याको सान्त्वना देती हुई कह रही है कि मैं जल्दी ही आकर तुम्हें घर ले चलूँगी। मैं खाली तुम्हें देखनेके लिए बुआको देखनेका बहाना करके यहाँ तक आई थी और इस गाँवमें मन्दिरके दर्शन करनेके बहाने उतर पड़ी थी। तुम्हारे भइयाका काम हो जाय, तो हम लोगोंका कर्तव्य भी पूरा हो

जाय । फिर उसके बाद जो कुछ भाग्यमें होगा, वह देखा जायगा । लेकिन अब तुम्हें अधिक समय तक इस प्रकार नहीं रहना पड़ेगा ।

रमा और कात्यायनीको आते देखकर कमलाको उसकी माताने अपनी गोदसे हटा दिया और खड़े होकर कहा—बेटी, जिस दिन हमारे इस दुर्भाग्यका अन्त होगा, उसी दिन मैं फिर आकर तुम लोगोंके साथ भेंट करूँगी । आज तो मुझे तुम लोगोंके साथ बातें करनेका समय ही नहीं मिला । कमलाके सम्बन्धमें अब मैं तुमसे और क्या कहूँ ? जो कुछ कहना था, वह तो महेन्द्र कह ही चुका है । अच्छा, तो अब मैं जाती हूँ बेटी !

रमा और कात्यायनीने उसे प्रणाम किया । उसने भी आदरपूर्वक उन दोनोंका सिर चूमा । इस संयत स्वभाववाली प्रभावशालिनी स्त्रीके साथ इन दोनोंकी कुछ बात करनेकी इच्छा थी, परन्तु वह ठहरी नहीं । वह ठाकुरजीको प्रणाम करके और फिर एक बार कमलाको अच्छी तरह छातीसे लगाकर शीघ्रगतिसे घाटकी ओर चली गई ।

कमला दोनों हाथोंसे अपना मुँह छिपाकर चुपचाप वहीं बैठ गई । कात्यायनी चुपचाप उसकी ओर देखती हुई खड़ी रही । रमाने आगे बढ़कर कमलाके कन्धेपर हाथ रखा और कहा—तुम्हारी माँ तो जल्दी ही आ जायँगी, फिर क्यों रो रही हो ? आओ चलो, हम लोग घाट पर चलकर उनकी नाव देखें ।

कमला आँखें पोंछकर जल्दीसे उठ खड़ी हुई । खिली हुई चाँदनीके प्रकाशमें उन तीनोंने घाटके फर्शपर खड़े होकर देखा कि एक छोटी नावपर वे दोनों सवार हैं और नाव घाट परसे खुलकर कुछ दूर चली गई है । जब धीरे धीरे नाव अस्पष्ट हो गई, तब कमला रमासे सटकर

खड़ी हो गई। रमाने भी स्नेहपूर्वक उसका हाथ पकड़कर उसे अपने और पास कर लिया और कहा—अच्छा चलो, अब हम लोग घर चलें। कल फिर तुम यहाँ मन्दिरमें आरती देखनेके लिए आना।

कमलाने कात्यायनीकी ओर देखा। कात्यायनी उस समय तुच्छ बाधा बन्धनकी बात नहीं सोच सकती थी। उसने भी कह दिया—अगर तुम्हारा जी चाहे तो आ जाना।

कमलाने प्रसन्न होकर रमासे कहा—अच्छा तो फिर आप बुला भेजिएगा।

रमा—अच्छा।

उस दिनसे नित्य सन्ध्याके समय कमला मन्दिरमें जानेके लिए इतनी उत्सुक हुआ करती थी कि कात्यायनी निष्ठुर होकर उसे रोक नहीं सकती थी। वह समझती थी कि जिस प्रकार पिताजीकी मृत्यु हो जानेके उपरान्त मुझे पानीमें पैर लटकाकार बैठना अच्छा लगता था, उसी तरह कमलाको भी घाटके फर्शपर खड़े होकर नदीकी ओर देखना अच्छा लगता है। उसे यह जान पड़ता है कि मानों अभी मेरी माँकी नाव आकर इस घाटपर लगेगी। यद्यपि कमलाको नित्य ही निराश होकर लौटना पड़ता था, तथापि कात्यायनीको यही जान पड़ता था कि रमाकी स्नेहपूर्ण बातों और प्रेमपूर्ण व्यवहारसे कमला पहलेकी अपेक्षा अधिक सुखी है। इसी लिए महेन्द्रके मना करनेका उसे कोई ध्यान न रह गया था और उसे यह भी नहीं जान पड़ता था कि इसके लिए कुछ विशेष सावधानी रखनेकी आवश्यकता है।

इसी तरह कई दिन बीत गये। एक दिन आरतीके उपरान्त कात्यायनी रमाके साथ कुछ बातें कर रही थी। सहसा उसे कमलाका

ध्यान आया। उसने देखा कि कमला वहाँ नहीं है। रमाने कहा—शायद वह घाटकी तरफ गई होगी, मैंने तो उसे आरतीके बाद देखा ही नहीं।

कात्यायनी अब तक रमाकी ठाकुर-सेवाके सम्बन्धमें एक काममें लगी हुई थी और समझती थी कि कमला भी रमाके पास ही होगी; पर रमाकी यह बात सुनकर उसके मनमें अकारण ही एक बड़ा भारी भय उत्पन्न हो गया। वह घबराकर घाटकी ओर दौड़ी हुई गई। पर वहाँ कहीं भी उसे कमला दिखाई न दी।

उसकी घबराहट देखकर रमा भी उसके पीछे पीछे चली आ रही थी। जब कमला घाटपर नहीं मिली तब रमाने कहा—जान पड़ता है कि वह मकान चली गई।

का०—अकेली चली गई? यह तो कभी हो ही नहीं सकता। लेकिन फिर भी मजदूरनीको भेजो। जाकर घरपर देख आवे।

इतना कहकर कात्यायनी वहीं बैठ गई।

थोड़ी देरमें मजदूरनीने आकर कहा—कमला घरपर नहीं है। रास्तेमें भी वह कहीं दिखाई नहीं दी।

उन्नीसवाँ परिच्छेद।

अब तो कात्यायनीको मानो काठ मार गया। वह पत्थरकी मूरतकी भाँति निस्तब्ध हो गई। वह सोचने लगी कि महेन्द्रका कहना न मानकर मैंने यह क्या किया! मैंने उसकी थातीकी रक्षा भी नहीं की, अपनी प्रतिज्ञाका भी ध्यान नहीं किया। यह सब तो जो कुछ हुआ वह हुआ ही, पर अब उस लड़कीके भाग्यमें न जाने क्या

बदा होगा। साथ ही उसे महेन्द्रकी वह बात भी आज बहुत अच्छी तरह याद आ गई कि नौगाँवका जमींदार उसका बहुत बड़ा शत्रु है। उसीके हाथसे बचानेके लिए ही महेन्द्र उसे मेरे पास रख गया था। वे लोग तो सब तरहसे कमलाका सर्वनाश कर सकते हैं। कात्यायनी सोचने लगी कि हाय मैं यह क्या कर बैठी! अब मैं महेन्द्रसे क्या कहूँगी! और कमलाकी माँ—यद्यपि चलते समय उसने मुँहसे कुछ नहीं कहा था परन्तु उसके कृतज्ञ नेत्रोंसे ही यह बात अच्छी तरह जान पड़ती थी कि वह कात्यायनीपर कितना अधिक भरोसा रखती थी!

रमाने व्याकुल होकर पूछा—तो अब बतलाओ क्या उपाय करना चाहिए?

कात्यायनीने पहले तो दो एक बार रमाके इस प्रश्नका कोई उत्तर न दिया, पर अन्तमें बहुत ही निराश भावसे कहा—उपाय है ही क्या?

रमा—तो क्या तुम अभीसे इतनी निराश हो जाओगी? मैं बाबूजीसे कहती हूँ।

कात्यायनीने रमाका हाथ दबाकर कहा—नहीं।

रमा—कात्यायनीके स्वरकी दृढ़ता देखकर रमाको बहुत ही आश्चर्य हुआ। क्यों, इसमें क्या हर्ज है? अगर मैं उनसे न कहूँगी तो इसका और क्या उपाय होगा?

का०—इसी लिए तो मैं कहती हूँ कि कोई उपाय नहीं है।

रमा—यह नहीं हो सकता। जब तक बाबूजीसे न कहा जायगा, तब तक इसका पता कैसे लगेगा?

का०—जिस समय मैंने कमलाको अपने पास रखा था, उस समय मुझसे यह प्रतिज्ञा करा ली गई थी कि मैं उसके सम्बन्धमें तुम लोगोंसे किसी प्रकारकी सहायता न लूँगी।

रमा—तुमसे यह प्रतिज्ञा किसने कराई थी?

का०—महेन्द्रने, जिसने उसे मेरे पास रक्खा था।

पहले तो रमा अवाक् हो गई, फिर बोली—तो क्या वह इतनी कठोर प्रतिज्ञा है कि ऐसी विपत्तिके समय भी कोई उपाय न किया जाय?

का०—हाँ, प्रायः ऐसी ही है। महेन्द्रने मुझे पहले ही बतला दिया था कि कमलापर बहुत बड़ी बड़ी आफतें आनेवाली हैं, और तब उसने उसे मेरे पास रखा था।

रमा—तो फिर तुमने आखिर किस बूतेपर इतना साहस किया था?

का०—जो हो, पर साहस तो मैं कर ही बैठी थी।

रमाका आश्चर्य धीरे धीरे और भी बढ़ने लगा। वह बोली—वह घाटकी तरफ गई थी। यदि वहीं कहीं पानीमें—

का०—नहीं, यह बात नहीं है। अवश्य ही उसके शत्रु उसे चुरा ले गये हैं।

रमा—उसके शत्रु कौन हैं?

का०—नौगाँवके जमींदार। वे लोग कमलाका सर्वनाश कर सकते हैं।

रमा—तुम बतला सकती हो कि वे लोग क्यों उसके इतने अधिक शत्रु हो गये हैं?

का०—महेन्द्रने इसका कारण मुझे नहीं बतलाया था और मैंने भी उससे कुछ नहीं पूछा था।

रमा—अच्छा, अब इन सब बातोंको जाने दो। पर यह बतलाओ कि क्या तुम सचमुच ही इस तरह चुप बैठ रहोगी? यह जानकर भी कि उस लड़कीका सर्वनाश हो सकता है, क्या हम लोगोंको इस प्रकार चुपचाप बैठ रहना चाहिए?

कात्यायनीने तीव्र व्यंग्यके स्वरमें कहा—क्यों ? तुम्हारे पत्थरके गोविन्ददेव हाथ पैर बाहर निकालकर कोई उपाय करेंगे !

कात्यायनीकी इस बातसे रमाको आघात सा लगा, वह निस्तब्ध हो गई और देखते देखते उसकी आँखोंमें जल भर आया। कात्यायनी भी कुछ व्यथित हुई थी और कुछ कहना ही चाहती थी, पर रमाने बीचमें ही रोककर दासीसे कहा—देखो, कहीं कन्हई दिखाई देता है।

दासी उठकर चली गई। कात्यायनीने सोचते सोचते कहा—पता लगाकर मुझे यह बतलाओ कि आजकल महेन्द्र कहाँ रहता है और उसके पास भेजनेके लिए एक आदमी ठीक कर दो। मैं एक पत्र लिखकर उसके हाथ महेन्द्रके पास भेज दूँगी। बस, मुझे तो यही एक उपाय दिखाई देता है।

रमा केवल 'अच्छा' कहकर उठ खड़ी हुई और कन्हईकी प्रतीक्षामें मन्दिरके द्वारकी ओर देख कर आगे बढ़ी। कन्हई सन्ध्यासे ही बंसी हाथमें लेकर मछली पकड़नेकी फिक्रमें घाटपर बैठा था। वह प्रायः नित्य ही अपनी माँको (रमाको) देखनेकी आशासे इसी तरह मन्दिरके घाटपर मछली पकड़नेके लिए बैठा करता था। अब सन्ध्याकी आरती हो चुकनेके उपरान्त वह मन्दिरकी नाट्यशालामें एक ओर लेटा हुआ था और पड़ा पड़ा मजेमें गा रहा था—

"बिन काज आज महाराज लाज गई मेरी।
दुख हरो द्वारकानाथ शरण मैं तेरी॥"

निर्जन नाट्यमन्दिरकी निस्तब्धतामें उस बालकका वह करुण मीठा स्वर गूँज रहा था। भक्तका अभिमान मानो मूर्त्त रूप धारण करके उसके एक एक शब्दसे फूटा पड़ता था। रमा चुपचाप खड़ी हुई क्षण

भर तक उसका वह गाना सुनती रही। कात्यायनीने भी उसमें बाधा नहीं दी। अन्तमें रमाने पुकारा—कन्हई!

कन्हई चट "जी" कहकर उठ खड़ा हुआ। निरंजनकी चिकित्सासे उसका पैर बिलकुल अच्छा हो गया था। उसके पास आते ही रमाने कहा—कन्हई, वह जो तुम्हारे मामाके गाँवकी औरत तुम्हारे साथ आया करती थी न—

कन्ह०—जी हाँ, वही जिसका घर जल गया था और आपने बनवा दिया था? उससे क्या काम है?

रमा—तुम उसके पास जाकर कहो कि वह जिन बहूजीको उस दिन लेकर हमारे यहाँ आई थी, उनके पास चली जाय और उनसे पूछे कि उन्हें अपनी लड़कीका कुछ हाल मालूम है कि नहीं। यह बात बस उसीसे कहना और कोई न जानने पावे।

कन्ह०—जी, कौवे चिड़िया तकको भी न मालूम होने पावेगी। तो फिर अब मैं जाऊँ?

रमा—लेकिन बड़ी अँधेरी रात है। तुम अकेले दो तीन कोस जा सकोगे?

कन्ह०—इससे क्या हुआ? अमावास्याकी रात भी हो, तो इस रास्तेमें कोई डरकी बात नहीं है। अभी थोड़ी देरमें चन्द्रमा निकल आवेगा, तब फिर मुझे कोई न पा सकेगा।

रमा—तो फिर अच्छी बात है। तुम जाओ और अपने साथ एक लालटेन ले जाओ।

कन्ह०—जी नहीं, और किसी चीजकी जरूरत नहीं होगी। मैं कल सवेरा होते होते यहाँ आकर आपको सब खबर दूँगा।

रमाने कुछ दुखी होकर कहा—नहीं। तुम्हारी उस मासीको भी तो खबर लानेके लिए दूसरे गाँव जाना होगा। इसलिए अगर तुम कल सन्ध्या तक भी आ जाओगे, तो ठीक है।

कन्हई इस बातसे भी निरुत्साह नहीं हुआ और बोला—तो फिर मैं कल तीसरे पहर तो जरूर ही आ जाऊँगा। आप बिलकुल निश्चिन्त रहें।

रमा—लेकिन देखो इस बातका ध्यान रखना कि तुम्हारी मासी उन बहूजीके सिवा और किसीसे यह बात न कहे।

कन्ह०—जी, आप बिलकुल निश्चिन्त रहें। किसीको भी इसकी खबर न होगी। अच्छा, तो अब मैं जाता हूँ।

इतना कहकर कन्हईने झुककर रमाको प्रणाम किया और तब उसी जगहसे जरासी मिट्टी उठाकर माथे और जीभपर लगा ली। रमाने उसे आशीर्वाद दिया—जयी होकर लौट आओ।

कन्हईके चले जानेपर कात्यायनी बोली—भला कमलाकी माँको उसका हाल कहाँसे मालूम होगा?

रमा—मैं तो समझती हूँ कि शायद उनको कुछ हाल जरूर मालूम होगा। उस दिन कन्हईकी मौसीने कहा था—तुमने भी तो सुना था—कि वह नौगाँवके जमींदारकी रिश्तेदार हैं। मेरा तो अन्दाज यही है कि वह वहीं नौगाँवके जमींदारके यहाँ ही रहती हैं। तुम बाबूजीसे तो कहने दोगी ही नहीं। इसलिए देखती हूँ, शायद इसी तरह कोई उपाय निकल आवे। तुम घर जाकर महेन्द्रके नामकी चिट्ठी लिख रखो। मैं दीवानजीसे कहकर महेन्द्रके पास भेजनेके लिए अभी आदमी ठीक कर देती हूँ।

का०—परन्तु देखो, इस बातका ध्यान रहे कि किसीको कुछ मालूम न हो सके। तुम अपनी मजदूरनीको भी अच्छी तरह समझा दो। मेरे पास वह बहुत छिपाकर रखी गई थी। मैं यह नहीं चाहती कि यह बात चार आदमियोंमें फैले और तुम्हारे बाबूजीके कानों तक जाय।

रमा—अच्छी बात है। ऐसा ही होगा।

कात्यायनीने बड़ी अशान्तिसे वह रात और दूसरा दिन बिताया। रमा यद्यपि दिन भर उसके पास नहीं आई, तथापि कात्यायनी यह बात अच्छी तरह जानती थी कि वह निश्चिन्त नहीं बैठी होगी। सन्ध्याके समय कात्यायनी अनमनी होकर अपनी कोठरीके एक कोनेमें बैठी थी। सहसा उसने चौंककर देखा कि रमा आकर मेरे पास ही खड़ी है। ज्यों ही कात्यायनीने उसकी ओर देखा, त्यों ही उसने एक कागज कात्यायनीके हाथमें दिया। कात्यायनीने पढ़ा—उसमें लिखा था—

"बेटी! मैंने आप ही अपना सर्वनाश किया है। अगर उस दिन मैं कमलाको देखनेके लोभमें न पड़ती, तो कभी किसीको यह मालूम भी न होता कि वह कहाँ है। वे लोग कमलाको मेरे ही पास ले आये हैं; परन्तु आज रातको वे उसे बलि दे देंगे। होगा तो उसका विवाह, पर जो विवाह होगा उसे मैं बलिके सिवा और कुछ नहीं कह सकती। मुझमें उसकी रक्षा करनेकी शक्ति नहीं है। और तुम्हीं लोग क्या कर लोगी? पर हाँ, यदि महेन्द्रको भेज सको तो सम्भव है कि यह असाध्य कार्य भी सिद्ध हो जाय और कमला बच जाय। नौगाँवके जमींदारके मकानके पिछवाड़े जो आमका बाग है, उसके उत्तर ओर मैं एक पहर रात तक महेन्द्रका आसरा देखूँगी। उसे चहारदीवारी लाँघकर अन्दर आना होगा। मैं प्रकट रूपमें इसका कुछ भी उपाय न कर सकूँगी, क्योंकि ये लोग यह भी मंजूर न करेंगे कि हम कमलाको ले आये हैं। और फिर इस बड़ी हवेलीमें बहुतसी औरतोंके बीचमें उसे कोई पहचान भी न सकेगा। यहाँ तो चोरोंके साथ चोरी करनेसे ही काम चल सकता है। नहीं तो आज रातको यह विवाह रोकनेका और कोई उपाय नहीं है। और जब यह विवाह हो जायगा, तब फिर और कुछ भी

न हो सकेगा। यदि आज किसी प्रकार कमलाका यह विवाह रोका जा सके, तो उसकी रक्षा हो सकती है। समय बहुत ही कम है। लेकिन फिर भी जब तुमने यहाँ तक पता लगाया है, तो मुझे यह भी आशा होती है कि शायद भगवान् तुम्हारे द्वारा ही कमलाको बचा लें। मैं महेन्द्रके आसरे हूँ। इति।

—कमलाकी माँ।

कात्यायनीने श्रान्त स्वरसे पूछा—क्या इतनी जल्दी कन्हई आ गया?

रमा—बेचारा अधमरा हो गया है। ऐसा हाँफ रहा है कि उसके मुँहसे बात भी नहीं निकलती।

का०—लेकिन यह सारा परिश्रम व्यर्थ ही हुआ न?

रमा—क्यों, व्यर्थ क्यों हुआ? मेरी समझमें सार्थक ही हुआ।

का०—उन्होंने महेन्द्रको भेजनेके लिए लिखा है, पर महेन्द्र है कहाँ?

रमा—लेकिन अगर महेन्द्रका पता नहीं है तो क्या हम लोग यों ही चुपचाप बैठे रहेंगे? मैंने भइयाको सब बातें समझा दी हैं और वहाँ भेजनेके लिए उन्हें अपने साथ ले आई हूँ।

कात्यायनीने चौंककर कहा—क्या तुम उन्हें बुला भी लाईं? नहीं नहीं रमा, यह नहीं हो सकता। मैं कभी—

रमा—क्यों, हो क्यों नहीं सकेगा? जो काम महेन्द्रसे होता, वही भइया कर लेंगे। भइयाको यह भार देनेमें तुम्हें क्यों संकोच हो रहा है? भइया जरा यहाँ आओ, सुनो। तुम्हें यह काम देनेके लिए यह राजी नहीं हो रही हैं।

निरंजन आकर दरवाजेके पास सिर झुकाकर खड़ा हो गया और कोमल स्वरसे बोला—रमा, अगर ज्यादा देर हो जायगी, तो मैं वहाँ

समयपर नहीं पहुँच सकूँगा । पत्रमें जिस प्रकार समय और स्थान निश्चित कर दिया गया है उससे जान पड़ता है कि यह काम कुछ बहुत मुश्किल नहीं होगा । इनसे कह दो कि किसी बातका डर न करें ।

कात्यायनीकी समझमें ही नहीं आता था कि इस युवकसे मैं लज्जा करूँ या इसके सामने सहज भावसे बातचीत करूँ । उसने मन ही मन इन लोगोंके साथ जो सम्बन्ध स्थापित कर रखा है, वह इन लोगोंसे छुपा नहीं है; यह बात मानों आज इन लोगोंके सामने कात्यायनीके मनमें क्षण भरके लिए सर्वथा विसदृश—एक असङ्गत प्रलाप जान पड़ी और लज्जाने उसे अभिभूत कर डाला । ठीक उसी समय निरंजनने बालकके समान सरल अकुंठित दृष्टिसे कात्यायनीके मुखकी ओर देखते हुए कहा—आप किसी बातका जरा भी भय न करें । आप मुझे आज्ञा दे दें, मैं चला जाऊँ ।

यद्यपि निरंजनने स्पष्ट रूपसे कात्यायनीको किसी प्रकारका सम्बो-धन नहीं किया था, पर फिर भी उसकी दृष्टि और आकृतिसे ऐसी स्निग्ध श्रद्धाका भाव प्रकट होता था कि अब कात्यायनी उसके सामने किसी प्रकारका संकोच नहीं कर सकी । उसके सामने लज्जा करनेकी उसने कोई आवश्यकता नहीं समझी । रमा और निरंजन दोनोंकी ओर देखते हुए उसने कहा—मुझे यही खयाल आ रहा है कि महेन्द्रने मुझे मना कर दिया था ।

निरंजनने उत्तर दिया—रमाने यह बात भी मुझसे कही है । परन्तु यदि बाबूजीको यह बात न बतलानी हो, तो फिर इसके सिवा तो अब मुझे और कोई उपाय नहीं दिखाई देता । और यदि बाबूजीको खबर देनेमें महेन्द्रबाबूको किसी प्रकारकी आपत्ति हो, तो कमसे कम मेरे

जाननेमें तो उन्हें किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं हो सकती। मैं उनका मित्र और भाई हूँ। उनका यह कर्तव्य मैं अनायास ही और जबरदस्ती अपने सिर ले सकता हूँ। आप मुझे रोककर व्यर्थ देर न करें। यद्यपि यह काम कुछ जटिल है, तो भी जब कमलाकी माँ इसका अनुमोदन कर रही है, तब फिर और कोई द्विधा नहीं रह सकती। मैं केवल आपकी अनुमतिकी ही प्रतीक्षा कर रहा हूँ। ज्यादा देर करनेसे सारा काम बिगड़ जायगा। मैं समझता हूँ कि नौगाँव यहाँसे पाँच छः कोस है।

का०—कैसे जाओगे? घोड़ेपर?

नि०—हाँ। माँ, आप मुझे आज्ञा दे दें और मैं चला जाऊँ।

निरंजनका यह बालकोंकासा सरल और स्निग्ध व्यवहार देखकर कात्यायनी आपत्ति न कर सकी। उसने सिर हिलाकर कहा—अच्छा जाओ।

निरंजनने तुरन्त चौखटके पास सिर झुकाकर कात्यायनीको प्रणाम किया और देखते देखते वह आँखोंसे ओझल हो गया।

उसके जानेके थोड़ी देर बाद कात्यायनीने कहा—मेरी समझमें तो यह काम अच्छा नहीं हुआ।

रमा—गोविन्ददेवने मुझसे जो कुछ कराया वही मैंने किया। अब यह काम अच्छा हुआ या बुरा, यह मैं नहीं जानती। चलो, मन्दिरमें चलोगी?

का०—नहीं, मैं नहीं जाऊँगी। तुम जाओ। देखो घोड़ेकी टाप सुनाई पड़ती है, कोई आ रहा है।

रमा—मालूम होता है कि भइया ही कुछ पूछनेके लिए लौटकर आये हैं।

का०—नहीं, यह महेन्द्र आ रहा है। अब तुम अन्दर कोठरीमें चली जाओ।

रमा आड़में हो गई और उसके साथ ही कात्यायनी उसी जगह प्रायः बैठ गई। किसी बड़ी भारी आशंकाने उसे विकट रूपसे घेर लिया। इतनेमें महेन्द्रने उसके पास आकर घबराहटसे पूछा—कुछ खबर मिली?

कात्यायनीने चुपचाप कमलाकी माताका पत्र महेन्द्रके हाथमें दे दिया। उसे पढ़कर महेन्द्रने कहा—तुम घबराओ नहीं। मैं अभी जाता हूँ। लेकिन घोड़ा बदलना होगा। तुम्हें माळूम है, निरंजन यहीं है?

का०—अभी तो यहीं था। अभी तुम्हारे आनेसे कुछ ही पहले मैंने ही उसे—

महे०—तुमने ही—यह क्या किया? क्या उसे कमलाका उद्धार करनेके लिए भेजा है कात्यायनी?

का०—हाँ।

महेन्द्र कुछ देरतक चुप रहकर एकाएक जोरसे चिल्ला उठा—क्या तुम मुझपर इतना भी निर्भर नहीं रह सकती थीं कि अपना बोझ मैं आप ही उठाता; अपनी विपत्तिसे मैं आप ही मुक्त हो सकता? यहाँ भी मुझे जमींदारकी ही सहायता लेनी पड़ेगी? इसी लिए तुमने उनके लड़केको भेजा है?

कात्यायनी बिलकुल चुप थी। महेन्द्रने फिर उसी प्रकार जोरसे कहा—देखो, इसका सारा दायित्व तुम्हींपर है।

इतना कहकर महेन्द्र वहाँसे जल्दीसे चला गया। रमाको यह नहीं माळूम हुआ कि इस बीचमें कितना समय बीत गया। थोड़ी देरमें उसने अनुभव किया कि कात्यायनी मुझे हिलाती और पुकारती है—रमा, रमा!

रमाने जोरसे ठंढी साँस लेकर कहा—गोविन्द ! कहो क्या कहती हो ?

का०—अब तुम जल्दीसे अपने बाबूजीको बुलवाओ।

रमाने कुछ विस्मित भावसे देखते हुए कहा—यह क्यों ? महेन्द्रबाबू तो चले गये ।

का०—इसी लिए तो उन्हें सूचित करनेकी और भी अधिक आवश्यकता है ।

रमा—नहीं नहीं । इससे तो शायद उन्हें और भी कष्ट होगा और वे अधिक नाराज हो जायँगे ।

कात्यायनीने कठोर स्वरसे उत्तर दिया–नहीं, ये सब बातें तुम्हारे बाबूजीको बतला देना बहुत ही आवश्यक है ।

कात्यायनीके कठोरभावपूर्ण मुखकी ओर देखकर रमा चौंक पड़ी । वह बोली—नहीं नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए। अभी उन्हें अवश्य कुछ क्रोध आया है, पर वह जाते जाते रास्तेमें ही दूर हो जायगा। भइया उनके मित्र हैं। उनपर वे क्रोध न कर सकेंगे। अब दोनों आदमी वहाँ पहुँच जायँगे, यह और भी अच्छा होगा। दोनों मिलकर बहुत अच्छी तरह सब काम कर लेंगे। जब पिताजीको इस बातकी खबर देनेमें उन्हें इतनी आपत्ति है, तब फिर उन्हें यह बात बतलाना ठीक न होगा। केवल भइयाने ही जाना है--यह अच्छा हुआ। भइयाके साथ उनकी मित्रता है ।

का०—नहीं रमा, मैं महेन्द्रपर इस प्रकारका विश्वास रखकर निश्चिन्त नहीं रह सकती । तुम अभी उन्हें खबर दो । और यदि तुमसे न हो सके, तो मुझसे कहो, मैं ही तुम्हारी मजदूरनी से कह दूँ ।

कात्यायनीकी दृढ़प्रतिज्ञ मुखश्रीको रमा बहुत अच्छी तरह पहचानती थी। इसलिए वह कुछ देर तक चुप रहकर बोली--खैर ऐसा ही सही। जो कुछ गोविन्ददेव करावेंगे, वही तो करना होगा। अच्छा, अब मैं मन्दिर जाती हूँ। आरतीका समय हो रहा है। उन्हें बुलानेके लिए भेज देती हूँ।

बीसवाँ परिच्छेद।

अभी तक चन्द्रमा नहीं निकला था। नौगाँवके जमींदारका पुराना विशाल प्रासाद अन्धेरेमें दैत्यके समान खड़ा था। पीछेकी ओर कमलाकी माँकी बतलाई हुई वही चहारदीवारी और आमका बाग था और उस चहरदीवारीके बाहर चारों ओर खाईकी तरह एक गहरा गड्ढा था जो अब कुछ कुछ मिट्टीसे भर चला था। उसे देखनेसे ऐसा जान पड़ता था कि प्राचीन कालमें जमींदार लोग आपसमें एक दूसरेके आक्रमणसे रक्षित रहनेके लिए इसी प्रकार गढ़के ढँगके प्रासाद बनाया करते थे और इसका मुख्य कारण यह था कि अपने प्रान्तके डाकुओंके सरदार यही जमींदार लोग हुआ करते थे। यद्यपि अब उन लोगोंका वह पुराना प्रताप नहीं रह गया था, तथापि दुर्बलोंपर अत्याचार करनेका उनका जो पुराना अभ्यास था वह अभी तक नहीं छूटा था।

प्रायः एक प्रहर रात बीत गई थी। उद्यानकी पूर्वीय सीमापर धीरे धीरे चन्द्रोदय हो रहा था। ऐसे समयमें प्रासादके एक छोटे दरवाजेसे कमलाकी माँ उसे प्रायः खींचती हुई उत्तरी सीमा तक ले आई और वहाँ उसे खड़ा कर दिया। उसने हताश भावसे कहा—कहाँ, अभी तक तो महेन्द्र दिखाई नहीं दिया। अब तो आसरा नहीं देखा जाता।

कमलाने श्रान्त स्वरसे कहा—तुम मुझे यहाँ क्यों ले आई ? जब वे लोग मुझे वहाँ न देखेंगे, तब चारों ओर ढूँढ़ने लगेंगे और शायद तुमपर कुछ दोष भी लगावेंगे। चलो माँ, अन्दर चलें।

महा०—नहीं बेटी, अब अधिक समय नहीं है, इसी लिए मैं तुम्हें यहाँ ले आई हूँ। मेरी ओर किसीका ध्यान नहीं है। मैं तो सन्ध्यासे ही बागमें बैठी हूँ। चलो कमला, देखो, अगर हम लोग ही यहाँसे निकलनेका कोई उपाय कर सकें, तो अच्छा हो।

कमलाने कोमल स्वरसे कहा—माँ, तुम क्यों इतनी उतावली हो रही हो और यह असाध्य चेष्टा करना चाहती हो ? मुझे वे लोग कुछ मार तो डालेंगे ही नहीं। जब उन लोगोंके हाथसे निस्तार पानेका कोई उपाय ही नहीं है, तब क्यों इतना दुखी होती हो ? चलो, लौट चलें। अगर यहाँ आकर कोई तुमसे दो बातें कहेगा, तो मुझसे वह नहीं सहा जायगा।

माता अधीर होकर कन्याका हाथ पकड़े उसे खींचती हुई चहारदीवारीकी ओर ले चली और बोली—जबसे वे लोग तुम्हें यहाँ ले आये हैं, तभीसे मैं यहाँकी सब जगहें अच्छी तरह देख रही हूँ। देखो इधरकी चहारदीवारी कहीं कहींसे टूटी हुई है। अगर यहींसे कोई रास्ता निकल आवे, तो—

कन्याने बहुत ही कातर भावसे माताको रोकते हुए कहा—माँ चलो, लौट चलो। देखो, कहीं कोई आ न जाय और तुमसे कुछ कह न बैठे। माँ—

महा०—अरी बेटी, आज तेरे दादाजी जीते होते तो क्या मजाल थी कि कोई हम लोगोंकी तरफ आँख उठाकर भी देख सकता! हम लोगोंको उन्होंने त्याग दिया था, इतने दिन वह भी एक तरहसे अच्छा

था; परन्तु तुझको यह क्या विष दे गये कि जिसके लिए ये लोभी मुझ दु:खिनीके जीवन-धनको ही नष्ट करनेका षड्यन्त्र रच रहे हैं। हे भगवान्, किसी तरह यह ब्याह रोक दो। बस मैं तुमसे और कुछ नहीं चाहती। मैं अपनी लड़की और दामादको लेकर किसी पेड़के नीचे रहकर ही अपने दिन बिता दूँगी। मुझे जन्मसे ही इस बातकी बहुत साध है कि कोई पराया लड़का ही आकर मेरा हो जाय——।

कम०——माँ, चुप रहो, चुप रहो। देखो, काहेका शब्द होता है। चलो, हम लोग अन्दर चलें।

महामायाको भी पास ही कुछ शब्द होता हुआ सुनाई दिया। वह लड़कीको अपने पास खींचकर और चुपचाप साँस रोककर खड़ी हो रही। थोड़ी ही देर बाद उसके सामने एक युवक आ खड़ा हुआ। माता और कन्याको उस अवस्थामें देखकर उसने कोमल स्वरसे कहा——आप डरें नहीं। कात्यायनी देवीको आपने ही पत्र भेजा था न?

अब मानो महामाया देवीकी जानमें जान आने लगी। वह बोली——हाँ, लेकिन तुम महेन्द्र तो नहीं हो!

नि०——जी नहीं। लेकिन मुझे कात्यायनी देवीने ही भेजा है।

महा०——महेन्द्र क्यों नहीं आया?

नि०——वे वहाँ नहीं थे। उनके पास खबर भेजी गई है। मुझे इसी लिए उन्होंने भेज दिया है कि शायद वे किसी कारण यहाँ समयपर न पहुँच सकें।

महा०——भइया तुम कौन हो? मैं तो तुमको नहीं पहचानती। मेरी यह ब्याहने लायक लड़की है और यह रातका समय है। तुम एक अपरिचित युवक हो। मैं तुम्हारे हाथमें अपनी लड़की कैसे सौंप दूँ? हे भगवान्, यह तुमने क्या किया!

निरंजनने सिर उठाकर माता ओर कन्याकी ओर देखा। वे दोनों भी उसीकी ओर देख रही थीं। चन्द्रमाकी नई निकली हुई चाँदनी चारों ओरसे आ आकर उद्यानमें यथेष्ट प्रकाश फैला रही थी। उसी चाँदनीकी छटामें महामाया देवीने देखा कि उदार और कमनीय मुख-श्रीवाला और स्कंदके समान सुन्दर एक युवक मेरे सामने खड़ा है। महामायाने अभी जो बात कही थी उसके कारण उसे लज्जित होना चाहिए था; क्योंकि देवश्रीसे युक्त महिममय मूर्तिके अधिकारीसे ऐसी बात शायद अन्धेके सिवा और कोई नहीं कह सकता। महामाया मन ही मन सोचने लगी कि युवक अपने जीमें क्या सोचता होगा! सम्भव है कि यह अपना अपमान समझकर अभी यहाँसे चला जाय। लेकिन यह देखकर महामायाको बहुत आश्चर्य हुआ कि उसने यह कुछ भी नहीं किया। वह कुछ देर तक वधूवेषमें लाल वस्त्र पहने हुई किशोरी कमलाके अमल सुन्दर किन्तु भयचकित मुखकी ओर उस नवोदित चाँदनीमें कुछ देर तक देखता रहा और तब उसने सिर झुकाकर कुछ चिन्तित भावसे कहा—आपका यह कहना भी ठीक है। तो क्या आप कुछ देर तक महेन्द्रबाबूकी प्रतीक्षा कर सकेंगी? उनके पास भी तो खबर गई है। शायद वे भी अभी आ जायँ। मैं प्राचीरके बाहर जाकर उन्हें देखूँ?

महा०—लेकिन बेटा, इतना समय कहाँ है? शायद उन लोगोंको अब तक खबर ही लग गई हो। अगर वे लोग आ जायँगे, तो फिर कोई उपाय ही न रह जायगा।

नि०—तो कहिए, मैं क्या करूँ?

महा०—बेटा, मेरी तो कुछ समझमें ही नहीं आता कि अब क्या करना चाहिए। अब इसके सिवा और कोई भी रास्ता नहीं है। महेन्द्र

मेरा धर्मका लड़का है। मैं तो बहुत दिनोंसे उसीके सपुर्द यह लड़की करके बिलकुल निश्चिन्त थी——

कुछ दूरी पर फिर किसीके पैरोंकी आहट सुनाई दी। कमलाने चौंककर कहा——माँ!

महामाया देवी भी त्रस्तस्वरसे बोली——अब तो देरी नहीं कर सकती। नहीं तो यह सारा किया कराया व्यर्थ हो जायगा। क्या मेरी कमलाकी रक्षाका उपाय बतलाकर भी भगवानने उसे इस प्रकार वंचित कर दिया? हाय अब मैं क्या करूँ?

निरंजनने भी व्यथित और त्रस्त स्वरसे कहा——जी नहीं, ऐसा नहीं करने दिया जायगा। आप मुझे आज्ञा दें, मैं आपकी कन्याको ले जाऊँ।

महा०——मुझे तो अब एक ही रास्ता दिखाई देता है। कात्यायनीने तुम्हें भेजा है और महेन्द्र भी उसका आत्मीय ही है। तो तुम क्या ब्राह्मणके लड़के हो?

नि०——जी हाँ।

महा०——और शायद हमारी ही श्रेणीके हो। खैर, चाहे हमारी श्रेणीके हो और चाहे न हो, उससे भी मेरा कुछ वैसा बनता बिगड़ता नहीं है। पहले बेटा, तुम यह बतलाओ कि क्या तुम मेरी लड़कीके साथ विवाह कर सकते हो? यदि यह कर सकते हो तो हम लोगोंके जीवनकी रक्षा हो सकती है।

निरंजन स्तब्ध हो गया। वह सोचने लगा कि यह कैसी विकट समस्या सामने आ उपस्थित हुई! यदि मैं मँजूर कर लूँ, तो पिताजी क्या कहेंगे! यह अप्सराके समान अपूर्व सुन्दरी बालिका मानो दुर्वासाके शापसे दुर्दशामें पडी है और घटनासूत्रसे उद्धारके लिए मेरे ही

सामने आ खड़ी हुई है। यद्यपि मैं यह नहीं जानता हूँ कि ये कौन हैं। पर फिर भी रंग ढंगसे और आकृति प्रकृतिसे ये उच्च ब्राह्मण कुलकी ही जान पड़ती हैं; परन्तु फिर भी बिना पिताजीकी अनुमतिके मैं यह बात कैसे मँजूर कर सकता हूँ ? मैं क्यों कात्यायनीसे इस कामका भार अपने ऊपर ले आया ? यह तो बड़ी विकट समस्या आ उपस्थित हुई।

महामायाने कहा—जान पड़ता है, समय हो गया। शायद वे लोग अभी घरमें जायँगे, वह शँखका ही शब्द तो है। कहो, जल्दी कहो—नहीं तो—

अब निरंजनने एक पल भी व्यर्थ खोना उचित न समझा और तुरन्त दोनों हाथोंसे कमलाको उठा लिया और जल्दीसे कहा—यदि मेरे माता-पिताने आज्ञा दे दी, तो फिर आप अपनी कन्याके सम्बन्धमें जो कुछ कहेंगी वही होगा। और यदि उन्होंने मंजूर न किया, तो फिर मैं महेन्द्रका मित्र हूँ, इसलिए आपका लड़का ही हूँ और कमला मेरी भी बहन है। धर्म साक्षी है, भगवान् साक्षी है।

निरंजनने चहारदीवारीकी ओर तेजीसे दौड़ते हुए सुना कि महामाया देवी कह रही है—मैंने कमलाको तुम्हारे ही हाथों समर्पण कर दिया। धर्म इसका साक्षी है।

एक स्थानपर पहुँचकर निरंजनने सुभीता देखकर चहारदीवारी पार करना चाहा और वहीं जमीनपर कमलाको उतारकर जल्दीसे कहा—तुम लज्जा मत करो और जरा साहससे काम लो। मैं महेन्द्रका मित्र हूँ। यह कहकर उसने अपने दुपट्टेसे कमलाकी कमर कसकर बाँध दी और उसके दोनों हाथोंमें उसका मध्यभाग अच्छी तरह पकड़ा दिया और दूसरा सिरा अपने पैरोंमें बाँधकर कमलाको चहारदीवारीसे बिलकुल सटाकार खड़ा कर दिया। इसके बाद वह दीवारकी ईंटोंके बीच बीचमें

अपने पैरोंकी उँगलियाँ फँसाता हुआ चहारदीवारीके ऊपर जा खड़ा हुआ और कमलासे बोला—देखो, खूब होशियार हो जाओ और दोनों हाथोंसे कसकर दुपट्टा पकड़ लो। मैं तुम्हें ऊपर खींच लेता हूँ।

जब कमलाका चित्त कुछ ठिकाने हुआ और वह चारों ओर देखने लगी तब उसे मालूम हुआ कि मैं चहारदीवारीसे बाहर निकल आई हूँ और घोड़ेकी पीठपर अच्छी तरह बैठी हुई हूँ। वह सिखाया हुआ ऊँचा घोड़ा ठीक चहारदीवारीसे सटकर खड़ा हुआ था। निरंजन पहले आप उस घोड़ेकी पीठपर सीधा उतरकर बैठ गया था और तब उसने अपने पीछे कमलाको उतारकर बैठा लिया था। अब घोड़ा प्राचीर-मूलके उस उच्च स्थानसे खाईमें उतरा और दूसरी ओर पहुँचकर फिर धीरे धीरे ऊपरकी ओर चढ़ने लगा। इतनेमें ही किसीने बगलमेंसे आकर घोड़ेकी बाग पकड़ ली। उज्ज्वल चाँदनीमें निरंजनने देखा कि महेन्द्र है। वह मारे आनन्दके चिल्ला उठा—धन्य ईश्वर! लो महेन्द्रबाबू आ गये! महेन्द्रबाबू आपका घोड़ा कहाँ है? देर मत कीजिए, चलिए, जल्दी कीजिए।

महेन्द्रने जोरसे घोड़ेकी बाग पकड़कर उसे रोकते हुए कहा—या तो तुम घोड़ेपरसे उतर पड़ो और या कमलाको उतार दो। निरंजन उसके भावसे और कथनसे घबड़ाकर बोला—नहीं, अब देर करनेका काम नहीं है। नहीं तो सब काम बिगड़ जायगा। चलिए, बाहर निकल चलिए। यहाँ उतरना ठीक नहीं है।

महे०—तुम कमलाको घोड़ेपरसे उतार दो! तुम किसकी आज्ञासे मेरे सब कामोंमें हाथ डालते हो और सभी बातोंमें अपना अधिकार जमाने आते हो? क्यों तुम लोग मेरे हर एक काममें आ पड़ते हो? उतारो—

निरंजन अब तक घोड़ेकी लगाम पकड़े हुए था और कमलाको भी सँभाले हुए था। पर महेन्द्रकी इस प्रकारकी विलक्षण बातें सुनकर और उसका यह क्रुद्ध भाव देखकर उसके दोनों हाथ शिथिल पड़ गए। उसने रुँधे हुए स्वरसे कहा—महेन्द्र बाबू, आप यह क्या कह रहे हैं? आप जानते नहीं कि—

महे०—नहीं, मैं कुछ भी नहीं जानना चाहता।

इतना कहकर महेन्द्रने निरंजनके शिथिल बाहुओंमेंसे कमलाको जोरसे पकड़कर खींच लिया और घोड़ेपरसे उतार लिया।

इसी बीचमें निरंजनने सुना कि बागके अन्दरसे अभीतक जो दो तीन आदमियोंके जोर जोरसे बोलनेका शब्द आ रहा था, वह रुक गया है। फिर उसने देखा कि वही दो तीन आदमी चहारदीवारीपरसे बाहरकी ओर उतरनेका प्रयत्न कर रहे हैं। निरंजनने घबराकर कहा—महेन्द्रबाबू, आप यह क्या कर रहे हैं? बेचारियोंका सर्वनाश कर रहे हैं! लाइए, उसे जल्दी घोड़ेपर चढ़ा दीजिए।

महे०—चलो हटो। तुम यहाँसे चले जाओ। सभीको सर्वनाशसे बचानेका तुम्हें क्या अधिकार है?

नि०—क्या आप एकाएक पागल हो गये हैं? यह अधिकार तो मनुष्य मात्रको है और जब कि मैं आपका मित्र हूँ तब तो मुझे और भी अधिक अधिकार है। जो मेरी माताकी जगह हैं, उन्होंने ही मुझे यह कामका भार दिया है।

महे०—उनसे जाकर कह दो कि मेरे कामका भार दूसरोंको देनेका उन्हें कोई अधिकार नहीं है। कौन मेरा मित्र है? कोई नहीं। इनका जो कुछ होगा, वह मैं देख लूँगा। तुम हट जाओ।

इतनेमें वे लोग चहारदीवारी परसे नीचे उतर पड़े। यह देखकर निरंजनने कहा—चाहे जो हो, लेकिन आपकी यह बात मैं इस समय यहाँ न चलने दूँगा। मुझे इस बातका अधिकार है—

इतना कहकर निरंजन घोड़ेपरसे नीचे उतरना ही चाहता था कि घोड़ा भड़क उठा और निरंजन छटककर वहाँसे कुछ दूरीपर जमीनपर जा गिरा और साथ ही वहाँसे लुढ़कता हुआ गड्ढेमें चला गया। इसी बीचमें महेन्द्रने देखा कि सामनेसे दो तीन आदमी दौड़े हुए चले आ रहे हैं और उनमेंसे किसीके हाथमें लाठी और किसीके हाथमें पत्थर हैं।

महेन्द्र स्तब्धभावसे क्षणभर तक अपने किए हुए कामका परिणाम देखता रहा; साथ ही उसने यह भी अनुभव किया कि मेरी दृढ़ मुट्ठीमें कसी हुई लड़की हवासे हिलनेवाले पत्तेकी तरह काँप रही है और रोती रोती कह रही है,—" भइया, ओ भइया!" महेन्द्रने देखा कि जिस स्थानपर निरंजन गिरा है, उसके पास ही एक आदमी निरंजनके सिरपर लाठी तान रहा है और बाकी दो आदमी दौड़े हुए मेरी ओर आ रहे हैं। इसके बाद जो कुछ हुआ वह स्वयं महेन्द्रकी समझमें भी अच्छी तरह न आया। कुछ क्षणसे उसके निकट सारा संसार रक्त वर्णका हो उठा था; और अब इस समय उस रक्त-प्रवाहमेंसे एक चक्कर उठा जिसने महेन्द्रकी स्मृतिकी सभी बातोंको बिलकुल उलट पलट दिया। उसने देखा कि निरंजनके पास एक आदमी निश्चल पड़ा है, दूसरा घायल होकर पड़ा पड़ा मारे वेदनासे चिल्ला रहा है, बाकी आदमी भागे जा रहे हैं और स्वयं उसके ही हाथमें उसकी पिस्तौल है! उसे बिल-कुल याद न आया कि मैंने यह पिस्तौल कब चलाई। निरंजन उठ-

नेका प्रयत्न कर रहा था। यह देखकर महेन्द्रने चुपचाप आगे बढ़कर और सहारा देकर उसे उठा कर बैठा दिया।

महेन्द्रने पूछा—उठ सकोगे?

नि०—शायद खड़ा हो सकूँ, जरा पकड़ो।

महेन्द्रने हाथके सहारे निरंजनको उठाकर खड़ा करना चाहा; पर निरंजनसे उठा नहीं गया, वह फिर बैठ गया।

महेन्द्रने कहा—तुमसे उठा नहीं जायगा। बैठे रहो। मैं घोड़ा यहीं ले आता हूँ—माळूम होता है, वह सँभल गया है।

उधर जमीनपर गिरी हुई कमलाकी ओर देखकर निरंजनने क्षीण-स्वरसे कहा—पहले उसे देखो, माळूम होता है, बेहोश हो गई है।

परन्तु महेन्द्रने निरंजनकी इस बातपर ध्यान नहीं दिया और उसने घोड़ेके पास जाकर उसके कन्धेपर थपकी देकर उसे पुचकारा और शान्त किया। उसने लगाम पकड़कर घोड़ेको नीचे गड्ढेमें उतारना चाहा, पर नीचे उतरनेके लिए वह राजी नहीं हुआ और विद्रोही भावसे पीछेकी ओर मुँह फेरकर हिनहिनाने लगा।

निरंजनने हँसकर कहा—वह बहुत डर गया है, इसलिए नीचे न उतरेगा। उसे वहीं रहने दो, देखो मैं उठनेका प्रयत्न करता हूँ। तुम पहले उसे देखो।

महेन्द्रने बिना कोई उत्तर दिये चुपचाप बेहोश कमलाको दोनों हाथोंसे उठाकर अपने कन्धेपर रख लिया और तब घोड़ेके पास पहुँच-कर उसे उसी बेहोशीकी हालतमें घोड़ेकी पीटपर रखते हुए निरंजनकी ओर देखकर कहा—देखो, चारों तरफसे बहुतसे आदमी चले आ रहे हैं। होशमें लानेका समय नहीं है। जल्दी आओ।

निरंजन भी समझ रहा था कि बहुतसे आदमी आ रहे हैं। वह चारों हाथों पैरोंपर भार देकर किसी तरह घोड़ेके पास पहुँचनेका प्रयत्न करने लगा।

इतनेमें आवाज आई—निरंजन, महेन्द्र, यह क्या !—

निरंजन और महेन्द्र दोनोंने चौंककर देखा—सामने कामाख्यानाथ बाबू खड़े हैं। पलभरमें महेन्द्र रिकाबपर पैर रखकर और कूदकर घोड़ेकी पीठपर जा चढ़ा और बेहोश कमलाको गोदमें लेकर उसने घोड़ेको जोरसे एड़ लगा दी। क्षणभरमें वह निरंजन और कामाख्यानाथकी आँखोंसे ओझल हो गया।

कामाख्यानाथने बिलकुल मूढ़ भावसे निरंजनका हाथ पकड़कर उसे उठाते हुए पूछा—निरंजन, यह क्या मामला है ?

निरंजनके उत्तर देनेसे पहले ही नौगाँवके थानेके दारोगा और कुछ सिपाही तथा चौकीदार वहाँ आकर पहुँच गये और कामाख्यानाथ, निरंजन तथा गिरे हुए दोनों आदमियोंको घेरकर खड़े हो गये। उन लोगोंके साथ नौगाँवके जमींदार भी थे। किसीके कुछ कहने सुननेसे पहले ही एक और सवार वहाँ आ पहुँचा और घोड़े परसे ही कामाख्यानाथको अभिवादन करके बोला—ज्यों ही मुझे खबर मिली, त्यों ही दौड़ा आ रहा हूँ। लेकिन फिर भी आप पहले ही पहुँच गये। मैंने एक चौकीदार यहाँके थानेमें भी भेज दिया था जिससे यहाँके दारोगाको भी खबर हो जाय।—वाह, ये लोग भी तो यहाँ आ पहुँचे हैं। मैं देखता हूँ—

नौगाँवके दारोगाने देखा कि ये भी मेरी बराबरीके ही अफसर हैं और दूसरे गाँवके थानेदार हैं! उनकी समझमें न आया कि आखिर मामला क्या है और वे भी कुछ देरतक चुपचाप खड़े देखते रहे।

जब नौगाँवके जमींदारने पुकारकर कहा—देखिए, जान पड़ता है मेरे दरबान लछमनसिंहका खून हो गया है, तब उन्होंने चकित होकर अपने कर्तव्यकी ओर ध्यान दिया।

इक्कीसवाँ परिच्छेद।

जब चित्त उद्विग्न रहता है, तब समय जल्दी नहीं बीतता; फिर भी कात्यायनीकी वह रात किसी तरह बीत गई। लेकिन महेन्द्र या निरंजन आदिकी उसे कोई खबर नहीं मिली और न रमाने ही उससे कोई समाचार कहलाया। सवेरे तो कात्यायनी आसरेमें ही बैठी थी, दोपहरके समय उसने रमाकी बूढ़ी मजदूरनीको रमाके पास खबर लानेके लिए भेजा। वह स्वयं रमाके यहाँ नहीं जा सकती थी। मजदूरनीने लौटकर कहा कि रमा सवेरेसे ही मन्दिर गई है और अभी तक लौटकर नहीं आई है। अगर मेरे साथ मन्दिर चलना चाहो, तो चलो, मैं अभी रमाके पास जाती हूँ। बड़े बाबू और छोटे भइया दोनों कल कहीं गये हैं और आज सवेरे दीवानजी भी बहुत घबराये हुए चले गये हैं। गाँवमें कुछ कुछ सुन गुन उड़ रही है। किसीने थानेमें सुना है कि जमींदारपर कोई आफत आई है। लेकिन जमींदारके यहाँ अभी इस बातका कोई जिक्र नहीं है। मालूम होता है कि यह खबर अभी वहाँ तक नहीं पहुँची है। परन्तु रमा इस कुसमयमें मन्दिरमें गई है, इससे मेरा मन बहुत ही शङ्कित हो उठा है। अब मैं तुम्हारे पास नहीं ठहर सकती। तुम्हें केवल खबर देनेके लिए आई हूँ। इतना कहते कहते वह वृद्धा मानो किसी अज्ञात आशंकासे थर थर काँपने लगी।

कात्यायनी मजदूरनीके साथ चल पड़ी। मन्दिरकी कोठरीमें पहुँचकर उसने देखा कि रमा ठाकुरजीकी सन्ध्याकी आरतीकी तैयारियाँ कर

रही है। मन्दिरके सब नौकर और मजदूरनियाँ दोपहरके कारण अपनी अपनी जगह पड़ी हुई सो रही हैं। ठाकुरजीके मन्दिरका दरवाजा बन्द है। केवल रमा ही उस कोठरीमें अकेली विश्रामहीन भावसे काममें लगी हुई है। उसके साथ जो मिसरानी आई थी, वह भी बरामदेमें ठंढे संगमर्मरपर अपना आँचल बिछाकर पड़ी खर्राटे ले रही है।

कात्यायनीको देखकर रमाने कहा—आओ, चली आओ। इसके बाद उसने मजदूरनीकी ओर देखकर कहा—इस दुपहरियामें भी तुम आज सोई नहीं ?

मजदूरनीने उस बातका कोई उत्तर नहीं दिया और दरवाजेके पास बैठकर कहा—क्या तुमने आज अभी तक भोजन नहीं किया ?

रमा—भोजन क्यों नहीं किया ! आज मनमें आया कि ठाकुरजीका प्रसाद चलकर खाऊँ और फिर इस धूपमें यहाँसे घर जानेकी इच्छा नहीं हुई; बैठी बैठी आरतीका इन्तजाम करने लगी। देखो न धूपदानी कितनी मैली हो गई है। तुम जरा यह बड़ी दीयट अच्छी तरह माँज दो। इसमें भी बीच बीचमें बहुत मैल जमा हुआ है।

इतना कहकर रमाने कात्यायनीकी ओर थोड़ीसी रूई फेंक दी और उससे बत्ती बनानेके लिए कहा। कात्यायनी उस रूईको हाथमें लेकर दीवारके सहारे बैठ गई।

अब जाकर मानो वृद्धा मजदूरनी कुछ स्वस्थ हुई और बोली—अरे बेटी, अब मेरी आँखोंमें वह ज्योति थोड़ी ही है जो मुझे इसके अन्दरका सब मैल अच्छी तरह दिखाई दे देगा। वह लड़की कहाँ गई ? क्या सो गई है ? अच्छा मैं उसे जगाती हूँ और यह सब साफ करा देती हूँ। यह कहकर वृद्धा उठ खड़ी हुई और अपनी नतनीकी खोजमें चल दी।

कात्यायनी पहले तो कुछ देर तक चुप बैठी रही; फिर उसने रमाके कन्धेपर हाथ रखकर उसे अपनी ओर खींच लिया और रुँधे हुए स्वरसे पूछा—मुझे बतलाओ कि क्या खबर है।

रमाने कात्यायनीके कन्धेपर सिर रखकर मानो अपनेको सँभाल लिया और फिर धीरे धीरे कहा—बाबूजी और भइया पुलिसके हाथ पड़ गये हैं। नोगाँवके जमींदारके यहाँके दो आदमी थे, उनमेंसे एक तो बिल्कुल मरा हुआ (कहते कहते रमा काँपने लग गई) और दूसरा अधमरा होकर उनके बगीचेके बाहर पड़ा था—और उन्हींके पास भइया तथा बाबूजी खड़े थे। इसी अवस्थामें नौगाँवके जमींदारने दोनोंको पुलिससे गिरिफ्तार करा दिया है। यद्यपि बाबूजीके साथ यहाँके दारोगा भी थे; पर वहाँ एक आदमी मरा पड़ा था, दूसरा घायल था, पास ही बाबूजीके नामकी पिस्तौल पड़ी थी और उनके घरकी एक लड़की भी चुराई गई थी, ऐसी हालतमें वे लोग उन्हें छोड़ ही कैसे सकते थे? अब यहीं कहा जायगा कि बाबूजीने ही अपने आदमियोंसे वह लड़की चुरा मँगाई है और दो आदमियोंका खून कराया है।

का०—और महेन्द्र? वह कहाँ है?

रमा०—उनकी कोई खबर नहीं मिली। मालूम होता है कि वे वहाँ किसीको दिखाई ही नहीं दिये!

का०—यह हो नहीं सकता। वह जरूर वहाँ रहा होगा। अगर वह वहाँ नहीं था, तो फिर यह सब काम किये किसने? अवश्य उसीने किये! और कमलाको भी वहाँसे कौन चुरा ले गया?

रमा इतनी देर तक आँखें बन्द करके बातें कर रही थी। कात्यायनीका तीव्र स्वर सुनकर उसने आँखें खोलीं और उसकी ओर देखकर

तथा उसके शरीरपर हाथ रखकर कहा—तुम शान्त रहो और धीर धीरे बातें करो। बाबूजीने कहलाया है कि इन बातोंकी किसीको खबर न हो।

का०—कैसे आश्चर्यकी बात है! उनपर यह विपत्ति आई है—भला यह बात कहीं छिपी रह सकती है?

रमा—नहीं, छिपी तो नहीं रह सकती; लेकिन तुम किसीके सामने महेन्द्रका जिक्र भी मत करना। जब हमारी तरफका कोई आदमी उनका नाम नहीं लेता है, तब मालूम होता है कि वहाँ किसीने भी उन्हें नहीं देखा। और कमलाको चुरानेके लिए तो हम लोगोंने सचमुच ही भेजा था। महेन्द्र बाबू उसको लेकर चले गये और पकड़े नहीं गये, यह तो एक तरहसे अच्छा ही हुआ है।

का०—अच्छा ही हुआ है? अगर यही बात थी तो फिर वह कमलाको लेकर हम लोगोंके पास क्यों नहीं आया? हम लोगोंने निरंजनको आखिर और किसके कामके लिए भेजा था? ऐसे समयमें वह छिप क्यों गया? क्या वह नहीं समझता कि उसके इस समय इस प्रकार लुकने छिपनेका क्या परिणाम हो सकता है?

कात्यायनीका स्वर बहुत तीव्र हो रहा था। उसे संयत करनेके लिए रमाने उसके मुँहपर हाथ रखते हुए कहा—शायद विपत्तिके कारण उन्हें मतिभ्रम हो गया है और उनकी समझमें नहीं आ रहा है कि इस समय क्या करना चाहिए। जब उनका चित्त ठिकाने होगा और वे समझेंगे, तब शायद आ जायँगे।

कात्यायनीने फिर अधीर स्वरसे कहा—अब वह भला क्यों आने लगा? उसीके पास तो इस घटनाके सब प्रमाण हैं। यदि वह नहीं आया, तो क्या होगा?

रमाने फिर आँखें बन्द करके धीरे धीरे मानो अपने ही मनमें कहा—जो तुम करोगे, वही होगा ।

का०—कौन ? तुम्हारे गोविन्ददेव ? तो क्या उन्हें छोड़कर मनुष्यकी और कुछ करनेकी शक्ति ही नहीं है ?

रमा०—नहीं ।

का०—कोई भी उपाय नहीं है ?

रमा०—बस, उनकी इच्छा ही एक मात्र उपाय है ।

कात्यायनी कुछ देर तक चुपचाप बिना हिले डुले बैठी रही, फिर सहसा खड़ी होकर बोली—अच्छा तो अब मैं जाती हूँ ।

कहाँ ? रमाने चकित होकर उसका हाथ पकड़ लिया और खींचकर अपने पास बैठा लिया तथा अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों हाथ पकड़कर दृढ़तापूर्वक कहा—कहाँ जाओगी ? मनुष्यके लिए और कहीं आश्रय नहीं है । यदि कहीं कोई आश्रय है, तो वह इसी द्वारपर है । भइया और बाबूजीकी जमानतके लिए दीवानजी रुपए लेकर गए हैं । और फिर आदमीके किये जो कुछ हो सकेगा, वह सभी किया जायगा, कोई बात उठा नहीं रखी जायगी । लेकिन तुम असल बात क्यों भूली जा रही हो ? वहाँ एक खून हो गया है । क्या तुम यह समझती हो कि सत्यस्वरूप परमात्माके राज्यमें यह सच्ची बात छिपी रह सकेगी ? भले ही इस समय भइया और बाबूजी इसमें फँस जायँ, लेकिन जो सच बात है वह क्या कभी खुलेगी ही नहीं ? एक आदमीके प्राण गये हैं । जब वह उन प्राणोंकी क्षति-पूर्त्तिके लिए अपना न्याय करावेगा, तब—तब क्या होगा ! वह उस दिनके लिए किसके निकट आश्रय लेगा, और उसे कहाँ सान्त्वना मिलेगी ? क्या एक मात्र यहाँपर ही आत्म-समर्पण नहीं करना पड़ता है ?

कात्यायनी आर्त्तकण्ठसे चिल्ला उठी—नहीं, नहीं । कैसा आश्रय ?—कैसी सान्त्वना ? और कौन उसे चाहता है ? मनुष्य अपने किये हुए कर्मोंका फल भोगेगा, इसमें डर किस बातका ? बल्कि अगर उसे वह न मिले, तो कहना पड़ेगा कि संसारमें न्याय धर्म और सत्य आदि सब मनुष्यकी मनगढन्त बातें हैं। संसारमें जो कुछ है, वह आदिसे अन्त-तक सब मिथ्या है ।

रमा—ठहरो, ठहरो ।

कात्यायनी जोरसे ‘ नहीं, नहीं,’ कहती हुई वहाँसे उठ खड़ी हुई और मन्दिरसे बाहर निकलकर घरकी ओर चल पड़ी । उसने किसीके साथ आनेका आसरा नहीं देखा । रमाने एक बार उठनेका प्रयत्न किया, पर उससे उठा नहीं गया । वह फिर वहीं बैठ गई और चुपचाप मन्दिरके फर्शपर मस्तक टिकाकर पड़ रही ।

कात्यायनीके आँगनमें सन्ध्याका अन्धकार छा रहा था । उस दिन उसकी माताके तुलसीके चौरेके सामने दीपक नहीं जला था । बूढ़ी मजदूरनी भी अभी तक रमाके यहाँसे लौटकर नहीं आई थी । अपनी अन्धेरी कोठरीमें पड़े पड़े ही कात्यायनीने सुना कि गोविन्ददेवकी आरतीके बाजे—शंख घड़ियाल आदि—बजे और थम गये । आज उसे ऐसा जान पड़ा कि उन बाजोंके नित्यके शब्दोंमें और आजके शब्दोंमें कुछ अन्तर है । उसे एक अव्यक्त रोदन सा सुनाई देता था । पर ऐसा क्यों ? किसके लिए ? मनुष्यको अपने कर्मोंका फल भोगना ही पड़ेगा, फिर इतनी कातरता किस लिए ? केवल सत्य, न्याय, दया और धर्मकी जय हो । कहीं ऐसा न हो कि मेरे अभाग्यके कारण इन सब बातों-परसे भी मेरी आस्था उठ जाय ।

इतनेमें बाहरसे आवाज आई—कात्यायनी !

कात्यायनी चौंककर उठ बैठी और बोली—कौन ?

उत्तर मिला—मैं हूँ, कामाख्यानाथ। तुम जरा बाहर आओ।

कात्यायनी तुरन्त उठकर बाहर निकल आई। उस समय भी उसका सारा शरीर काँप रहा था। वह इधर उधर देखने लगी कि कहीं कोई आसन पड़ा हो, तो उठाकर बिछा दूँ। कामाख्यानाथने कहा—आसन रहने दो। क्या तुम अकेली हो ? रमाकी मजदूरनी तो यहीं है, पर तुम्हारी मजदूरनी कहाँ गई ?

कात्यायनीने क्षीण स्वरमें कहा—माछ्म नहीं कहाँ है। कहीं घूमने गई होगी। आप कब आये ?

कामा०—अभी थोड़ी देर हुई। तुम्हें महेन्द्रका कुछ पता है ?

कात्या०—नहीं।

कामा०—वह लड़कीको तुम्हारे पास रखने नहीं आया ?

कात्या०—नहीं।

कामाख्यानाथने कुछ देर तक चुप रहनेके उपरान्त कोमल स्वरसे कहा—देखो, यदि तुम्हें उसकी कोई खबर मिले या वह तुम्हारे पास आवे, तो तुरन्त मुझे खबर देना। या तो तुम स्वयं ही चली आना और या रमाको भेजकर कहला देना। ऐसा न हो कि मुझे पता भी न लगे और वह चला जाय।

अब कात्यायनीने सिर उठाकर कामाख्यानाथकी ओर देखा और कुछ रुद्ध स्वरसे कहा—मैं समझती हूँ कि उसीके कारण आपपर यह विपत्ति आई है। यदि वह मिल जाय, तो सब झगड़ा मिट जाय। लेकिन क्या आप मुझसे यह कहते हैं कि मैं बहन होकर भी भाईको पकड़ा दूँ ?

कामाख्यानाथने विस्मित होकर पूछा—पकड़ा दो, इसका क्या मतलब ?

कात्या०—आपको समाचार देनेके माने तो यही हैं कि उसे पकड़ा दूँ ? क्या मैं यह बात नहीं समझती कि इन सब बातोंके लिए पूरा दोषी कौन है और किसके हठके कारण इतना बड़ा काण्ड घटित हो गया है ? किन्तु अपनी बुद्धि और भाग्यके दोषसे आपकी इतनी बड़ी हानि करनेपर भी, मुझे—

कामा०—कात्यायनी, मेरी हानि करनेकी अपेक्षा उसने स्वयं अपनी ही विशेष हानि की है। यदि वह न मिलेगा तो सिर्फ यही प्रमाणित होगा कि मैंने ही अपने आदमी भेजकर लड़की चुरा मँगाई है और यह खून खराबी कराई है—इसके लिए बहुत होगा तो मुझे कुछ दिनोंकी सजा हो जायगी। लेकिन अगर कहीं वह पकड़ा गया तो—लेकिन ये सब बातें रहने दो। मैं तो उसकी रक्षा करनेके लिए ही कह रहा हूँ कि जब वह आवे तब तुम मुझे खबर देना। यह तो तुम सहजमें ही विश्वास कर सकती हो कि मैं उसे गिरिफ्तार करानेके लिए यह बात नहीं कह रहा हूँ।

कात्यायनीने सिर झुका लिया। वह बहुत कुछ सोचने पर भी यह न समझ सकी कि आज मेरे मनमें यह अविश्वास कहाँसे आ गया। उसे चुप देखकर कामाख्यानाथने फिर कहा—अब भी यदि वह मेरे पास आ जाय और मैं उसे अपने साथ लेकर मजिस्ट्रेटके पास जाऊँ और कुछ गवाही या सबूत पहुँचाऊँ, तो शायद कोई उपाय निकल सकता है। मैं तो समझता हूँ कि अभी तक शायद महेन्द्रको भी यह बात मालूम नहीं थी कि वह लड़की नौगाँवके जमींदारकी आधी सम्पत्तिकी अधिकारिणी है और उसने उस लड़कीको अत्याचारसे बचानेके

लिए ही यह मार्ग ग्रहण किया था। यदि पूरे सबूतके साथ ये सब बातें मजिस्ट्रेटके सामने रखी जायँगी, तो बहुत सम्भव है कि बिना समझे बूझे उससे जो अपराध हो गया है, वह बहुत कुछ हलका समझा जाय।

कात्यायनीने कुछ लज्जित होकर कोमल स्वरमें कहा—मैं समझ गई; लेकिन आपकी भी तो उसने कुछ कम हानि नहीं की है। जिसकी करतूतके कारण आपपर इतनी विपत्ति आई है और आपकी इतनी बदनामी हुई है, उसके दोषका भार हलका करनेके लिए आप क्यों इतना प्रयत्न कर रहे हैं? आपको उसकी रक्षा करनेकी क्या आवश्यकता है? बल्कि मैं तो समझती हूँ कि यदि वह पकड़ा जाय, तो आपके सिरसे सारी आफतें अनायास ही दूर हो सकती हैं।

कामा०——कात्यायनी, मैं उस भारी विपत्तिकी आशंकासे इतना घबरा रहा हूँ। यदि पुलिसने उसे कहीं इधर उधर आप ही पकड़ लिया, तो मेरे लिए वही सबसे बड़ी विपत्ति होगी। तुम उसे समझा देना——

कात्या०——पहले आप ही मुझे एक बात समझा दीजिए। मैं समझती हूँ कि उधरसे यह प्रमाणित हुआ है कि आपने यह खून नहीं किया है, उसीने किया है। आप उसे लड़की चुरानेमें केवल सहायता देनेके लिए वहाँ गये थे। इससे तो अधिकसे अधिक यही प्रमाणित हो सकता है कि उस लड़कीकी सम्पत्तिके लोभसे ही आप यह चाहते थे कि वह लड़की किसी प्रकार वहाँसे आ जाय। लेकिन जब आपको यह बात अच्छी तरह मालूम हो गई है कि उन लोगोंने लड़कीके लिए ही ये सब षड्यन्त्र रचे थे, तो क्या आप यह बात नहीं प्रमाणित कर सकते कि उन्हीं लोगोंकी चोरी और अन्यायका प्रतिकार करनेके लिए आप वहाँ गये थे?

कामा०—बहुत सम्भव है कि यह बात भी प्रमाणित हो जाय। क्योंकि तुम्हारे मुँहसे सब बातें सुनकर और निरंजन तथा महेन्द्रके हठी स्वभावकी आशंकासे और विशेषतः यह समझकर कि ऐसे जटिल अवसरपर अन्यायका प्रतिकार करनेमें कैसा विषम परिणाम हो सकता है, मैंने यहाँके दारोगाको—जो उस समय भाग्यसे यहीं मौजूद थे—इस विषयकी बहुत सी बातें बतला दी थीं। ज्यों ही मैं वहाँ पहुँचा, त्यों ही दारोगा भी मेरे पीछे पीछे वहाँ जा पहुँचे। यह इस बातका एक बहुत बड़ा प्रमाण है कि मैं वहाँ किसी बुरे उद्देश्यसे नहीं गया था।

कात्या०—तो फिर आप क्यों व्यर्थ इतना घबरा रहे हैं? महेन्द्रका जो कुछ होनेको हो वह हुआ करे। आप स्वयं अपने निरापद होनेकी चेष्टा कीजिए।

कामाख्यानाथ कुछ देर तक चुप रहकर बोले—मैं समझता हूँ कि तुम सब बातें भूल गईं। क्या तुम्हें यह याद नहीं है कि मरनेके समय तुम्हारे पिताजी और तुम्हारी माताजी—मुमूर्ष ब्राह्मण और ब्राह्मणी—महेन्द्रको किस प्रकार मेरे हाथमें सौंप गई थीं? उसे सब प्रकारकी विपत्तियोंसे प्राणोंकी बाजी लगाकर भी बचाना मेरा धर्म है और इसके लिए मैं बाध्य हूँ। आज यदि निरंजनपर कोई आफत आ पड़े और मैं चुपचाप बैठा रहूँ, तो कदाचित् मैं धर्मसे च्युत न होऊँगा; परंतु यदि मैं महेन्द्रको विपत्तिसे बचानेकी कोई चेष्टा न करूँगा, तो मेरा सर्वनाश होगा।

कात्यायनी बिलकुल चुप थी। देखते देखते उसके ज्वालामय उज्ज्वल नेत्रोंमें जल भर आया और वे निष्प्रभ हो आये। अपने इस भावको

सँभालकर उसने प्राय: रुँधे हुए स्वरसे कहा—आपके लड़के निरंजन इस समय कहाँ हैं ?

कामा०—मजिस्ट्रेटके पास है। मेरे भाग्यसे इस बार भी मजिस्ट्रेट शिकार खेलनेके लिए उस तरफ आये हुए थे और नौगाँवके जमींदारके बंगलेमें ही ठहरे हुए थे। सारी खबर सीधी उन्हींके पास पहुँची थी। अभी हालमें सोदपुरमें जो झगड़ा हुआ था, उसके कारण वे मुझसे असन्तुष्ट थे ही, उसपर यह खून हो गया, इसलिए वे और भी बिगड़ गये हैं और स्वयं ही इस मुकदमेका सारा विचार करना चाहते हैं। इसलिए इस झगड़ेका फैसला होनेमें भी ज्यादा देर न लगेगी। कल ही मुझे शहर जाना होगा और उसके बाद ही मुकदमेका विचार आरम्भ हो जायगा। मजिस्ट्रेट आज ही मुकदमा दायर कर देंगे। निरंजन अब भी पूरी तरहसे अच्छा नहीं हुआ है।

कात्या०—उन्हें क्या हुआ था ?

कामा०—वह घोड़ेपरसे गिर पड़ा था।

कात्या०—मैंने जो आपको वहाँ भेजा, क्या उसीसे यह सब झगड़ा फिसाद हुआ ?

कामा०—घटना तो मेरे जानेसे पहले ही घट चुकी थी; फिर भी मैं समझता हूँ कि निरंजन और कमलाको साथ लेकर महेन्द्र मेरे ही पास आता; परंतु मेरे पहुँच जानेसे मामला और भी बिगड़ गया। मुझे देखते ही महेन्द्र या तो मारे लज्जाके और या भयके कमलाको लेकर तुरन्त वहाँसे भाग गया।

कात्यायनीने कोमल स्वरसे पूछा—लेकिन वह सब खूनखराबी तो महेन्द्रके ही हाथसे हुई न ?

कामा०—हाँ उसके ही हाथसे होना संभव जान पड़ता है, क्योंकि निरंजन उस समय बेहोश था और हमारे ही यहाँकी पिस्तौल वहाँ पड़ी हुई थी। मैं तो समझता हूँ कि महेन्द्र ही वह पिस्तौल अपने साथ लाया होगा और उसीके द्वारा—

कात्या०—आपको कुछ यह भी मालूम है कि निरंजन क्यों और कैसे बेहोश हो गया था?

कामा०—मालूम हुआ है कि उसे कमलाका उद्धार करते देखकर महेन्द्र बहुत नाराज हुआ और दोनोंमें कहासुनी होने लगी। इतनेमें उस तरफके कुछ आदमी आ पहुँचे। इसी बीचमें शायद घोड़ा भड़का और निरंजन उस परसे गिरकर बेहोश हो गया। इसके बाद बहुत सम्भव यही जान पड़ता है कि अपने आपको विपत्तिसे बचानेके लिए महेन्द्रने बिना समझे बूझे और अनजानमें यह अनर्थ कर डाला।

कात्यायनी कुछ देर तक टक लगाये कामाख्यानाथकी ओर देखती रही और तब बोली—आप कहते हैं कि उसने सब काम बिना समझे बूझे और अनजानमें कर डाला। लेकिन क्या आपको पूरा हाल अच्छी तरह मालूम है? उस दिन सोदपुरमें जो घटना हो गई, उसे आपने एक च्यूँटीके काटनेके बराबर भी कष्टकर नहीं समझा, यह देखकर यदि उसके मनमें आपके सम्बन्धमें किसी प्रकारका विकृत भाव उत्पन्न हुआ हो और उसी कारण उसने इस मामलेमें आपसे किसी प्रकारकी सहायता लेना या अपने मित्र निरंजनसे भी सहायता लेना अनुचित समझा हो और उसका वह विकृत मनोभाव और भी बिगड़ गया हो, तो भी क्या आप कह सकते हैं कि यह सब काम उसने बिना समझे बूझे और अनजानमें ही कर डाला?

कामा०—यद्यपि कोई यह नहीं कह सकता कि मैं अमुक व्यक्तिके मनका पूरा भाव अच्छी तरह जानता हूँ; फिर भी इस बातमें किसी

प्रकारका सन्देह नहीं है कि उससे यह काम अनजानमें और बिना समझे बूझे ही हो गया है। और जो तुम सोदपुरवाली घटनाकी बात कहती हो, सो उसके सम्बन्धमें तो मैं यही समझता हूँ कि चाहे मुझपर उसके मनमें किसी प्रकारका द्वेषभाव ही क्यों न रहा हो, फिर भी वह केवल उसके हठका परिणाम था।

कात्या०—आप जो कुछ कह रहे हैं, उससे तो यही मालूम होता है कि आप अच्छी तरह जानते थे कि आजकल महेन्द्रके मनका भाव कैसा हो रहा है।

कामाख्यानाथने कोमल स्वरसे कहा—हाँ।

कात्यायनीने कुछ देरतक निस्तब्ध रहकर सहसा उत्तेजित स्वरसे कहा—तो फिर यह सब कुछ जानते हुए भी आपने उसके हाथमें इतना अधिकार क्यों दे रखा था? आपने उसे इतनी स्वतन्त्रता क्यों दे रखी थी कि वह आपकी पिस्तौल तक काममें ला सके? आपने सब कुछ जान बूझकर भी ऐसा काम क्यों किया?

कामाख्यानाथने फिर भी पहलेकी ही भाँति शान्तिपूर्वक उत्तर दिया—मैंने यह सोचा था कि यदि मैं उसपर इस प्रकार अपना विश्वास प्रकट करूँगा, तो शायद वह आप ही आप लज्जित होकर ठीक रास्तेपर आ जायगा। यद्यपि सोदपुरवाले मामलेमें यह साबित हो गया था कि उसकी केवल जिदसे ही सब कुछ हुआ, तो भी मैंने इसी उद्देश्यसे उसके हाथमें इतना अधिकार दे रखा था कि जिस आदमी-पर विश्वास करके अपना जीवन तक उसके सुपुर्द कर दिया जाता है, वह कमसे कम अपने विवेकके कारण ही अन्तमें सत्पथ पर आ जाता है।

कात्या०—आप यह विश्वास करते हैं कि उसमें इतना मनुष्यत्व भी है?

कामा०—हाँ करता हूँ कात्यायनी, बल्कि मैं तो अभी तक यह समझता हूँ कि मुझे इस बड़ी भारी विपत्तिमें उसने अपनी इच्छासे कभी नहीं डाला है। एकाएक इतना बड़ा फिसाद हो जानेसे लज्जा और भयकी विमूढ़ताके ही कारण वह इस समय छिपा हुआ है। इसका जो कुछ फल होगा, वह यदि उसके कानों तक पहुँच गया, तो शायद—लेकिन मुझे इसी बातका सबसे अधिक भय है कात्यायनी! उसकी इस अनुपस्थितिसे और कमलाके न पाये जानेसे इन सब झगड़ोंका मूल कारण मैं समझ लिया जाऊँ और इसके लिए मुझपर चाहे जो बीते, मैं वह सब सहनेके लिए तैयार हूँ—उसकी मुझे कुछ भी चिन्ता नहीं है। मुझे सबसे अधिक चिन्ता इसी बातकी है कि वह कहीं सहसा पुलिसके हाथमें न पड़ जाय। यदि ऐसा हुआ तो फिर मैं उसे किसी प्रकार न बचा सकूँगा। इसी लिए मैं तुमसे यह कहनेके लिए आया हूँ; बल्कि इस बातका भार रखनेके लिए आया हूँ कि महेन्द्र कहीं आपसे आप पुलिसके हाथमें न चला जाय या वह इसी तरहका कोई और काम न कर बैठे। वह अवश्य ही तुम्हारे पास मिलनेके लिए आवेगा। उस समय तुम उससे कहना कि दीवानजीके पास चला जाय। यदि वह मजिस्ट्रेटके सामने जानेके लिए किसी तरह तैयार न हो, तो दीवानजी उसे कहीं भी निरापद रहनेका प्रबन्ध कर देंगे—मैं सब बन्दोबस्त किये जाता हूँ।

कात्यायनीने घबराकर पूछा—और आप कहाँ जा रहे हैं?

कामा०—क्या तुम भूल गई कि मैं निरंजनको कहाँ छोड़ आया हूँ? केवल महेन्द्रकी चिन्तासे ही इस तरह चला आया हूँ। अब मैं उसके और अपने भाग्यके साथ युद्ध करने जा रहा हूँ; परिणाम चाहे जो कुछ हो। तुम रमाका ध्यान रखना।

कात्या०—आप जरा सा ठहर जायँ—

कामाख्यानाथ घूमकर खड़े हो गये और स्निग्ध स्वरसे बोले—भगवानपर भरोसा रखना, रमाके पास रहना और महेन्द्रको अच्छी तरहसे समझाना। जो कुछ हो गया है उसका तो अब कोई उपाय ही नहीं है; परन्तु अब भी वह अपने मनकी उत्तेजनके वश होकर न चले और दीवानजीके पास अवश्य जाय—

कात्यायनीने तेजीके साथ कहा—आप अब भी उसीकी चिन्ता कर रहे हैं? जिसने इस प्रकार सब लोगोंका सर्वनाश किया, उसके लिए अब आप अपनी खराबी मत कीजिए। उसके भाग्यमें जो कुछ बदा होगा, वह होगा। अब आप केवल वही उपाय कीजिए जिससे आपका मंगल हो। कामाख्यानाथने क्षोभकी हँसी हँसते हुए कहा—कात्यायनी, यह अब नहीं हो सकता। भला तुम्हारी और महेन्द्रकी चिन्ता मैं क्योंकर छोड़ सकता हूँ? मैं पहले उसे बचानेका उद्योग करूँगा, पीछे और कोई काम होगा।

कात्या०—नहीं, नहीं, आप ऐसा कभी मत कीजिएगा। जिनके लिए आपने इतना सब कुछ किया है, क्या आप जानते हैं कि वे कितने अकृतज्ञ हैं? महेन्द्रने आपके ऊपर कितना—

कामाख्यानाथने हाथ उठाकर कात्यायनीको रोकते हुए कहा—कात्यायनी, इन सब बातोंको रहने दो। मैं सब कुछ जानता हूँ। और यह असंगत भी नहीं है। उसके भाग्यके द्वारा चालित होकर तुमने और तुम्हारे पिताने उस अभागेको इस मार्गपर चलाया है! और नहीं तो भगवानका दिया हुआ सत्-भाव उसमें यथेष्ट मात्रामें वर्तमान है। मेरी मतिमें भी कुछ भ्रम हो गया था, जो मैंने उसके हाथमें इतना अधिकार दे रखा था। मैं देख रहा था कि भाग्यके आगे उसकी सद्वृत्तिका

कुछ भी वश नहीं चल रहा है; फिर भी मैंने क्यों यह भूल की ! मैं भूल गया कि अधःपतनके मार्गमें बहुत अधिक फिसलन होती है। जो एक बार उस मार्गमें पहुँच जाता है, वह बराबर नीचेकी ओर ही फिसलता जाता है—अधःपातकी दिशामें उसकी गतिका वेग बराबर बढ़ता ही जाता है । मेरी इस भयानक भूलके कारण ही शायद उसका यह सर्वनाश हुआ। अच्छा अब मैं जाता हूँ। सावधानीसे रहना। अगर हो सका, तो फिर भेंट होगी।

कात्यायनी चुपचाप पत्थरकी मूरतकी भाँति खड़ी रही, प्रणाम भी न कर सकी। केवल स्थिर दृष्टिसे कामाख्यानाथकी ओर देखती रही।

आँगनमें पहुँचकर कामाख्यानाथने फिर कहा—इतनी रात तक तुम यहाँ अकेली ही हो, तुम्हारी मजदूरनी अभी तक नहीं आई ? अच्छा, मैं दीवानजीसे कह जाऊँगा जिससे वे किसी और अच्छी मजदूरनीका इन्तजाम कर दें।

कात्यायनीने मानो बड़े ही कष्टसे कहा—नहीं, रहने दीजिए। वही मजदूरनी रहेगी।

कामा०—अच्छा मैं उसीसे कहला दूँगा कि विशेष सावधान रहा करे। हाँ, देखो खूब याद आया। इन सब बातोंका कुछ भी जिक्र रमाके सिवा और किसीसे मत करना। और महेन्द्रके भागनेका तो किसीके सामने नाम भी मत लेना।

कामाख्यानाथ चले गये। कात्यायनीकी मजदूरनी इतनी देर तक काठ बनी हुई दरवाजेसे लगी खड़ी थी। कामाख्यानाथके चले जानेके बहुत देर बाद तक भी उससे मकानके अन्दर नहीं आया गया।

बाईसवाँ परिच्छेद।

श्रावणका आकाश बहुत ही घने मेघोंसे ढँका हुआ है। मूसलधार वृष्टि हो रही है। इधर कई दिनोंसे खाली विधुकी माँ ही कात्यायनीके पास रहती है। रमाकी मजदूरनी उस दिन शामको कह गई थी कि मुझे बुखार आगया है, उसके बाद वह अबतक नहीं आई। उस दिन उसके मुखका भाव देखकर कात्यायनीको आशंका हुई थी कि शायद वह कुछ कुछ समझ गई है। उसके प्रभुके परिवारपर जिसके कारण इतनी विपत्ति आई है, शायद उसके साथ अब उस बेचारीसे रहा नहीं जाता है, इसीलिए वह बुखारका बहाना करके भाग गई है। यह कात्यायनीके लिए अच्छा ही हुआ था। वर्षाके कारण इधर रमासे उसकी भेंट नहीं हो सकती थी, उसे रमाके सामने जाकर मुँह दिखलानेकी भी नौबत नहीं आती है। संसारमें और किसीके साथ तो उसका कभीका किसी प्रकारका सम्पर्क था ही नहीं। एक रमाकी मजदूरनी ही थी, सो वह भी उसे मुक्ति देकर चली गई।

एक तो सन्ध्या और दूसरे वर्षाकालकी सन्ध्या, इसलिए उस दिन और भी अधिक अन्धेरा छाया हुआ था। वर्षा कुछ धीमी हो गई थी, इसलिए विधुकी माँ जल लानेके लिए गंगाजी चली गई थी। इस असमयमें भी कात्यायनी सोई हुई थी। इधर कई दिनोंसे वह बीमारोंकी तरह बिछौनेपर ही पड़ी रहती थी। उसका शैशव कालका जीवन उसकी तन्द्रासे आच्छन्न आँखोंके सामने छाया-चित्रोंकी तरह एकके बाद दूसरा दृश्य लाकर उपस्थित कर रहा था। थोड़ी देर बाद उसे नींद आ गई, पर वह भी स्वप्नोंसे भरी हुई थी। वह देखने लगी कि पिताजी

एक उज्ज्वल तारेको उँगलीसे दबाये हुए आकाशमें खड़े हैं और कह रहे हैं—कात्यायनी, तुम किसी बातका भय मत करो। तुम देखती हो कि मैंने किसे पकड़कर दबा रखा है ? यही तुम्हारे समस्त अशुभोंका मूल है! लेकिन सावधान!—

उसके कानोंमें आवाज आई—"कात्यायनी!"

यद्यपि कात्यायनीकी नींद खुल गई, तथापि अपने पिताकी अपूर्ण बात सुननेके लिए उसने फिर आँखें बन्द कर लीं। इतनेमें फिर उसे सुनाई दिया—कात्यायनी, उठो। कुछ काम है।

कात्यायनीने देखा कि यह तो पिताजीका स्वर नहीं है! उसने आँखें खोलकर देखा, तो चकित हो गई। सामने महेन्द्र खड़ा था। वह चट उठकर बैठ गई। महेन्द्र पास ही पड़ी हुई एक चौकीपर बैठ गया और बोला—मैंने देख लिया था कि विधुकी माँ पानी लाने चली गई है, इसी लिए जरासा विश्राम लेनेके लिए अन्दर चला आया। नहीं तो मैं यों ही लौट जाता। मैं समझता हूँ कि मेरे साथ दो चार बातें करनेमें तुम्हें किसी प्रकारकी आपत्ति न होगी।

कात्यायनी स्तब्ध भावसे केवल देखती रही। महेन्द्रने कुछ रुककर फिर कहा—शायद खून करके भागे हुए असामीके साथ बातें करनेमें तुम्हें कुछ घृणा हो। लेकिन जो हो, फिर भी मैं आशा करता हूँ कि कमसे कम तुम मुझे गिरिफ्तार नहीं करा दोगी।

पहले जब महेन्द्र उसके साथ इस प्रकारकी तीखी बातें किया करता था, तब वह बिगड़ खड़ी होती थी। आज भी वह उसी तरह बिगड़ना चाहती थी; लेकिन आज उसका निस्तेज मन किसी प्रकार सिर उठानेके लिए तैयार नहीं हुआ। आज उसमें इतनी सजीवता ही

नहीं रह गई थी कि उसे कुछ क्रोध आता। उसने आँखें नीची करके क्षीण स्वरमें केवल कहा—नहीं।

महे०—तो क्या मैं यहाँ थोड़ी देरके लिए बैठ सकता हूँ ?

का०—बैठो।

महेन्द्र कुछ देर तक चुपचाप बैठा रहा और फिर उसने दो तीन बार बहुत गहरी गहरी साँसें लीं। इसके उपरान्त वह कोमल स्वरसे बोला—मैंने एक उड़ती हुई खबर सुनी है। क्या वह ठीक है ?

का०—क्या सुना है ?

महे०—यही कि जमींदारका कर्मचारी महेन्द्र खून करके भाग गया है और उसके कारण जमींदारको हाजतमें जाना पड़ा है।

बार बार ये श्रुतिकटु शब्द सुनते सुनते कात्यायनीका अवसन्न और निस्तेज मन ग्लानि, विरक्ति और वेदनासे पूर्ण होकर धीरे धीरे पहलेकी ही तरह उग्र होता जा रहा था। महेन्द्रकी इस बातका उत्तर उसने केवल "हाँ" कहकर दिया और वह अपने मनोभावको दबानेके लिए दूसरी ओर देखने लगी।

महेन्द्रने भी उसका यह भाव समझ लिया और वह कुछ देर तक बिलकुल चुप रहा। फिर वह सहसा तीव्र स्वरमें बोल उठा—और अब वही महेन्द्र निरापद होकर स्वतन्त्र रूपसे मजेमें घूम रहा है, यह देखकर तुम्हें तो कात्यायनी बहुत ही क्रोध आ रहा होगा ? अब कात्यायनीका मुख मारे क्रोधसे लाल हो गया। महेन्द्रकी ओर मुँह करके उसने कठोर स्वरमें कहा—अवश्य ही आ रहा है और जब तक महेन्द्र अपनी प्राप्य अवस्था लौटा नहीं लेगा, तब तक यह क्रोध दूर नहीं होगा !

महेन्द्रने जोरसे हँसते हुए कहा—यह तो मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। लेकिन क्या तुम यह समझती हो कि मैं यहाँ अपने आपको गिरिफ्तार करा देनेके लिए आया हूँ? मैं तो केवल यह जाननेके लिए आया हूँ कि उक्त बात ठीक है या गलत। अभी मैं तुम लोगोंके समान महात्मा तो हो ही नहीं सका हूँ कि अपनी रक्षाका और कोई उपाय न देखकर सब लोगोंसे यह कहता फिरूँ कि दूसरोंके हितके लिए ही मैं आत्म-विसर्जन कर रहा हूँ! मैं जो कुछ कर रहा हूँ वह केवल महेन्द्रको ही बचानेके लिए कर रहा हूँ और नहीं तो मुझपर यह आफत क्यों आने लगी थी?

कात्यायनीने आश्चर्यपूर्वक पूछा—कौन यह बात लोगोंको समझाता फिरता है? जमींदार?

महे०—हाँ, उन्हींकी सारी प्रजा और गाँवके सब लोग यही हाहाकार मचाते हुए तो शहरकी ओर दौड़े चले जा रहे हैं। क्या तुम यह बात नहीं जानतीं कि महेन्द्रके प्राण लेनेके लिए सब लोग बहुत ही व्यग्र हो रहे हैं?

कात्यायनीने मानो कुछ दम लेकर कहा—नहीं, मैं ये सब बातें कहाँसे सुनती? मैं तो इधर कई दिनोंसे बिलकुल अकेली ही रहती हूँ।

कुछ देर तक ठहरकर कात्यायनीने एक ठंढी साँस लेकर फिर कहा—लेकिन तुम यह कभी मत समझना कि वे स्वयं अथवा उनके आत्मीय स्वजन सब लोगोंमें इस प्रकारकी बातें फैला रहे हैं। हाँ, उनकी भक्त प्रजा और गाँवके लोग ये सब बातें अवश्य कहते होंगे। मैं यह बात बहुत अच्छी तरह जानती हूँ कि वे सचमुच तुम्हें बचानेके लिए ही बहुत अधिक व्यग्र हो रहे हैं।

महेन्द्रने और भी जोरसे हँसते हुए कहा—तुम भी यह जानती हो? बस, अब मैं बिलकुल निश्चिन्त हो गया। भला बतलाओ तो विपत्ति किसपर अधिक है? उनपर या मुझपर?

कात्यायनीको पहले जो क्रोध आया था वह अब निस्तेज हो गया था। उसने धीरेसे उत्तर दिया—महेन्द्र, भारी विपत्ति उन्हींपर है; क्योंकि तुम्हें जैसे बनेगा तैसे उन्हें बचाना ही पड़ेगा। धन और प्राण देकर भी वे तुम्हें बचावेंगे। वे मुझपर तुम्हारा सारा भार छोड़ गये हैं। उन्होंने पहले ही यह बात समझ ली थी कि तुम मुझसे भेंट करनेके लिए यहाँ आओगे, इसी लिए वे मुझसे कह गये हैं कि जब तुम यहाँ आओ, तब मैं तुम्हें नेक सलाह दूँ। तुम इस तरह मत घूमो, नहीं तो बच नहीं सकोगे। तुम सीधे दीवानजीके पास चले जाओ। तुम जिस प्रकार निरापद रहना चाहोगे, वे तुम्हें उसी प्रकार रहनेकी व्यवस्था कर देंगे। लेकिन सबसे अच्छा तो यही होगा कि तुम एक बार जमींदारके पास चले जाओ। वे स्वयं अपने साथ तुम्हें मजिस्ट्रेटके पास ले जाकर—

महेन्द्रने उसे बीचमें ही रोककर फिर उसी भावसे कहा—ठहरो कात्यायनी, जरा ठहरो। अब जाकर इन सब बातोंका मतलब मेरी समझमें आया है। नहीं तो तुम्हारी बातोंके कारण मुझे धोखा होने लगा था। क्या तुम यह बात जानती हो कि उनके सिर यह आफत कहाँ तक आ पड़ी है? उस कमलाको तुम जानती हो? वह नौगाँवके जमींदारकी जितनी सम्पत्ति है उसके आधे हिस्सेकी मालिक है। उन्होंने अपने लड़के और कर्मचारीके द्वारा उस लड़कीको चुरा मँगाया है और उसी अवसरपर एक आदमीका खून और दूसरेको घायल किया है। इन सब बातोंके लिए केवल वही जिम्मेदार हैं।

बिना मेरे यह सारा रहस्य किसी प्रकार नहीं खुल सकता। कमलाकी माँने लड़कीको चुरा ले जानेके लिए मेरे नाम जो पत्र लिखा था और जो उनके बचावका बहुत अच्छा प्रमाण है, उससे लेकर उनके पक्षके सारे प्रमाण जिनसे इस उपद्रवका कमसे कम आधा दोष उनके सिरसे टल जाता है सब मेरे ही हाथमें हैं। और फिर इस नासमझीका वह खूनी भी मैं ही हूँ। इसी लिए मुझे मजिस्ट्रेटके हाथमें सौंप देनेकी बहुत बड़ी जरूरत है। इसी लिए वे महानुभावताका ढोंग रचकर मुझे बचानेके बहाने यह कौशल रच रहे हैं।

मारे घृणाके धीरे धीरे कात्यायनीका मुँह काला पड़ने लगा। उसने क्रोधपूर्वक मुँह फेरकर कहा—महेन्द्र, तुम्हारे लिए यही उचित है कि तुम अपने किये कर्मका फल पाओ। व्यर्थ ही वे तुम्हारे लिए इतना घबरा रहे हैं। नहीं, तुम उनका आश्रय मत लो और जिस रास्तेपर जा रहे हो उसीपर चले जाओ। परन्तु याद रखो कि संसारमें सदासे न्याय और धर्मकी ही जय होती आई है और अब भी होगी। उन्होंने-तुम्हारा यह अधःपतन और यह दुर्मति देखते हुए भी यह समझ कर तुम्हारे हाथमें अपने प्राण तक सौंप दिये थे कि अपने विवेकके कारण तुम फिर ठीक रास्तेपर आ जाओगे और अब तक उनका यही विश्वास है कि तुमने अब भी केवल अपने हठवश बिना आगा पीछा सोचे और अनजानमें ही यह विषम काम कर डाला है। उन्हें इसी बातका सबसे बड़ा डर है कि कहीं तुम अनुतप्त होकर कुछ और न कर बैठो। ऐसे मनुष्यके सम्बन्धमें जब तुम्हारे इस प्रकारके भाव हैं तो मुझे कहना पड़ता है कि यही भाव तुम्हें जीतेजी नरकमें ले गये हैं! मनुष्यका इससे बढ़कर अधःपतन और क्या हो सकता है? अब जो कुछ होना हो वह हुआ करे, उससे अब मैं नहीं डरती।

महे०—डर ? कात्यायनी, भला मेरे लिए अब तुम्हें और किस बातका डर हो सकता है ? हाँ, यह ठीक है कि मैं जीते जी ही नरकमें चला गया हूँ—इसमें बिन्दु मात्र भी भूल नहीं है। जो बातें तुमने कामाख्यानाथके नामपर कहीं हैं और जिन भावोंके सम्बन्धमें तुमने कहा है कि वे अभी तक अपने मनमें उनका पोषण कर रहे हैं, वे भाव अपने मनमें चाहे वे रखें और चाहे न रखें, लेकिन कात्यायनी मैं तुमसे पूछता हूँ कि क्या तुम स्वयं मेरे उन भावोंपर एक रत्ती भर भी विश्वास करती हो ?

कात्यायनीने वेगपूर्वक कहा—नहीं, जरा भी नहीं।

महे०— क्या मैं पूछ सकता हूँ कि क्यों ? जिसका मैं—स्वीकार-करता हूँ कि—शत्रु हूँ, मित्र नहीं हूँ, वह यदि इस प्रकारकी बातें सोचता समझता हो, तो सोच समझ सकता है; परन्तु तुम नहीं सोच सकतीं और तुम बचपनसे ही मुझे जितना अधिक जानती हो उतना अधिक मुझे और कोई नहीं जानता ! क्या मैं तुमसे यह पूँछ सकता हूँ कि मुझपरसे तुम्हारा यह विश्वास क्यों नष्ट हो गया है ?

कात्या०—तुम्हींने वह विश्वास नष्ट किया है। मैं बचपनसे जिसको जानती हूँ, क्या तुम वही महेन्द्र हो ?

महे०—हाँ, मैं वही महेन्द्र हूँ। कात्यायनी, मैंने तुमसे एक दिन कहा था कि अवस्था ही मनुष्यको देवता बनाती है और अवस्था ही उसे पिशाच बना डालती है। यह भी कहा था कि अभी इसके बाद और न जाने क्या होगा ! आज मेरे लिए वही दिन आ गया है। क्या तुम यह बात नहीं जानतीं कि तुम्हारी ही अश्रद्धा, अविश्वास और घृणाने मुझे इस अवस्था तक पहुँचा दिया है ! एक मनुष्यपर कोई

साधारणतः जितना विश्वास रख सकता है, उतना विश्वास भी तुमने मुझपर नहीं रखा। यदि तुमने मेरे काममें मेरे ही शत्रुओंकी सहायता लेकर इस प्रकार मेरा उपहास न कराया होता, यदि तुम मुझपर कुछ भी निर्भर रही होतीं, तो शायद आज मुझे खूनी न बनना पड़ता।

कात्या०—महेन्द्र, मान लिया कि मैंने तुम्हारे शत्रुओंकी सहायता ली थी, तो भी क्या तुम्हें खून कर डालना चाहिए था? और फिर तुम अपने इसी मनुष्यत्वका अभिमान करते हो?

महे०—नहीं कात्यायनी, मेरे पास आज कोई भी चीज ऐसी नहीं है जिसपर मैं गर्व कर सकूँ। लेकिन हाँ, फिर भी मैं मनुष्य हूँ! यह उसी मनुष्यत्वका प्रभाव था कि जब मैंने उन आदमियोंको पत्थर और लकड़ी उठाकर निरंजनपर वार करते देखा, तब मेरा वही अप्रकृतिस्थ मस्तक (दिमाग)—जो कुछ ही पहले निरंजनको शत्रु समझकर अंट संट बक रहा था—बिना कुछ आगा पीछा सोचे न जाने क्या कर बैठा—खैर, उन बातोंको जाने दो। लेकिन तुम यह अवश्य समझ रखो कि मुझे इस प्रकार उन्मत्त करनेका मुख्य कारण केवल यही है कि प्रत्येक विषयमें मुझपरसे तुम्हारी आस्था उठ गई है। तभीसे, तुम मुझपर अविश्वास किया करती हो, यह बात मेर मनमें जागरित रहती है, और मैं पागल हो जाता हूँ! अब भी—मेरी इतनी दुर्दशामें भी—तुम मेरा विश्वास नहीं कर सकती हो, क्या मेरा इतना—

का०—बस महेन्द्र, चुप रहो, और मत बोलो। तुम्हारे मुँहसे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। इससे संसारके लोग तुम्हें और भी घृणा करेंगे।

महे०—आज तो मैं ऐसी अवस्थाको पहुँच ही गया हूँ कि सचमुच सब लोग मुझसे घृणा कर सकते हैं। लेकिन जिस दिन मेरा प्रेम

पूजाके फूलोंके समान पवित्र था, उस दिन मैं ऐसा नहीं था। उसे भी इस प्रकार अश्रद्धा और अवहेला देकर, यह दुर्गन्धित कीड़ा उसीमेंसे तुमने उत्पन्न किया है। यदि तुम उतनी घृणा न करतीं—

का०—मैंने तुमसे कभी घृणा नहीं की। यद्यपि मैं तुम्हारे रास्ते-पर नहीं चली थी, तथापि मैंने क्या तुम्हें स्नेह—

महेन्द्र गरजकर बोल उठा—क्या किया है? क्या दिया है तुमने मुझे? क्या कभी तुमने मेरे प्रति कुछ भी करुणा या कुछ भी सहानुभूति प्रकट की है? क्या तुमने मेरे निरर्थक जीवनके लिए कभी आँखसे एक बूँद भी जल गिराया है? क्या तुमने एक बार भी मेरे उस उत्कट प्रेमको विश्वासकी दृष्टिसे देखा है? यदि मुझे तुम्हारी कण मात्र भी सहानुभूति मिलती, तो फिर संसारमें कोई ऐसी बात नहीं थी जो मैं न कर सकता! तुम्हारी आज्ञासे—तुम जो कुछ कहतीं, शायद मैं वह सभी कर सकता। तुम्हारे विश्वासके अनुसार, पिताजी जिसके उद्देश्यसे तुम्हें सम्प्रदान कर गये थे, उन्हींके हाथमें तुम्हें सौंपकर और तुम्हारा दासानुदास होकर मैं अपना जीवन बिता देता। केवल मेरी इस असह्य वेदना, मेरे इस प्रेमके ऊपर तुम्हारा एक बिन्दु विश्वास—एक कण श्रद्धा—बस मैंने यही चाहा था; परन्तु क्या किसी दिन तुमने मुझे इतना भी दिया था? मैंने यह मान लिया कि पिताजीके निषेध करनेके कारण तुमने मुझसे विवाह नहीं किया और न मुझसे प्रेम ही किया; लेकिन मेरे इस दिनरात जलनेवाले प्रेमके मुखमें तुमने अग्राह्यताका विष ढालकर उसे इस प्रकार क्यों जर्जरित किया? यदि तुम्हें मुझपर कुछ भी करुणा आई होती और तुम्हारे नेत्रोंसे एक बूँद भी जल गिरा होता, तो उसीसे यह सारा विष धुल गया होता, वह क्यों तुमने एक दिन भी नहीं गिराया? क्या

तुम इसी लिए आज मुझसे इतनी घृणा करती हो कि आज मैं पतनका चरम सीमापर पहुँच गया हूँ ? लेकिन वास्तवमें यह बात नहीं है। मैं तुमसे प्रेम करता था और केवल इसी अपराधके कारण तुम सदासे मुझे यह दंड देती आई हो। कभी कभी मेरे मनमें भी यह बात आया करती थी कि तुम्हारी इस घृणाके फल-स्वरूप किसी दिन मेरा इसी प्रकारका कुछ परिणाम होगा; लेकिन फिर भी मैं कोई उपाय नहीं कर सका। इतना कहकर और एक ठंढी साँस लेकर महेन्द्र रुक गया। उसकी किसी भी बातके बीचमें बोलनेका कात्यायनीको साहस नहीं हुआ। कुछ देर बाद केवल अस्पष्ट स्वरमें उसने कहा—घृणा—घृणा ?

महे०—हाँ कात्यायनी, केवल घृणा ! बस तुम्हारे हाथसे केवल यही संबल प्राप्त करके मैं जा रहा हूँ।

फिर कुछ देर बाद बहुत प्रयत्न करके कात्यायनीने कहा—यदि तुम्हारा जीवन व्यर्थ हुआ, तो मैंने भी तो—

महे०—यही न कहती हो कि तुम भी विवाह करके संसारी नहीं हुई ? लेकिन कात्यायनी, तुम मेरे जीवनके साथ अपने जीवनकी तुलना कर रही हो! जरा मुँह ऊपर करो, एक बार मेरी ओर देखो।

लेकिन कात्यायनीने मुँह नहीं उठाया। कुछ देर तक टक लगाकर उसकी ओर देखते रहनेके उपरान्त महेन्द्रने कहा—मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि वह बात नहीं है। यदि तुम्हारा जीवन मेरे समान होता, तो उस क्षोभसे मैं पागल हो जाता। मैं यह नहीं जानता कि तुम दोनों आपसमें एक दूसरेके साथ कितना प्रेम करते हो; लेकिन फिर भी मैं इतना अवश्य समझता हूँ कि तुम लोगोंमें श्रद्धा, विश्वास और भक्तिका जितना विनिमय हो सका है, उसके कारण तुम दोनों आपसमें

एक दूसरेको देवताके समान पूजते हो। लेकिन कात्यायनी, क्या तुम यह जानती हो कि श्रद्धा और विश्वास आदिमें कितनी अधिक शक्ति है? ये बातें मनुष्यको क्रमशः बहुत ऊँचेपर ले जाती हैं। वही बात तुम लोगोंके सम्बन्धमें भी हुई है। मैं विश्वास करता हूँ और यह बहुत कुछ सम्भव भी है कि वे मेरी रक्षा करना चाहते हैं। लेकिन क्या मेरे जैसे पापिष्ठके लिए भी कभी यह सम्भव है कि मैं उनका सर्वनाश करके फिर भी उन्हींके आश्रयमें जाकर अपने प्राणोंकी रक्षा करूँ? आज मैं अपनी सारी पापकथा तुमसे कहे जाता हूँ। आज मेरी समझमें यह बात आई है कि तुम्हारे साथ उनका यह सम्बन्ध देखकर मुझमें जो हिंसा उत्पन्न हुई थी, उसी हिंसासे जर्जर होकर मैंने अनजानमें ही उन्हें हानि पहुँचानेकी इच्छा और चेष्टा की है। पहले एक बार जब सोदपुरमें दंगा हुआ था, तब भी यह बात मेरी समझमें आई थी; लेकिन मेरे कारण उनकी जो बदनामी हुई, उसपर उन्होंने जब कुछ भी ध्यान नहीं दिया, तब इससे मैं और भी बहुत चिढ़ गया। यदि वे उस समय मुझे निकाल देते, तो उनका भी भला होता और मेरा भी होता। लेकिन उन्होंने उसकी कुछ भी परवा न की।

कात्यायनीने कोमल स्वरसे कहा—यह बात नहीं है कि उन्होंने उसकी कुछ भी परवा न की। वे समझ गये थे—उन्होंने सब कुछ जान लिया था; लेकिन फिर भी तुमपरसे उनका विश्वास नष्ट नहीं हुआ था।

महेन्द्रने दाँतोंसे अपने होंठ चबाए और कोमल स्वरसे कहा—क्या वे सब बातें समझ गये थे? और उसके बाद भी उन्होंने मेरे हाथमें इतना अधिकार दिया था?

का०—हाँ, उन्होंने समझा था कि तुम आप ही आप इस रास्तेसे पीछे लौट आओगे।

महेन्द्रने चुपचाप सिर झुका लिया।

कुछ देर बाद कात्यायनीने पूछा—जाओगे क्या उनके पास?

महे०—हाँ जाऊँगा तो सही, पर उनके पास नहीं। मैं उस मार्गसे लौटा तो सही, पर बहुत देरके बाद—उसके बाद—सुनो, सभी बातें कहे जाता हूँ। तुम उनसे कहना कि इतना बड़ा कांड, सचमुच ही मैंने सोच समझकर या जान बूझकर नहीं किया। मेरे मना करने पर भी तुमने कमलाका उद्धार करनेके लिए जो उनको भेज दिया, बस उसीसे मेरा दिमाग खोलने लग गया, मेरे बदनमें आग लग गई और अन्तमें उसी आगमें मैंने अपने आपकी आहुति दे डाली। लेकिन मैंने जो खून किया है, वह केवल—अपने निरंजनके प्राण बचानेके लिए। निरंजन मेरी इस बातपर अवश्य विश्वास करेगा। सम्भव है कि वे भी मेरी इस बातपर विश्वास कर लेंगे, एक नहीं करोगी तो तुम्हीं। इसी लिए मैं तुमसे कह जाता हूँ कि तुम अब भी विश्वास करो—मैं—

का०—जो होना था, वह हो गया।

महे०—हाँ, जो होना था वह हो गया। अब उसकी चर्चा करना फिजूल है।

एक गहरी साँस खींचकर महेन्द्र उठ खड़ा हुआ और बोला—कात्यायनी, मेरे इतने अधिक दोष करने पर भी उन्होंने मुझपर जो विश्वास रखा है, वह मैं प्राण रहते नष्ट न होने दूँगा। लेकिन तुम! कात्यायनी, तुमसे भी मैं हे देता हूँ कि मैं अब भी यह आशा नहीं छोड़ सकता कि तुम मुझपर थोड़ीसी श्रद्धा करोगी। मैं अपने लिए तुम्हारी आँखोंसे एक बूँद जल अवश्य गिरवाऊँगा। मैंने गलती की,

इसी लिए मैं इतने दिन इस गलत रास्तेपर चला गया था। लेकिन कात्यायनी, आज वह रास्ता मुझे दिख गया है। अब देर नहीं है।

का०—क्या कह रहे हो—कहाँ जाते हो?—ठहरो, सुनो—

महे०—नहीं, अब नहीं ठहरूँगा। देखता हूँ कात्यायनी, कि मैं तुम्हें यह विश्वास करा सकता हूँ या नहीं।

का०—विश्वास? ठहरो महेन्द्र, जरा ठहरो—

'नहीं' कहकर महेन्द्र उल्काके समान अन्तर्हित हो गया और कात्यायनी मानो संज्ञाहीन होकर वहीं बैठ गई।

तेईसवाँ परिच्छेद।

एक सप्ताह बीत गया। बेचारी विधुकी माँ इस बीचमें मारे लज्जाके घरसे बाहर नहीं निकलती। वह यह बात अच्छी तरह समझ गई थी कि गाँवके लोगोंको यह मालूम हो गया है कि जमींदारपर जो यह आपत्ति आई है, वह ज्योतिरत्न महाशयके घरके लोगोंके कारण ही आई है और इसी लिए अब वे लोग उन्हें प्रेमकी दृष्टिसे नहीं देखते। पर इधर कई दिनोंसे लोग यह सुनकर कुछ उत्साहित और प्रसन्नसे हो रहे हैं कि महेन्द्र पकड़ा गया है। इसलिए अब विधुकी माँको भी घरसे बाहर निकलनेमें उतना अधिक संकोच नहीं होता। महेन्द्रका मुकदमा सुननेके लिए नित्य ही गाँवके बहुतसे आदमी दौड़ दौड़कर शहर जाया करते थे, अतः महेन्द्रका अथवा और कोई समाचार जाननेके लिए विधुकी माँको जमींदारके यहाँ जानेकी आवश्यकता नहीं होती है। घरसे बाहर निकलते ही उसे सब समाचार मिल जाते हैं। उसे सब बातें सुनानेका मानो गाँवके लोगोंको कुछ खास चाव रहता था।

आज सन्ध्याके समय कात्यायनी सहसा अपने घरसे निकलकर बाहर दरवाजेपर आखड़ी हुई। गंगाके घाटपर जिस जगह उसके पिता बैठकर सन्ध्या-वन्दन किया करते थे, उस जगह जानेके लिए उसका मन चंचल हो उठा। लोगोंके सामने जानेमें पहले उसे जो लज्जा जान पड़ती थी, आज वह लज्जा भी उसे घाटपर जानेसे न रोक सकी। परन्तु घाटपर पहुँचनेसे पहले वह जमींदारके मन्दिरके सामने पहुँचकर जरा खड़ी हो गई। सन्ध्याके आकाशमें दोनों मन्दिरोंके शिखर ठीक उसी प्रकार रहस्यपूर्ण भावसे दो उँगलियोंके समान आकाशकी ओर संकेत कर रहे थे, जिस प्रकार पहले भी एक दिन पिताके साथ जानेके समय इसी प्रकार संकेत करते हुए उसे दिखाई दिये थे। परन्तु आज उन शिखरोंमें उस दिनकी अपेक्षा भी कुछ ऐसी विशेषता थी जो उसे अनजानमें ही मन्दिरकी ओर खींच ले गई।

अभी तक आरतीका समय नहीं हुआ था। मन्दिरमें रमा बैठी हुई थी। और उसके पास यह दूसरा कौन बैठा है? क्या कमला है? कात्यायनी चौंककर खड़ी हो गई। उसी समय कमलाने उठकर उसे प्रणाम किया।

कात्यायनीको चुपचाप खड़ी देखकर रमाने कहा—प्रणाम करो।

कात्यायनीने मानो एक मूर्खके समान कहा—किसे?

रमाने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप कात्यायनीके मुखकी ओर देखती रह गई। थोड़ी देर बाद मानो कात्यायनीको कुछ होश हुआ और उसने विद्रोहद्वारा उत्तेजित भावसे कहा—तुम्हारे गोविन्ददेवको? क्यों?

रमा—आज महेन्द्रके फैसलेका अन्तिम दिन है।

का०—इसके लिए उन्हें प्रणाम करनेकी क्या आवश्यकता है? महेन्द्र अपने कियेका फल पावेगा, इसके लिए किसी प्रकारका भय या चिन्ता क्यों की जाय?

रमा—आज तुम यह प्रार्थना करो कि जो भय और चिन्तासे अतीत है, वही शान्ति उसे प्राप्त हो।

का०—मैं? उसकी शान्तिके लिए मैं ही प्रार्थना करूँगी!

इतना कहते कहते कात्यायनी कुछ इस प्रकारसे हँसी कि उसे देखकर रमा मन ही मन कुछ डर गई और उसने कात्यायनीकी ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा—जरा मेरे पास बैठ जाओ। आज वे अपने कियेका चाहे जो फल पावें, लेकिन जो हम लोगोंके उन सब फलोंको तुच्छ करके हृदयमें शान्ति और स्वस्ति विधान करते आ रहे हैं, वे अवश्य ही महेन्द्रको भी वह स्वस्ति और सुख प्रदान करेंगे। तुम देखती हो, मेरे पास कौन है? कमलाको महेन्द्रने अपने हाथसे ही भइयाको समर्पित कर दिया है। उन्होंने भइयाके गलेसे लिपटकर मित्रकी भाँति—

इतना कहते कहते रमाका गला रुँध गया, उससे कुछ बोला न गया और कमलाने बड़ी कठिनतासे आँसू रोकते हुए दोनों हाथोंसे अपना मुँह ढक लिया।

कात्यायनी कुछ देर तक टक लगाए दोनोंकी ओर देखती रही और उसके बाद सहसा अतिशय अस्वाभाविक शान्त स्वरमें बोली—हाँ, देखती हूँ—इस विष-समुद्रका जो मन्थन हुआ है, उससे यह कमला निकलकर तुम्हारे घर आगई है और तब संसारमें शान्तिकी हवा बही है। लेकिन मैं तो जरा गंगाके घाटपर जाकर बैठूँगी। तुम तो जानती ही हो कि मुझे वहींपर शान्ति मिलती है—वहाँपर वह मुझे मानो पड़ी हुई मिल जाती है।

रमा—अच्छी बात है, जाओ और तुम भी उसे प्राप्त करो। लेकिन जरा जल्दी आना।

का०—वह बात तुम अपने गोविन्ददेवसे कहो ।

रमा—क्या कहूँ, शान्तिकी बात? वह मैं अकेली नहीं कहूँगी, तुम्हें भी वह माँगनी होगी।

का०—मैं क्या माँगूँगी?

रमा—उनकी क्षमा और शान्ति।

का०—क्षमा माँगनेका मुझे कोई अधिकार नहीं है। मैं किसके कामके लिए क्षमा माँगूँगी? क्षमा-प्रार्थनाके योग्य मेरे पास कुछ भी तो नहीं है।

रमा०—खैर शान्ति और सान्त्वना ही सही।

का०—वह भी इस जन्मके लिए नहीं—दूसरे जन्मके लिए रहे।

इतना कहकर कात्यायनी फिर पहले ही जैसी हँसी हँसकर चली गई। रमाने दोनों हाथोंसे अपनी आँखें ढँक लीं।

आज बहुत दिनोंके बाद कात्यायनी आकर इस घाटपर बैठी है। उसे याद आया कि पिताजीकी मृत्युके उपरान्त भी मैं प्रायः सन्ध्या समय यहाँ आया करती थी और चाँदनी रातमें तथा काली रातमें भी जलमें पैर डुबाकर इन्हीं सीढ़ियोंपर बैठा करती थी। फिर उसे कामाख्यानाथके साथकी उस रातकी बातें याद आगईं। उस दिनके बाद वह फिर कभी आकर इस घाटपर नहीं बैठी थी। उसी रातसे ही मानो उसके जीवनने पलटा खाना आरम्भ किया था। उसने आकाशकी ओर देखा—उसमें गहरे बादल छाए हुए थे और इधर उधर कहीं कहीं बिजलीका कुछ आभास दिखाई दे जाता था। भादोंका

महीना था, गंगा खूब बढ़ी हुई थी और बड़ी तेजीके साथ बह रही थी। घाटकी जो दो चार सीढ़ियाँ पानीमें डूबनेसे बच रही थीं, उन-पर लहरोंके थपेड़े लग रहे थे। यह दृश्य उसने पहले भी कई बार देखा था; परन्तु आज उसे यह सारा दृश्य जितना रहस्यमय दिखाई दिया, उतना रहस्यमय आजसे पहले और कभी दिखाई नहीं दिया था। उसे ऐसा माळूम होता था कि चराचर जगतमें और कुछ भी नहीं है। जो कुछ है वह सिरपर मड़रानेवाले मेघ हैं और सामने जलसे भरी हुई गंगा है। यदि आज आकाशमें कोई नक्षत्र भी दिखाई पड़ जाता, तो उसे कुछ साहस होता, उसका मन कुछ बहल जाता। लेकिन आज उसे कहीं कुछ भी दिखाई नहीं देता था। फिर उसे उस दिनके स्वप्नकी बात याद आई। पिताजीने उससे कहा था कि 'अब डरकी कोई बात नहीं है; पर सावधान रहना!' आखिर यह सावधानता किस बातके लिए थी? वेगपूर्वक बहता हुआ गंगाका जल एक चक्कर मारकर गम्भीर शब्द कर उठा। कात्यायनी चौंककर उसी ओर देखने लगी। उसने समझा कि मानो यह जल भी मुझसे जोरके साथ कह रहा है—'सावधान!' आकाशमें कहीं मेघ गरज उठा। उसकी गम्भीर गरज भी मानों गंगाके प्रशस्त वक्षसे टकराकर और सीढ़ियों तक पहुँचकर उसी प्रकारका कोई संकेत करने लगी। यह सब क्या हो रहा है? सहसा अकारण ही उसके सारे शरीरमें रोमांच हो आया। वर्षाकालकी निस्तब्ध सन्ध्यामें आरतीके घंटों और घड़ि-यालोंका टन टन शब्द चारों ओर गूँज उठा। कात्यायनी फिर सिहिर उठी। उसे ऐसा जान पड़ा कि मेरे पीछे कोई आकर सीढ़ीपर बैठ गया है। ज्यों ही उसने चौंककर पीछेकी ओर देखा, त्यों ही किसीने पूछा—कौन? कात्यायनी?

कात्यायनीने भी पहचान लिया कि कामाख्यानाथ हैं। कुछ देरतक चुप रहनेके बाद कात्यायनी वहाँसे चलनेके लिए एक सीढ़ी ऊपर चढ़ी। उसी समय मानो कामाख्यानाथकी नष्ट बुद्धि फिरसे आ गई और वे बोले—कात्यायनी, जाओ मत। ठहरो, सुनो। सब समाप्त हो गया।

कात्या०—समाप्त हो गया?

कात्यायनीका यह आर्त स्वर सुनकर कामाख्यानाथ भी चौंक पड़े। उन्होंने कहा—मैं महेन्द्रको विसर्जित कर आया।

उस गम्भीर शोकपूर्ण स्वरने मानो कात्यायनीमें कुछ दृढ़ता ला दी। उसने कोमल स्वरसे पूछा—क्या हुआ? फाँसी?

कामा०—फाँसी?—हाँ—चौदह वर्षको कालापानी।

कात्या०—फाँसी क्यों, तब कालापानी कहिए। चौदह वर्षको?

कामा०—हाँ।

कुछ देर ठहरकर कात्यायनीने कहा—यदि वह अपने आपको गिरिफ्तार न करा देता, तो शायद हम लोगोंके इस किये हुए कर्मका फल आपको ही भोगना पड़ता। जिन लोगोंका पाप था, उन्हींको उसका प्रायश्चित्त करना पड़ा—आप इसके लिए दुःख मत कीजिए।

कामाख्यानाथके कानोंमें कात्यायनीकी यह बात शायद नहीं पहुँची। वे सहसा सिहिर उठे और मानो मन ही मन बोले—"हाय उसने क्या कर डाला! केवल मनकी उत्तेजनाके कारण बिना समझे बूझे वह जो कुछ कर बैठा था, उसके सम्बन्धमें उसने मंजूर कर लिया कि मैंने वह काम जान बूझकर और अपनी इच्छासे किया था। साथ ही यह भी कह दिया कि मुझे विपत्तिमें डालनेके लिए ही उसने वैसा किया था। सोदपुरकी घटनामें उसका जो कुछ महत्त्व था, उस सबपर

उसने कालिख पोतकर ऐसा भाव धारण किया कि मैं कुछ कह ही नहीं सकता। उसने अपने मुँहसे स्वयं जो बात स्वीकार कर ली थी, हजार प्रयत्न करनेपर भी मैं उसे मिथ्या सिद्ध न कर सका। जिस दिन उसने निरंजनके हाथमें कमलाको सौंपकर अपने आपको मजिस्ट्रेटके यहाँ जाकर गिरिफ्तार कराया था, तबसे मैंने बहुतेरी बार उससे मिलनेका प्रयत्न किया, पर उसने किसी प्रकार मुझसे भेट नहीं की। उसने अपना सारा महत्त्व छिपा लिया और स्पष्ट प्रमाणसे लड़कीको अपने हाथमें करके ऐसे ढंगसे सारा अपराध अपने सिर ले लिया कि हम लोगोंके पैरमें काँटा तक न चुभने दिया। उसने सारा कलंक स्वयं अपने ही सिर ले लिया—" यह कहते कहते कामाख्यानाथने कात्यायनीकी ओर देखा और आर्त्त स्वरमें जोरसे फिर कहना आरम्भ किया—

"कात्यायनी, मैं तुम्हें कैसे बतलाऊँ कि उस समय उसका चेहरा कैसा हो रहा था! महत्त्वकी महिमासे उज्ज्वल और हँसता हुआ वह चेहरा मुझे भूलता ही नहीं! मैं तो समझता हूँ कि मरते समयतक वह दृष्टि मेरे हृदयमें अंकित रहेगी। जानती हो कि उसने कब मेरी ओर देखा? जब वह दंडकी आज्ञा सुन चुका तब—और जानती हो कि वह कब मेरे पास आया? जैल जानेके समय! उस समय उसने मुझे प्रणाम किया और दोनों हाथोंसे मेरे पैरोंकी धूल अपने मस्तकपर लगाकर"—कहते कहते कामाख्यानाथका गला रुँध गया। कुछ देर तक चुप रहनेके उपरान्त बड़ी कठिनतासे उन्होंने फिर कहना आरम्भ किया—"उसने हँसते हुए कहा—मैं गलत रास्तेपर चला गया था। आशीर्वाद दीजिए कि मैं उसका प्रायश्चित्त करूँ। कात्यायनीसे कह दीजिएगा—सावधान—कात्यायनी सावधान!" कामाख्यानाथ त्रस्त होकर उठ बैठे और उन्होंने कम्पिता पतनोन्मुखी कात्यायनीको दोनों हाथोंसे पकड़कर सीढ़ीपर बैठा दिया।

जब कात्यायनीकी तबीयत कुछ ठिकाने हुई, तब कामाख्यानाथने कहा—यहाँसे जरा और ऊपर चलकर बैठो। यहाँ पानीकी धार बहुत तेज है। दो चार सीढ़ियाँ और ऊपर चलकर बैठो।

अपनी बाँहोंपरसे कामाख्यानाथका हाथ हटाकर कात्यायनीने शान्त स्वरमें कहा—नहीं, यहीं ठीक हूँ। मुझे पानीके पास बैठना ही अच्छा लगता है।

कामाख्यानाथने फिर कुछ नहीं कहा। वे एक सीढ़ीके अन्तरसे चुपचाप बैठे रहे।

कुछ देर बाद कात्यायनीने कहा—क्या आप मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं? मैं कुछ देर बाद जाऊँगी—आप जायँ—

कामाख्यानाथ फिर भी पहलेकी तरह चुपचाप बैठ रहे।

थोड़ी देर बाद कात्यायनीने कोमल स्वरमें कहा—महेन्द्र, मुझसे भेंट करने आया था। आपकी इच्छाके अनुसार मैंने पहले उसे समझानेका भी प्रयत्न किया था—

कामा०—फिर?

कात्या०—यह तो आप देख ही रहे हैं कि मैं समझा नहीं सकी, उलटे उसे और आघात ही पहुँचाया।

कामाख्यानाथने ठंढी साँस लेकर कहा—मैं बहुत दिन पहलेसे ही जानता था कि उसके भीतर एक अतिशय महाप्राण है और शायद इसी विश्वाससे उसके सर्वनाशका यह मार्ग मैंने ही खोल दिया था। केवल यही नहीं, बल्कि मुझे तो बराबर यह भय भी बना रहता था कि इस काण्डके अन्तमें शायद वह इसी प्रकार आत्म-नाश करनेके लिए कूद पड़ेगा। मुझे जिस बातका भय था, अन्तमें उसने वही किया।

कुछ देर तक दोनों ही चुप रहे। कामाख्यानाथके ही अशान्त स्वरने अबकी बार फिर भी वह स्तब्धता भंग की—सब भूल! मैंने भूल की, तुमने भूल की और सबसे बड़ी भूल की तुम्हारे पिताजीने। महेन्द्रके जिन बुरे ग्रहोंके भयसे तुम्हारे पिताजीने तुम्हें उसके हाथ नहीं सौंपा था, उन बुरे ग्रहोंको वे अपने इस कामसे मानों और भी पुष्ट कर गये। वे मरते दम तक तुम्हारे और उसके भाग्यके लेखके साथ युद्ध करते रहे; लेकिन फिर भी वे गलत रास्तेपर चलकर उसी विधिके निर्देशका अनुसरण करते रहे। मेरा सदासे ही यह मूल मंत्र कर रहा है कि मनुष्यकी शक्ति बहुत ही साधारण है। परन्तु तुम लोगोंके साहचर्यसे इस बातको भी मैं भूल गया, यह कैसे आश्चर्यकी बात है! कामाख्यानाथ एक गहरी साँस लेकर चुप हो रहे।

कात्यायनीने कोमल स्वरसे कहा—आपको बहुत अधिक कष्ट हुआ है। आप थक गये हैं। अब आप जाकर विश्राम करें। मैं थोड़ी देर बाद ही जाऊँगी।

कामा०—दो एक बातें और हैं, जरा वह भी कह लूँ। क्योंकि तुमसे मेरी बहुत कम भेंट होती है। कात्यायनी, अबकी बार मुझे स्वयं अपने लिए भी एक चिन्ता हुई है; शायद अपनी अन्तिम अवस्थामें मुझे नष्टसंज्ञ होकर रहना पड़ेगा। इतने दिनों तक इस बातकी मैंने जरा भी चिन्ता नहीं की; परन्तु आज एक विकट और भीषण भय इन बादलोंकी तरह ही मेरे मनपर छागया है। जिस अवस्थामें संसारके सब झगड़ोंसे अलग होकर शान्त और प्रबुद्ध भावसे केवल कालकी ही प्रतीक्षा की जाती है, उस अवस्थामें मैं यह क्या कर बैठा? कर्तव्य और अकर्तव्यका इतना दायित्व, इतना अहंकार—मैं क्रमशः किस मार्ग-पर चला जा रहा हूँ? विधाताका विधान सफल हो—मैं नियतिका

खंडन नहीं करना चाहता। मैं तो केवल यही चाहता हूँ कि जब तक मेरी अन्तिम अवस्था न आवे, तब तक मैं शान्तिपूर्वक रहूँ। मैं तीर्थ-वास करना चाहता हूँ। निरंजन अब सयाना और समझदार हो गया है। उसका विवाह करके मैं खूब स्वच्छन्दतासे तीर्थवास कर सकूँगा—रमा भी मेरे साथ जायगी। महेन्द्र मुझे मुक्ति दे गया—अब बाकी रह गई तुम। सो तुम बतलाओ कि क्या करोगी? हम लोगोंके साथ चलोगी?

कात्या०—नहीं, मैं यहीं रहूँगी। मेरे सम्बन्धमें भी आप निश्चिन्त हो जायँ।

कामा०—किसका भार कौन लेता है? तुम्हारा और महेन्द्रका सब भार मेरे ऊपर है, इतने दिनों तक मैं यह अहँकार करता रहा हूँ और तुम्हारे शुभ और अशुभके लिए व्यस्त होता रहा हूँ।—पर यह भी मेरे उसी भारी भ्रमका एक अंश था। इसलिए अब और उस भ्रममें नहीं पड़ूँगा कात्यायनी,—अच्छी बात है, तुम यहीं रहो। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हें शान्ति मिले।

कामाख्यानाथ उठकर खड़े हो गये। उनका कण्ठस्वर मानो कुछ भारी हो गया था। अबकी बार उन्होंने प्रशान्त भावसे कहा—तो भी तुम्हें इस तरह यहाँ छोड़कर नहीं जा सकूँगा—तुम उठो। पर कात्यायनी न तो उठी और न वहाँसे हिली। उसमें संज्ञाका कोई लक्षण न देखकर उन्होंने डरते हुए उसके मस्तकपर हाथ रखा और पुकारा—कात्यायनी?

कात्यायनीने कोमल स्वरसे कहा—आप जरा बैठ जायँ, मुझे भी कुछ कहना है।

कामा०—कहो।

कात्या०—ज्यादा दूर नहीं, यहीं पास ही बैठिए।

कामाख्यानाथ चुपचाप कात्यायनीके पास बैठ गये। उस घोर अन्धकारमें कामाख्यानाथकी ओर स्थिर दृष्टिसे देखते हुए कात्यायनीने पूछा—आपसे हो सकेगा?

कामा०—क्या हो सकेगा?

कात्या०—पहले यह बतलाइए कि जो कुछ मैं कहूँगी, वह आपसे हो सकेगा?

कामा०—भला बिना सुने कैसे कह दूँ? अब मुझमें प्रतिज्ञा करनेकी स्पर्द्धा नहीं रह गई है।

कात्या०—महेन्द्रके सम्बन्धकी ये बातें मैंने आपसे कभी नहीं कहीं, और न उसने ही कभी आपसे कहीं, फिर भी जब आपने उसकी सब बातें समझ ली थीं, तब आप अवश्य ही बहुत सूक्ष्मदर्शी हैं। आज मैं अपनी बात पूछती हूँ। क्या आप मेरे सम्बन्धमें भी कुछ समझ सके थे?

कामा०—तुम क्या पूछना चाहती हो, जरा और साफ करके कहो।

कात्या०—और साफ करके कहनेकी मुझमें शक्ति नहीं है और न आपको ही साफ करके कहना होगा। आपको मुझे यह समझाना पड़ेगा कि मैंने क्या किया है?—मैं जानती हूँ कि आप ही मेरे स्वामी हैं और आपके साथ मेरा विवाह हुआ है। महेन्द्रको—मैंने—एक क्षण भरके लिए भी कभी—जबसे मुझे माळूम हुआ कि पिताजीकी सम्मति नहीं हैं तबसे—कभी अपने मनमें भी कोई स्थान नहीं दिया। तब आज यह क्या बात है? मैंने यह क्या किया?—कहिए, मुझे समझा दीजिए।

कामा०—लेकिन कात्यायनी तुम यह प्रश्न आज क्यों कर रही हो ? अब तक क्यों एक बार भी नहीं किया ? आज अब—

कात्या०—नहीं, मैं आज ही सुनूँगी । इतने दिनों तक तो कभी यह प्रश्न मेरे मनमें उठा ही नहीं । इधर दो चार दिनोंसे ही यह प्रश्न मेरे मनमें उठ रहा है । इसी लिए मैं आज आपसे पूछ रहीं हूँ कि मैं क्यों ऐसी हो गई ? इस बातमें तो मुझे किसी प्रकारका सन्देह ही नहीं है कि आप ही मेरे स्वामी हैं; परन्तु क्या मैं इतने दिनोंसे चुपचाप अपने मनमें इस महापापका ही पोषण करती चली आ रही हूँ ! कहिए, कहिए, मुझे समझा दीजिए ।

सीढ़ीपर पड़ा हुआ कात्यायनीका मस्तक कामाख्यानाथने स्नेहपूर्वक अपनी गोदमें ले लिया और रुँधे हुए स्वरसे कहा—इस लिए ही मैं आज इस बातकी आलोचना करनेसे रोकता था—आज शायद तुम सहन न कर सकोगी ।

कात्यायनी उठकर बैठ गई और बोली—सहन कर लूँगी । आज मैं सब कुछ सहन कर लूँगी ।

कामा०—जबसे तुमने मुझे अपना स्वामी समझा है, तबसे तुमने इस भावका पोषण किया है या नहीं ? नहीं, शायद यह बात ठीक न हो, लेकिन यह उससे भी बहुत दिन पहलेकी बात है । यह उस समयकी बात है जिस समय तुमने अपनी माताकी यह इच्छा जानी थी कि महेन्द्र तुम्हारा—

कात्या०—लेकिन वह भी तो मैंने अधिक दिनों तक नहीं सुनी । माताकी इच्छाके साथ ही साथ पिताजीका इच्छा भी तो जान ली थी ।

कामा०—चाहे दो चार दंडके लिए ही तुममें वह भाव क्यों न उत्पन्न हुआ हो, पर उसका बीज तुम्हारे मनमें जम चुका था और

इस द्वन्द्वमें वह कहीं छिपा हुआ था। और मान लिया कि वह बात न थी, तो भी क्या तुम समझती हो कि महेन्द्रके इस आत्मनाशक तीव्र प्रेममें—जो जन्मभर इस प्रकार तुम्हारी ही चिन्तामें रहा और जिसने अन्तमें इस प्रकार अपना नाश किया—कुछ भी शक्ति नहीं है ? मैं तो समझता हूँ कि महेन्द्रके इस ज्वलन्त प्रेमने ही आज तुम्हें इतना अस्थिर कर दिया है। जो बीज अब तक तुममें सोया हुआ था, वह उसके व्यवहारसे धीरे धीरे सूखता ही जा रहा था। लेकिन आज उसके इस आत्मविसर्जनसे—इस महत्त्वसे—यह कहते कहते कामाख्यानाथका गला रुँध गया और वे चुप हो गये।

अबकी बार कात्यायनीकी आँखोंमें भी आँसू दिखाई दिये। लेकिन उसने उन्हें जल्दीसे पोंछकर कहा—परन्तु क्या आपको इस बातका कुछ भी ध्यान नहीं होता कि यदि आप मुझे इस प्रकार छोड़ जायँगे, तो मेरा क्या परिणाम होगा ?

कामा०—तो फिर तुम्हीं बतलाओ कि मुझे क्या करनेके लिए कहती हो।

कात्या०—पहले आपने एक बार मुझसे विवाह करना चाहा था। क्या अब आप यह काम कर सकते हैं ? सोच लीजिए कि उस दिनकी अपेक्षा भी आज यह काम कितना कठिन है। बतलाइए कि क्या यह आपसे हो सकेगा ?

कामा०—कात्यायनी, क्या यह कोई इतना कठिन काम है ? यदि तुम्हें इससे शान्ति मिले, तो यही सही।

कात्यायनीने धीरे धीरे कामाख्यानाथके पैरोंपर सिर रख दिया और कामाख्यानाथ उसे हाथ पकड़कर उठाने लगे। परन्तु कात्यायनीने सिर

नहीं उठाया बल्कि और भी अधिक बल लगाकर उनके दोनों पैरोंके बीचमें छिपा लिया। कामाख्यानाथ चुपचाप उसका हाथ पकड़े हुए बैठे रहे।

कुछ देर बाद कामाख्यानाथने कहा—बहुत रात हो गई। अब उठो।

कात्यायनीने उसी तरह पैरोंमें पड़े पड़े पूछा—क्या सचमुच आपसे यह काम हो सकेगा? बतलाइए, सच बतलाइए।

कामा०—हाँ, हो सकेगा। लेकिन कात्यायनी, यदि यह काम तुम और कुछ दिन पहले कर सकतीं, तो शायद महेन्द्रकी इतनी दुर्दशा न होती। यदि वह देख लेता कि तुमने सचमुच ही विवाह कर लिया है, तो फिर निश्चय ही वह उस रास्तेपर न जाता।

कात्या०—चुप रहिए, अब आप उस बातको छोड़ दीजिए। मुझे और अधिक पाप-सागरमें न डुबाइए। केवल यही बतलाइए कि क्या आप अब भी मुझे अपने चरणोंमें स्थान दे सकते हैं? क्या मुझ सरीखी ऐसी पतिताको भी?—

कामा०—कात्यायनी, तुम भी चुप रहो। इन सब बातोंको जाने दो। यह कहते कहते कामाख्यानाथने कात्यायनीका मस्तक उठाकर अपनी छातीपर खींच लिया और उससे अपने ओठोंका स्पर्श करा दिया।

कात्यायनी कुछ देर तक उसी अवस्थामें चुपचाप पड़ी रही और फिर ठंढी साँस लेकर उसने सिर उठाया। वह गद्गद स्वरसे बोली—अब नहीं, मैं इसके योग्य नहीं हूँ। मैं अपने लिए आपको इस प्रकार धर्मभ्रष्ट और लोगोंके सामने इस तरह हास्यास्पद न होने दूँगी।

कामा०—कात्यायनी, अभी तुम स्वस्थ हो जाओ और दो दिन बाद जो कुछ कर्तव्य जान पड़े, उसे स्थिर करना।

कामाख्यानाथके चरणोंकी धूल अपने मस्तकसे लगाकर कात्यायनीने कहा—मैं आज ही अपना कर्तव्य निश्चित करती हूँ। क्योंकि मैं अपने ऊपर भरोसा नहीं कर सकती हूँ। आप जो कुछ मुझे दे रहे हैं, क्या मैं उसके योग्य हूँ? मेरे जिस मनमें इतना पाप छिपा हुआ था, जिस जीवनमें दो चार दिनोंके लिए भी इस प्रकारका विष जाग उठा, वह आप सरीखे देवताको देनेके योग्य कभी नहीं हो सकता। अब भी इस बातका क्या भरोसा है कि मुझमें फिर किसी दिन यह ज्वाला न जाग उठेगी? नहीं नहीं, मुझसे वह सहन न हो सकेगा।

कामा०—कात्यायनी, यदि मुझपर तुम्हारी कुछ भी श्रद्धा, कुछ भी स्नेह हो, तो उसीकी शपथ—

कात्या०—मैं अवश्य श्रद्धा करती हूँ, पूजा करती हूँ। लेकिन आजके इस द्वन्द्वमें मैने जो कुछ किया है, वह शायद मैंने आज तक पहले कभी नहीं किया! बस यही लेकर ही मैं जाती हूँ—आप विश्वास रखें कि कोई पाप और कोई ताप इस समय मुझमें नहीं है—फिर भी मैं अपना यह अपवित्र मन और यह अपवित्र शरीर अब नहीं रखूँगी—

बहुत देरसे ज़ोरोंसे बादल गरज रहा था। सहसा विकट शब्दके साथ उसके वक्षसे उत्पन्न उग्र शक्तिवाला वज्र जलता हुआ निकला और नदीके उस पार ताड़के एक वृक्षके मस्तकपर पड़ा। उस भीषण शब्दसे मानों समस्त चराचर संज्ञाशून्य हो गये। कामाख्यानाथ भी कुछ देरके लिए स्तब्ध हो गये। जब उनके नेत्रोंके सामनेसे वह रुद्र ज्वाला बुझ गई और समस्त चर और अचर फिर गहरे अँधेरेसे ढँक

गये, तब उनके नेत्रोंमें भी देखनेकी शक्ति फिरसे आई और वे मानो सचेत हुए। उन्होंने देखा कि पासमें कोई भी नहीं है। उसी समय फिर एक बार बिजली चमकी। उसके तेज प्रकाशमें गंगाका वक्ष तक दिखलाई दे गया। कहीं कोई शब्द नहीं हो रहा था। उन्हें केवल यह दिखलाई दिया कि पास ही कोई एक बार उतराकर फिर डूब गया है— जल या स्थलमें कहीं कात्यायनीका कोई चिह्न भी नहीं है।

कामाख्यानाथ जल और स्थलको कँपाते हुए जोरसे चिल्ला उठे— कात्यायनी, कात्यायनी! और जल्दीसे दो तीन सीढ़ियाँ नीचे उतर आये। ज्यों ही वे जलमें पैर रखना चाहते थे, त्यों ही किसीने पीछेसे आकर उन्हें जोरसे जकड़ लिया। तुरन्त ही सामनेसे एक और स्नेहपाश आया जिसने उन्हें आगेसे भी बाँध लिया। पीछे निरंजन और सामने रमा थी। दोनोंने आर्त्त स्वरसे पुकारा—बाबूजी, बाबूजी!

क्षणभरके लिए बिजली फिर चमक गई। उसके प्रकाशमें गंगाके शून्य वक्षकी ओर देखते हुए संज्ञाहीन कामाख्यानाथ जलमग्न सीढ़ियोंपर गिर रहे थे। रमा और निरंजनने घबड़ाकर उन्हें जोरसे पकड़ लिया।

समाप्त